1998 से निरंतर प्रकाशित

RNI. No. MPHIN/2017/73838

ISSN 2581-446X

वर्ष-4, अंक-2, अक्टूबर-नवम्बर 2020 ₹ 25/-

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

लघुचित्रों और साहित्य के अंतर्संबंध पर केन्द्रित विशेषांक

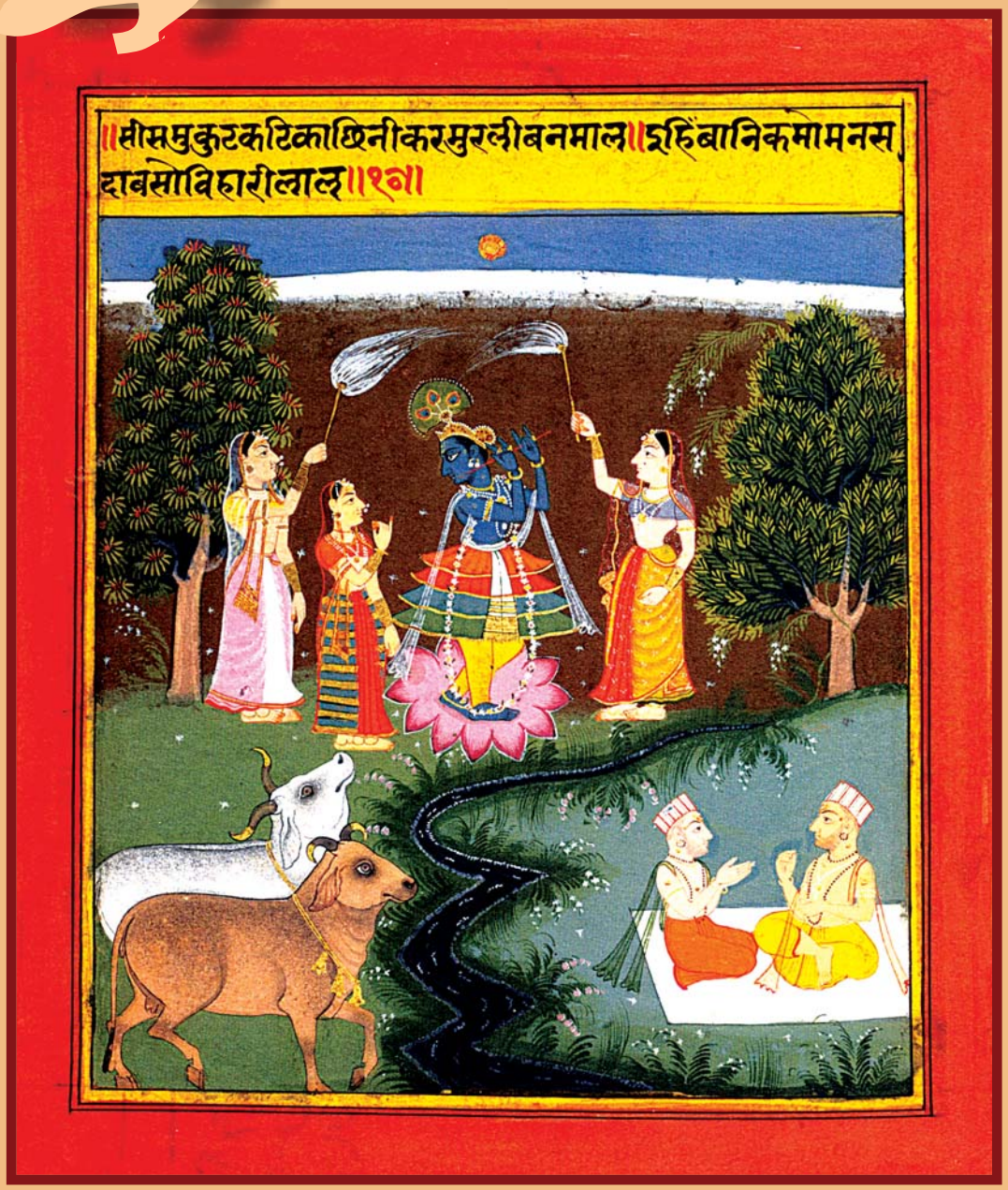

18वीं सदी में निर्मित मेवाड़ शैली का बिहारी सतसई के दोहे पर आधारित अंकन

संपादक
भँवरलाल श्रीवास

कला समय संस्था द्वारा डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग (हाथरस, उ.प्र.) को संगीत शिखर सम्मान तथा डॉ. महेन्द्र भानावत (उदयपुर, राजस्थान) को लोक शिखर सम्मान प्रदान किया गया। इस अवसर पर कला समय संस्था के अध्यक्ष प्रो.पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग', सुविख्यात छायाकार श्री जगदीश कौशल, संगीत संस्थान के मैनेजर श्री शरण गोपाल सहित संस्था सचिव भँवरलाल श्रीवास। उक्त सम्मान हाथरस (उ.प्र.) में उनके निवास स्थान पर जाकर प्रदान किया गया।

पुरातत्वविद् डॉ. नारायण व्यास केन्द्रित कला समय विशेषांक का लोकार्पण वरिष्ठ साहित्यकार तथा 'अक्षरा' पत्रिका के प्रधान संपादक श्री कैलाशचन्द्र पंत के हाथों लोकार्पित। इस सुअवसर पर उपस्थित डॉ. नारायण व्यास, जिन पर केन्द्रित विशेषांक तथा श्री शशिकांत लिमये, वरिष्ठ रंगकर्मी सहित कला समय पत्रिका के संपादक भँवरलाल श्रीवास।

1998 से निरंतर प्रकाशित
RNI NO. MPHIN/2017/73838

कला समय पत्रिका अब वेबसाइट पर उपलब्ध
www.kalasamaymagazine.com

ISSN 2581-446X
(पंजीयन पूर्व प्रकाशित अंक, वर्ष सम्मिलित)
(वर्ष : 20+04) पूर्णांक-107
वर्ष-4, अंक-2, अक्टूबर-नवम्बर 2020

माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल म.प्र. द्वारा 'रामेश्वर गुरू सम्मान' से पुरस्कृत
श्री भारतेन्दु समिति कोटा (राज.) द्वारा 'साहित्यश्री' सम्मान एवं
साहित्य मण्डल श्री नाथद्वारा (राज.) द्वारा 'सम्पादक रत्न' सम्मान से सम्मानित
म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन भोपाल (म.प्र.) द्वारा उर्मिला तिवारी स्मृति 'सप्तपर्णी सम्मान' से पुरस्कृत

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

संरक्षक
नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
डॉ. महेन्द्र भानावत
पं. विजय शंकर मिश्र
श्यामसुंदर दुबे
पं. सुरेश तातेड़
कैलाशचन्द्र घनश्याम पाण्डेय

परामर्श
लक्ष्मीनारायण पयोधि
ललित शर्मा
राग तेलंग
प्रो. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग'
प्रो. सुधा अग्रवाल

सांस्कृतिक प्रतिनिधि
चेतना श्रीवास
उमेश कुमार पाठक

वेबसाइट प्रबंधन
मयंक अग्रवाल

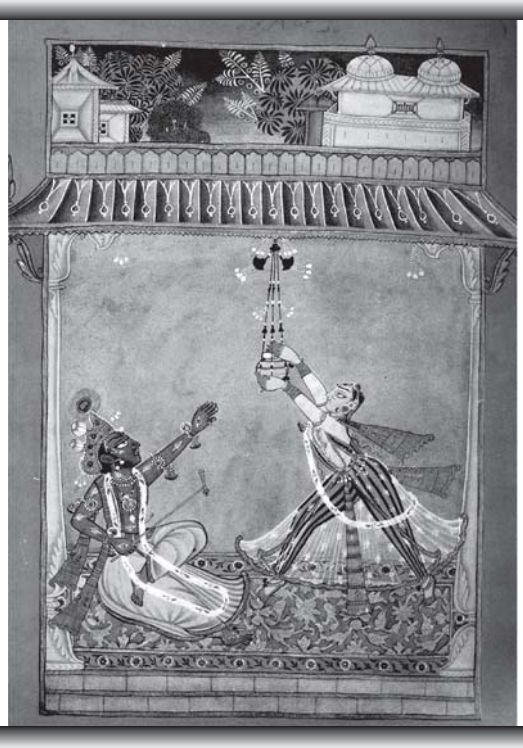

लघुचित्र : नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के सौजन्य से

संपादक
भँवरलाल श्रीवास
bhanwarlalshrivas@gmail.com
94256 78058

सह संपादक
डॉ. मधु भट्ट तैलंग

उप संपादक
राहुल श्रीवास

संपादक मंडल
रामेश्वर शर्मा 'रामूभैया'
साहित्य
हरीश श्रीवास
कला
डॉ. मुक्ति पाराशर
संस्कृति
नरिन्दर कौर
प्रबंध

कानूनी सलाहकार
जयंत कुमार मेढ़े (एडवोकेट)

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	: 150 /-	(व्यक्तिगत)
	: 175 /-	(संस्थागत)
द्वैवार्षिक	: 300 /-	(व्यक्तिगत)
	: 350 /-	(संस्थागत)
चार वर्ष	: 500 /-	(व्यक्तिगत)
	: 600 /-	(संस्थागत)
आजीवन	: 5,000/-	(व्यक्तिगत)
(केवल 15 वर्षों के लिए)	: 6,000/-	(संस्थागत)

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेजे)

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की शाखा **(IFSC : ORBC0100932)** में **KALA SAMAY** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

कला समय पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, यह जरूरी नहीं कि संपादक, प्रकाशक, मुद्रक उनसे सहमत हों। पत्रिका से सम्बन्धित समस्त विवाद, भोपाल न्यायालय के अधीन ही रहेंगे।
सम्पादन, संचालन, प्रबंधन एवं प्रकाशन- अवैतनिक/अव्यवसायिक

विशेष नोट : © सर्वाधिकार सुरक्षित 'कला समय' प्रबंधन यह स्पष्ट करना आवश्यक समझता है कि 'कला समय' में प्रवेशांक फरवरी-मार्च 1998 से लेकर अब तक प्रकाशित होने वाली समस्त सामग्री या सामग्री के अंश के पुनर्प्रकाशन तथा पुनरुत्पादन के सर्वाधिकार कॉपीराइट अधिनियम के अंतर्गत 'कला समय' के पास सुरक्षित हैं। अत: कोई भी व्यक्ति या संस्था 'कला समय' की इस सामग्री या इस सामग्री के अंश का उपयोग प्रबंधन की पूर्वानुमति के बिना न करें।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस काम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.) - 462016 से प्रकाशित। संपादक- भँवरलाल श्रीवास

प्रतिष्ठापूर्ण विशेषांक के विद्वान रचनाकार...

डॉ. हर्ष व्ही. दहेजिया

राधावल्लभ त्रिपाठी

विजय शर्मा

नवल कृष्ण

रमेश दवे

श्यामसुंदर दुबे

विजय बहादुर सिंह

कैलाशचन्द्र पंत

डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू

डॉ. महेन्द्र भानावत

ध्रुव शुक्ल

डॉ. मंजुला चतुर्वेदी

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

प्रकाशित चित्रों के स्त्रोतों सहित उन समस्त रचनाकारों के प्रति 'कला समय' आभार व्यक्त करती है। जिन्होंने अपना रचनात्मक सहयोग इस अंक को दिया है।

-संपादक

इस बार

- संपादकीय / 5
  लघुचित्रों और साहित्य के अंतर्संबंध
- विचार
  पाठ और लघुचित्र का संबंध /डॉ. हर्ष व्ही. दहेजिया/ 6
  भारतीय लघुचित्रांकन की परम्परा और उसके अंतर्संबंध/नवल कृष्ण/ 7
  काव्य तथा लघुचित्रांकन : संदर्भ - पहाड़ी लघुचित्र / विजय शर्मा/ 8
  काव्यमुक्ता रूपों की माला में सभी कलारूप गुंथे हुए हैं /ध्रुव शुक्ल/ 8
- आलेख
  साहित्य और कला के अंतर्संबंध/नर्मदा प्रसाद उपाध्याय/9
  कला और साहित्य / राधावल्लभ त्रिपाठी/ 13
  काव्य और चित्र का अंतरावलंबन / श्यामसुंदर दुबे / 16
  चित्रांकन और साहित्य - अन्तरसम्बंध की अंतरंगता / रमेश दवे / 19
  श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय: निस्पृह और एकाग्र साधक / कैलाशचन्द्र पंत / 21
  प्रश्न चुनौतीपूर्ण तो है पर असाध्य नहीं / विजय बहादुर सिंह / 22
  कला और साहित्य का अंतर्संबंध : चित्र और काव्य / डॉ. मंजुला चतुर्वेदी / 23
  चांदी की नमकीन झील में लघुचित्रों का इन्द्रधनुष / डॉ. महेन्द्र भानावत / 24
- आवरण कथा / 26
  भारतीय लघुचित्र तथा संस्कृत व रीतिकालीन .... / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
- **लघुचित्रों की चित्रावली/35**
- आलेख / 67
  लघुचित्र और साहित्य की परम्परा / डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू
- साक्षात्कार / 72
  डॉ. कहानी भानावत द्वारा डॉ. चित्रसेन से हुई बातचीत के प्रमुख अंश
- लोक में अद्वैत / 74
  लोक में अद्वैत -दर्शन की व्यवहारिकता / श्याम सुंदर दुबे
- मध्यांतर / 75
  तुर्की कवि मेटिन जेन्गिज की कविताएँए अनुवाद: मणि मोहन
  मनोज जैन 'मधुर' के गीत /76
  डॉ. भूपेन्द्र हरदेनिया की कविताएँ /77
  कविता विकास की ग़ज़लें / 78
  संगीता गुप्ता की कविताएँ / 79
  असंख्य रंगों का धनक है दीपक / डॉ. महेन्द्र भानावत / 80
  हरिवंशराय बच्चन की कविताएँ / 81
- पुस्तक समीक्षा
  मालवा के भित्ति चित्र : कला की लोक स्मृति / रमेश दवे / 82
  भेड़ियों ने कहा शुभरात्रि / डॉ. संजीव जैन / 85
- भेट वार्ता / 87
  सुप्रसिद्ध गायिका मालविका भट्टाचार्य से पं. विजय शंकर मिश्र की भेंटवार्ता
- कला समय उत्तराधिकार / 89
- आयोजन
  लोक-संस्कृति पर केन्द्रित चौथी दत्तोपंत ठेगड़ी राष्ट्रीय व्याख्यान माला .../90
  संस्कृति के नए राग-रंग से रौशन होगा 'विश्वरंग - 2020'/ 92
- समवेत / 94
  'भवभूति' अलंकरण 2020 श्री दुर्गाप्रसाद झाला (हमारे समूह के सम्मानित सदस्य) तथा श्री ओम भारती को .... / डॉ. मुक्ति पराशर को द रियल सुपर वुमन अवार्ड / प्रथम पद्मश्री एम. टी. व्यास स्मृति संस्कृति सेवा पुरस्कार एवं द टीचर एण्ड द टॉट पुस्तक का विमोचन / वरिष्ठ साहित्यकार युगेश शर्मा के कोरोना कथा संग्रह 'जाग उठे मन के रिश्ते का लोकार्पण' / चावल के दानों से महात्मा गांधी जी को याद किया : नीरू छावड़ा कलाकार, जयपुर / मानस भवन परिसर में बनेगा श्रीराम सांस्कृतिक और पुरातात्विक संग्रहालय
- समय की धरोहर/ 95
- संस्मरण / 96
  जब पंडित रविशंकर जी ने मुझे गले लगाकर आशीर्वाद दिया / जगदीश कौशल

शब्द संयोजन एवं आकल्पन - गणेश ग्राफिक्स, भोपाल, 9981984888 | **आवरण चित्र** - नर्मदा प्रसाद उपाध्याय | **अंतिम आवरण चित्र** - नर्मदा प्रसाद उपाध्याय | **छायाचित्र** - मनीष सराठे, सुनील सेन, गुगल से साभार | **रेखांकन** - रोहित प्रसाद | **सहयोग** - धन सिंह, लता श्रीवास | **आवरण सज्जा** - मनोज माकोड़े, गणेश ग्राफिक्स

(संशोधित एवं परिमार्जित अंक)

संपादकीय

लघुचित्रों और साहित्य के अंतर्संबंध

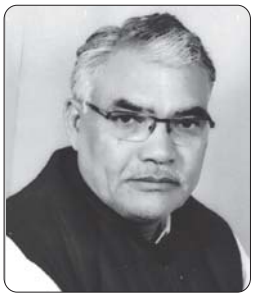

सीस-मुकुट, कटि-काछनी, कर-मुरली, उर-माल।
इहिं-बानक मो मन सदा बसौ बिहारी लाल।।
- बिहारी सतसई

कवि की सच्ची अनुभूति चित्रकार की कला का स्पर्श पाकर मुखर हो जाती है। साहित्य और कलाओं के अंतर्संबंधों की बुनियाद में सदा से एक सृजनात्मक बेचैनी रही है। वो अकुलाहट जो नया, अनूठा और बहुरंगी रचना चाहती है। भारतीय लघुचित्रों में राजस्थानी, पहाड़ी, मुगल, मालवा और बुन्देलखण्डी से लेकर उड़ीसा तथा बंगाल व कच्छ तक की चित्रशैलीयों का महत्वपूर्ण योगदान है। हमारा समूचा सांस्कृतिक परिवेश इसी कलात्मक विविधता सौन्दर्य बोध और अपार आनंद से सराबोर है। इस लघुचित्र कला में हमारी राग-रागनियों से लेकर महाभारत, वाल्मीकि रामायण और मध्यकाल के काव्य में वर्णित कृष्णलीला, नायिका भेद आदि चित्रित हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई कविता, छंद, सुरताल से हमजोली कर रही है तो कहीं वह कथा-उपन्यास सी संवाद करती प्रतीत होती है। 'कविता को आधार बनाकर चित्रकारों ने एक संपूर्ण दृश्य लोक से भरपूर संसार इस युग में निर्मित किया है।' तो रंग-रेखाओं और मूर्ति-शिल्पों में कोई भावामय लगाव जीवन के देखे - अनदेखे दृश्यों को उकेर रही है। बिहारी, केशव सहित अनेक कवि रीतिकाल में हुए जिनके काव्य प्रसंगों के आधार पर देश की विभिन्न शैलियों में लघुचित्र बनाये गए हैं। दतिया कलम चित्रकार ने काव्य की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए अपनी कल्पना में दोहों के भीतर स्पंदित घटनाक्रमों को एक आकार देते हुए रंगों-रेखाओं और आघातों के माध्यम से काव्य और चित्रकला के अंतर्संबंधों को कुशलता पूर्वक चित्रित किया है। इस आपाधापी भरी बोझिल बेस्वाद होती जा रही दुनिया आखिर थक-हार कर संस्कृति की छाव में विश्रांति चाहती है।

ख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने हिन्दी साहित्य, भारतीय चित्र और मूर्तिकला के संबंध में उल्लेखनीय शोध और लेखन कार्य किया है। संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक काव्य ग्रन्थों व उनके आधार पर मध्यकाल की विभिन्न चित्रांकन शैलियों में बनाए गये उदाहरणों को प्रस्तुत करते हुए कतिपय प्रश्न उपस्थित किये हैं तथा अपनी जिज्ञासाएं भी रखी है उन्हें लगता है कि या तो ये लघुचित्र विद्वानों, विमर्शकारों और समीक्षकों के दृष्टिपथ में नहीं आ पाए या इन्हें ललितकला का विषय मानकर छोड़ दिया गया। क्या इन पर विचार न होना कला और साहित्य विशेषकर चित्रांकन और साहित्य के अंतर्संबंधों की उपेक्षा होना नहीं है?

अगर देखे तो अकेले राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में ही 18 हजार से अधिक लघुचित्र संरक्षित हैं, अनेक सचित्र ग्रन्थ भी हैं जो देश-विदेश के संग्रहालयों में ये लघुचित्र भरे पड़े हैं, इस बारे में विस्तार से बात की जाना चाहिए। 'चित्रांकन और साहित्य के अंतर्संबंध' विषय पर जो पूरी तरह उपेक्षित है पर एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम बन सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर विमर्श, शोध, पाठ्यक्रम पर नई शिक्षा नीति के अंतर्गत शासन की मध्यस्थता के बीच राज्य और केन्द्र स्तर पर सार्थक प्रयास होना चाहिए। इससे विलुप्त होती कला को बचाने के साथ ही भावी पीढ़ी को भी लाभ होगा। इस हेतु नर्मदा प्रसाद उपाध्याय जी ने पहल की है उनके इस प्रयास को 'कला समय' ने गंभीरता से लिया है। पत्रिका समय-समय पर इस तरह के विमर्श, विचार, देशभर के विद्वान लेखकों, समीक्षकों, अध्येताओं से आग्रह कर सभी के रचनात्मक सहयोग से सार्थक प्रयास करती रही है। 'लघुचित्रों और साहित्य के अंतर्संबंध' विषय पर भी हमने विद्वानों से विचार, आलेख आमंत्रित किये हैं। इसमें हमें कृपापूर्वक सफलता भी मिली है। हम सभी विद्वानों का हृदय से आभार व्यक्त करते हैं। यह विशेष केन्द्रित अंक विद्वानों के रचनात्मक सहयोग से समृद्ध बन पड़ा है तथा सभी विद्वानों ने इस विषय को गंभीरता से लेते हुए स्वीकार किया है कि इसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाना चाहिए। प्राप्त आलेख सर्वश्री डॉ. हर्ष व्ही. दहेजिया, श्री नवल कृष्ण, श्री विजय शर्मा, श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, श्री श्याम सुन्दर दुबे, श्री कैलाश चन्द्र पंत, श्री रमेश दवे, श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, डॉ. महेन्द्र भानावत, डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू', श्री ध्रुव शुक्ल, डॉ. विजय बहादुर सिंह, डॉ. मंजुला चतुर्वेदी, डॉ. कहानी भानावत आदि। प्राय: सभी विद्वानों के हम पुन: आभारी है। विषय को स्पष्ट करने हेतु काव्यों के प्रसंगों पर आधारित 'लघुचित्रों की चित्रावली' रंगीन भी प्रस्तुत की है। जो कला समय की पहली रंगीन पहल होगी।

कला समय अपने जिज्ञासु पाठकों, शोधार्थियों हेतु अगले अंक से 'समाधान' स्तंभ की शुरुआत करने जा रही है जिसमें कला, संस्कृति और संगीत पर महत्वपूर्ण आलेख उससे जुड़े प्रश्नों के जवाब विषय विशेषज्ञों के माध्यम से जिज्ञासाओं का समाधान किया जाने का प्रयास होगा।

अत: आप सभी लेखकों और सुधी पाठकों से हमारा निवेदन है कि आप सब आगे बढ़कर 'कला समय' में अपना रचनात्मक एवं अपनी विशिष्ट क्षमता के अनुरूप हर संभव सकारात्मक योगदान दें।

दीपावली पर्व की मंगलमय शुभकामनाओं के साथ।

- भँवरलाल श्रीवास

विचार

पाठ और लघुचित्र का संबंध

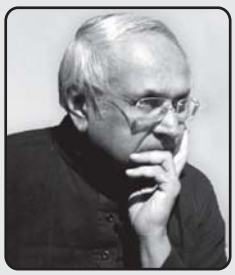

डॉ. हर्ष व्ही. दहेजिया

पाठ (या इबारत) तथा चित्र के साथ उसके संबंध की जानकारी हमें तब प्राप्त होती है जब हम लघुचित्रों की विकास गाथा की ओर दृष्टिपात करते हैं। यह विकास 15वीं सदी के अंत में या 16वीं सदी के आरंभ में गुजरात में निर्मित भागवत पुराण पर आधारित अंकनों में दिखाई देता है। ये चित्र पोथियों के प्रारूप में बनाए गए जिनमें प्राय: आधा भाग पाठ के लिए संरक्षित किया गया।

चूंकि इन चित्रों का विकास क्षैतिज (क्षितिज के समान्तर) स्वरूप की पोथियों से खड़ी पाण्डुलिपियों में हुआ तथा यह सर्वप्रथम मालवा शैली में बनाए गए अंकनों में हुआ, ऐसी स्थिति में पाठ का स्वरूप संकुचित हुआ तथा यह पाठ चित्र के ऊपरी भाग में एक पट्टे में अंकित किया जाने लगा लेकिन पाठ तथा चित्र के बीच पारस्परिक संबंध था।

राजपूत काल में यह परम्परा निरन्तर रही लेकिन पहाड़ी चित्रों के निर्माण काल में जो लघुचित्र बने उनमें पाठ अदृश्य हो गया तथा केवल कुछ अवसरों पर पाठ को चित्र के पीछे अंकित किया गया। पहाड़ी चित्रकार अपने बनाए इन चित्रों के बारे में इतने आश्वस्त थे कि उनका विश्वास था कि बिना पाठ के भी चित्रों के प्रसंगों की पहिचान हो सकती है, इसलिए उन्होंने पाठ के अंकन को अनावश्यक माना। लेकिन मेरे मत में उनका यह सोच सही नहीं था इसलिए कि अधिकांश चित्र साहित्य के आधारतल से जन्मे थे तथा पाठ व चित्र दोनों को साथ-साथ पढ़ा और देखा जाना था।

यदि इस परिप्रेक्ष्य में हम भारतीय लघुचित्रों की बात करें तो हमें भारतीय कला के पाश्चात्य विद्वानों का ऋणी होना चाहिए जो इन विस्मृतप्रायः चित्रों को प्रकाश में लाए यद्यपि पाश्चात्य मस्तिष्क इतिहास से संचालित तथा बुद्धिप्रधान रहा है इसलिए कुछ अपवादों को छोड़कर ये विद्वान इन लघुचित्रों की सही व्याख्या नहीं कर पाए।

इसका लाभ हिन्दी तथा ब्रज के साहित्यकारों तथा लघुचित्रों के पारखियों इन दोनों को होना है।

आज भारत में जो कलाकृतियां संग्रहालयों में प्रदर्शित हैं या पुस्तकों में प्रकाशित हैं वे पूरी तरह साहित्य के उस संदर्भ से बाहर हैं जिसके आधार पर उनका निर्माण हुआ तथा उनसे (इसी अवस्था में अर्थात संग्रहालयों में रखी स्थिति में) किसी प्रकार का संबंध केवल खण्डित कला अनुभव के रूप में ही फलित होगा। ऐसी कलाकृतियां चाहे वे मंदिर, महल, हवेली या घर में निर्मित हुई हों के निर्माण का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि वे हमारे जीवन का, हमारी चर्या का अंग हैं। कोई भी वस्तु जो सार्थक और सुन्दर हो वह हमें अंदर से पोषित और समृद्ध करती है तथा हमारे जीवंत बने रहने के अनुभव को पूर्णत: पुर्नजीवित करती रही है।

अपने उत्कृष्टतम स्तर पर वह हमारे आल्हादकारी अनुभव को तीव्रतर और परिमार्जित करती है, उसे विस्तार देती है। वह हमारी अनुभूतियों को सजीव बनाए रखती है तथा विश्व को और वृहद् रूप में तथा सुन्दर रूप में देखने के लिए द्वार खोलती है। हम चूंकि इसकी सुन्दरता का आस्वाद लेते हैं या इसके सुन्दर स्वरूप को ग्रहण करते हैं इसलिए यह हमारे मस्तिष्क को शांति प्रदान करती है, उसे स्थिरता देती है, धैर्य प्रदान करती है तथा हमारी भौतिक आसक्ति को आध्यात्मिक अनुभव में परिणत करती है।

हमारे लिए सौन्दर्य मीमांसा या सौन्दर्य का अन्वेषण एक कलात्मक क्रियाकलाप है। यह सौन्दर्यगत अनुभव के रूप में आज के आधुनिक आशयों के अन्तर्गत समझा जाता है तथा इसे यदि विचार व मनन के साथ अनुभव किया जाए तो यह एक रुपान्तरकारी तथा उत्कृष्ट अनुभव सिद्ध हो सकता है।

यदि इस परिप्रेक्ष्य में हम भारतीय लघुचित्रों की बात करें तो हमें भारतीय कला के पाश्चात्य विद्वानों का ऋणी होना चाहिए जो इन विस्मृतप्राय: चित्रों को प्रकाश में लाए। यद्यपि पाश्चात्य मस्तिष्क इतिहास से संचालित तथा बुद्धिप्रधान रहा है इसलिए कुछ अपवादों को छोड़कर ये विद्वान इन लघुचित्रों की सही व्याख्या नहीं कर पाए।

हम कल्पना करें ओरछा के राजा इन्द्रजीत के एक राजदरबारी दृश्य की जहां संध्या की एक भोज सभा को वे संचालित कर रहे हैं, तथा वहां महाकवि केशव व राजनर्तकी प्रवीण राय भी मौजूद हैं। इस सभा में रसिकप्रिया के रचियता केशव एक दोहा पढ़ते हैं जिस पर राजनर्तकी नृत्य करती है तथा उस सभा में उपस्थित रसिकजन भी इस कार्यक्रम में सहभागी होते हैं। वहां राज ग्रन्थालय के प्रभारी, लिपिकार तथा कलाकार भी उपस्थित हैं। ग्रन्थालय प्रभारी व लिपिकार इस अवसर पर काव्य की बारीकी को कलाकारों को समझाते हैं और जब कलाकार इसे पूरी तरह समझ लेते हैं तब इस दोहे के आधार पर वे चित्र बनाना आरंभ करते हैं। जब यह चित्र तैयार हो जाता है तब वह राजा को दिखाया जाता है और राजा संतुष्ट होने के बाद वह एक हाथ से दूसरे हाथ में उपस्थित समुदाय के बीच परिचालित किया जाता है। इस परिचालन के पश्चात वह रेशमी वस्त्र में लपेटकर बस्ते में बांध दिया जाता है। समय-समय पर वह बस्ता खोला जाता है तथा उस चित्र को राजदरबारियों को दिखाया जाता है।

लेकिन आज का परिदृश्य इससे कितना भिन्न है। आज कला को अनुभव करने की यह अन्तरावलम्बन की प्रकृति पूरी तरह अनुपस्थित है जो अत्यंत दु:खद है।

हिन्दी के विद्वानों को इन चित्रों को देखने की आवश्यकता है तथा कलाकारों से यह अपेक्षित है कि वे इस साहित्य से परिचित हों जिसने इन चित्रों को बनाए जाने के लिए कभी प्रेरित किया था

अध्यक्ष - भारतीय कला एवं संस्कृति विभाग,
कार्लटन विश्वविद्यालय, ओटावा, कनाडा

■

विचार

भारतीय लघुचित्रांकन की परम्परा और उसके अंतर्संबंध

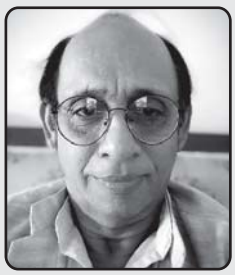

नवल कृष्ण

लघुचित्रों के साथ काव्य तथा संगीत के अंतर्संबंध की समस्या वर्तमान दशक के भारत में गंभीर है। यह समस्या समाज के 'आधुनिकता के श्राप' के कारण ही है। ज्ञातव्य है कि यह समस्या, सल्तनत, मुग़ल और ब्रिटिश काल में अपने अपने शेड में आती रही, पर इतनी शोचनीय नहीं रही। यह सम्बद्धता पारम्परिक सौंदर्य शास्त्र, लोक या राजाश्रय में किसी न किसी पॉकेट में अपने मूल रूप में सुरक्षित व पल्लवित होती रही। लेकिन आज की हमारी पीढ़ी को अपनी ही परंपरा के मर्म को समझाने में बड़ी कठिनाई होती दिखाई देती है। वैसे ही भारतीय सौंदर्य के गूढ़ प्रतीक जो लघु चित्रों, काव्यों तथा लोक/ शास्त्रीय संगीत- तीनों में निहित रहे हैं, को भलीभांति समझना, किसी भी काल में शत प्रतिशत संभव नहीं रहा।

मुझे अपने संपर्क में आये गिने चुने कलाविदों यथा राय कृष्णदास, कपिला वात्स्यायन, आनंद कृष्ण, प्रमोद चंद्र, मधुसूदन ढाकी, जगदीश प्रसाद गोयनका, हर्ष दहेजिया (कनाडा), राम गोपाल विजयवर्गीय (जयपुर), बी एन गोस्वामी, नर्मदा प्रसाद उपाध्याय आदि में इन तीनों चारों विधाओं का अदभुत संगम देखने को मिला।

यह मज़ेदार बात ज्ञातव्य है कि, पिछली सहस्राब्दी के उत्तरार्ध से विदेशीकलाविद- सम्बंधित काव्य की व्याख्या कर भारतीय लघु चित्रों को अधिकाधिक मर्मस्पर्शी बनाने का अथक प्रयास करते जा रहे हैं। इसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। लेकिन हम कम से कम उनके इस प्रयत्न के समानांतर भारत में अपनी परंपरा को जीवित क्यों नही करते दिखते हैं ? यह समझ के परे है।

नि:सन्देह, भारतीय चित्रकारों ने अधिकांशत: चित्रों के ऊपर या पीछे पूरे पद्य लिखे या सूत्र में उनका इशारा किया। फिर भी हमने उन इशारों व्यद्य का लाभ नहीं उठाया, चित्रों को सरस बनाने में इनमें एक और प्रकार के लिखित सारपूर्ण लेखों पर टिप्पणी करने आवश्यक है, जो चित्रित से अंतरसंबंध रखते है- वह है बही-खातों से जुड़े कलाकारों का परिचय, जो उनकी सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों के दर्पण हैं । इस तिरस्कृत पक्ष पर मैं पिछले 40 वर्षो से शोध कर रहा हूँ। उपलब्धियां असीमित हैं। चित्रों को सारपूर्ण बनाने में सक्षम होते हैं, इस तरह के अंतरसंबंध।

आज के दशक में केवल मुट्ठी भर कलाविद भारतीय लघु चित्रकला तथा उनसे जुड़े काव्य पक्ष के गूढ़ अर्थ को भलीभांति या आंशिक रूप से समझते है। काव्य की भांति, संगीत से क्या सम्बन्ध है, जानते हैं । इस परिप्रेक्ष्य में ध्यान रखना ज़रूरी होगा कि यह हमारी अनमोल विरासत है।

लेकिन प्रश्न यह है कि शेष कलाविद क्या कर रहे हैं? मेरी दृष्टि इस

विषम परिस्थिति में, 'विरासत' से वंचित जो बहुसंख्यक युवा एवम उभरते कला- इतिहासकार अपने अपरिपक्व ज्ञान की एक मृगमरीचिका में भटक रहे हैं, उन्हें श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के द्वारा वर्तमान विरासत संरक्षण के एक अमूल्य पक्ष- 'लघुचित्रकला एवं काव्य के अन्तरसम्बन्ध' को अक्षुण्य बनाने के भगीरथ उद्यम को राष्ट्रीय तथा अंतराष्ट्रीय रूप में प्रभावी बनाने में जुट जाना चाहिए।

भारत मे हर विधा के संस्थानों में उपर्युक्त अन्तरसंबंध के गंभीर अध्ययन की कुछ कक्षाओ को 'आवश्यक' कराया जाना चाहिए, अन्यथा हम इस 'विरासत' से वंचित हो जाएंगे। वैसे ही प्रतिदिन हम अपनी थाती से कुछ न कुछ खोते जा रहे है और विदेशी कलाविदों के शोधों पर आश्रित होते जा रहे हैं। ऐसी भयावह परिस्थिति के बीच यह उद्यम नई आशा का संचार निश्चय ही करेगा.

- प्रख्यात इतिहासकार तथा
पूर्व निदेशक भारत कला भवन, वाराणसी (उ.प्र.)

■

विचार

काव्य तथा लघुचित्रांकन : संदर्भ - पहाड़ी लघुचित्र

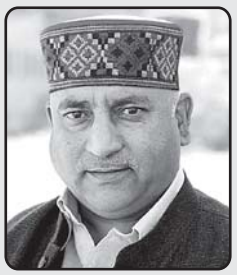

विजय शर्मा

पहाड़ की विभिन्न शैलियों जैसे कांगड़ा, बसोहली, चम्बा, मंडी आदि में प्रभूत लघुचित्र बने। अधिकांश लघुचित्र इन शैलियों में कृष्ण काव्य पर बने। मध्यकाल में रचे गए काव्य के आधार पर काफी लघुचित्र तत्कालीन कलाप्रेमी राजाओं के संरक्षण में बने। गीतगोविन्द से लेकर रसमंजरी तक के काव्य पर आधारित अंकन जहां एक ओर हुए वहीं दूसरी ओर अमरूकशतक के प्रसंगों तथा पौराणिक कथाओं को भी चित्रांकन का विषय बनाया गया।

कला गुरु डॉ. आनंदकुमार स्वामी ने लगभग एक शताब्दी पूर्व प्रकाशित कृति 'राजपूत चित्रकला' के द्वारा पश्चिम के कलारसिकों को भारतीय परम्परागत चित्रकला का रसास्वादन कराया था। डॉ. कुमार स्वामी ने चित्रकला के मूल आधार अर्थात् भारतीय काव्य के महत्व को समझा था। बाद में वर्ष 1926 में बोस्टन संग्रहालय के केटलॉग के भाग पांच में डॉ. आनंदकुमार स्वामी ने राजपूत शैली के अनेक चित्र प्रकाशित किए। चित्रों के साथ ही उन्होंने चित्रों पर लिखित दोहों और कवित्तों को भी प्रकाशित किया। उनका मानना था कि भारतीय काव्य राजपूत चित्रकला का अभिन्न अंग है। उन्होंने इन भारतीय चित्रों के अध्ययन के लिए उसके काव्य पक्ष पर भी उतनी ही संजीदगी से अध्ययन किए जाने पर बल दिया।

हालांकि डॉ. मोहिन्दर सिंह रंधावा ने पहाड़ी चित्रकला की विषयवस्तु पर बहुत से ग्रंथ प्रकाशित किए लेकिन ये पर्याप्त नहीं है। वर्तमान में कलाविदों ने भी भारतीय चित्रकला के इस महत्वपूर्ण पक्ष को प्राय: पूर्णत: उपेक्षित किया है जिसके कारण विद्वत्ता किस्सागोई तक सीमित होकर रह गई है। नई पीढ़ी के अनुसंधानकर्ताओं ने भी चित्रकला और काव्य के परस्पर संबंध के प्रति उदासीनता दर्शाई है। इसलिए आज के समकालीन परिदृश्य में भी कला के इतिहास और साहित्यिक पक्ष में कोई महत्वपूर्ण योग दिखाई नहीं देता।

पहाड़ की विभिन्न शैलियों में बनाए गए लघुचित्र चित्रकला की भारतीय विरासत के अनमोल अंग हैं। इन लघुचित्रों का अंर्तअनुशासिक अध्ययन उपेक्षित रहा है इसलिए इस ओर ध्यान देकर नई पीढ़ी को चित्रकला और काव्य इन दोनों के अनुशासनों के अंर्तसंबंध की जानकारी दी जानी अपेक्षित ही नहीं अपरिहार्य भी है।

- पद्मश्री से सम्मानित प्रख्यात कलाकार एवं पहाड़ी कला के विशेषज्ञ

काव्यमुक्ता रूपों की माला में सभी कलारूप गुंथे हुए हैं

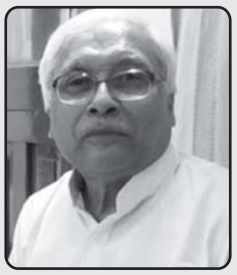

ध्रुव शुक्ल

लघु चित्रों और साहित्य के संबंध पर विचार करते हुए श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने मध्यकाल और रीतिकाल की कविता का मूल्यांकन करने वाले आलोचन कर्म पर जो प्रश्न उठाये हैं, वे ध्यान देने योग्य हैं।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण की याद आती है। जहाँ संगीत, नाटक, कविता, चित्र, नृत्य भाषा और प्रतिमा की अंतर-निर्भरता को प्रतिपादित किया गया है। ये पूरी तरह स्वाधीन नहीं हैं । इनके रचयिताओं को सभी कलाओं और काव्य का अनुशासन पहचानना चाहिए तभी इनमें परिष्कार होता है।

संस्कृत कवि जयदेव और रीति कवि देव की कविता में दृश्यात्मक सामंजस्य भरपूर है। इनके समकालीन भी ऐसे ही हैं। मध्यकालीन कवि जयदेव के राधा-माधव ही तो रीतिकालीन कविता में -- राधिका-कन्हाई सुमिरन के बहाने से रच-बस गये हैं। उनने लघु चित्रों और संगीत-नृत्य-नाट्य में भी अपने बसाव से सहृदयों का मन मोह लिया है। चित्रकला और नृत्य के समीक्षकों ने इस पर विचार भी किया। हिंदी में वासुदेवशरण अग्रवाल और हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कलाविनोद की अंतर-निर्भरता को परखा है। आधुनिक चित्रकारों में सैयद हैदर रजा ने इन मध्यकालीन लघु चित्रों से प्रेरणा पाकर अपने कैनवस पर महात्मा गांधी के प्रिय भजनों और बिनोबा जी की आध्यात्मिक शब्दावली में अंतर्निहित भावों को चित्रित किया है। उन्होंने तो आधुनिक कवि अशोक वाजपेयी की कविता को भी अपने चित्रों में स्थान दिया है।

साहित्य के आधुनिक आलोचकों ने कभी कविता की पाठ विधियों पर ध्यान नहीं दिया। रीतिकालीन कविता को ये आलोचक दरबारी और सामंतवादी कहकर तिरस्कत करते रहे वे संस्कृत कविता को पुरातन पंथी और भक्ति कविता को पुनरुत्थानवादी कहते रहे। उन्हें जयदेव के जगदीश के प्रेम में बसी प्रकृति में कहाँ रुचि रही। वे यह बताने से चूकते रहे कि कवित्त और सवैयों की शब्द सृष्टि में चित्र और नृत्य भी जन्म ले रहे हैं। इन काव्यमुक्ता रूपों की माला में सभी कलारूप गुंथे हुए हैं। उनमें किसी प्रतिमा की भाव भंगिमा रूप ले रही है। उनकी पढंत की लय में ऋतुकाल बसे हुए हैं।

लघु चित्रों के अध्येता श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय उत्सुक हैं कि कविता की शब्द सृष्टि में बसे दृश्य,संगीत नाट्य और प्रतिमा को पहचानने की साहित्यिक आलोचकीय बुध्दि युगानुरूप प्रखर हो सके।

- प्रख्यात साहित्यकार, मो.: 09425301662

आलेख

साहित्य और कला के अंतर्संबंध

अंतर्संबंध का आशय अंतर से अर्थात् हृदय से जुड़ा होना है। यह संबंध दिखाई नहीं देता। जैसे हरिद्वार की गंगा जब प्रयागराज आती है तो इस संगम में अंत:सलिला सरस्वती मिलती है, विलीन हो जाती है। लेकिन दिखाई नहीं देती। संगम की पहचान तभी बनती है जब उसमें सरस्वती का विलय हो। संबंध बाहरी है, अंतर्संबंध आंतरिक। हृदय से जुड़े हुए।

दादा माखनलाल चतुर्वेदी कला को रुठने वाली लड़की कहते थे जो एक जगह सीधी नहीं बैठती, निरन्तर गतिशील रहती है और उसकी निर्मात्री शक्ति इतनी प्रबल होती है कि वह जाने कितने कला रूपों की जननी बन जाती है।

कला मनुष्य की उस तपस्या का मूर्त रूप है जो उसे विकास की ओर ले जाती है। भारतीय कला में निरन्तरता है, जड़ता या स्थिरता नहीं है। इसलिए खजुराहो के जीवंत शिल्प समाधि के नहीं संभावनाओं के शिल्प हैं। भारतीय कला की सौंदर्य दृष्टि अभिजात नहीं है। यहां सौन्दर्य लोक से, प्रकृति से आया है। सीता, शकुन्तला और पार्वती के सौन्दर्य का आख्यान जब कालिदास करते हैं तो वे उसी वन्य शोभा के परिप्रेक्ष्य में करते हैं जो हम सबकी है। सीता के स्नान से सरोवर तप से पूरित होते हैं, पार्वती के वन में किए गए तप से उनका सौन्दर्य निखरता है और दुष्यंत कण्व के आश्रम की उस कन्या के सौन्दर्य पर रीझते हैं जो श्रम से आया है।

कला मनुष्य की उस तपस्या का मूर्त रूप है जो उसे विकास की ओर ले जाती है। भारतीय कला में निरन्तरता है, जड़ता या स्थिरता नहीं है। इसलिए खजुराहो के जीवंत शिल्प समाधि के नहीं संभावनाओं के शिल्प हैं। भारतीय कला की सौंदर्य दृष्टि अभिजात नहीं है। यहां सौन्दर्य लोक से, प्रकृति से आया है। सीता, शकुन्तला और पार्वती के सौन्दर्य का आख्यान जब कालिदास करते हैं तो वे उसी वन्य शोभा के परिप्रेक्ष्य में करते हैं जो हम सबकी है। सीता के स्नान से सरोवर तप से पूरित होते हैं, पार्वती के वन में किए गए तप से उनका सौन्दर्य निखरता है और दुष्यंत कण्व के आश्रम की उस कन्या के सौन्दर्य पर रीझते हैं जो श्रम से आया है।

भारतीय कला जैसा कि डॉ. आनंद कुमार स्वामी कहते हैं चिरनवीन है। उसका उद्देश्य नवीन बनाना नहीं बल्कि नवीन बने रहना है। वह परम्परा के बीच से परम्परा का अतिक्रमण करती है। भारतीय कला परम्परा को बंधन नहीं मानती वह पाश्चात्य कला से इस दृष्टि में भिन्न है कि वह देह के सुगठित होने पर बल नहीं देती सुसंहत होने पर देती है। वह निजता की आख्याता नहीं है, समग्र की उद्घोषक है।

भारतीय कला के आवश्यक तत्वों में प्रेषणधर्मी वाक्तत्व तथा मंगलादेशी विनायकधर्म शामिल हैं। विनायकधर्म से आशय है किसी सफल कलाकृति के लिए निरंतर किया जाने वाला प्रयत्न तथा संस्कार। भारतीय कला की अवधारणा में केन्द्र पर बल नहीं है बल्कि केन्द्र की परिधि में आने वाले उस समस्त संसार पर है जो अपने आपमें विश्व का लघुरूप है। यह धर्म के सच्चे मर्म से अलग नहीं है। वह जगत में बिखरे हुए सौंदर्य के रस की अनुभूति तो है ही इस रस से उपजने वाले सृजन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति भी है।

भारत कला का मर्म उसका सौंदर्य पक्ष है और इस सौंदर्य के मूल में है रस जो वास्तव में अखण्ड होने का, सकल होने का सार है। यह सौंदर्य व्यष्टि का वह छंद है जो समष्टि के छंद से मिलकर चलता है और सुंदर को जन्म देता है। यह छंद शब्द में, रेखा में, गंध और वर्ण में सामंजस्य के भाव को ढूंढ लेता है। यही कारण है कि भारतीय कला के सौंदर्य में काव्य की प्रतिष्ठा हो जाती है। यहां वाणी और अर्थ विश्व के सर्वस्व हो जाते हैं और कालिदास इसी को अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं –

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये,
जगत: पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।

पाश्चात्य सौंदर्य की अवधारणा से भारतीय अवधारणा का साम्य नहीं है। पश्चिम की अवधारणा वैयक्तिकता पर ज़ोर देती है। उसके केन्द्र में व्यक्ति है, लोक नहीं है। वहां समन्वय या समग्रता तथा अखण्डता के तत्व दिखाई नहीं देते। पश्चिम की कला अवधारणा विभिन्न खण्डों में अपने आपको अभिव्यक्त करती है। वहां कला एकाकी और स्वतंत्र है। विभिन्न अनुशासनों के बीच साझीदारी का प्राय: अभाव है जबकि भारतीय कला अवधारणा में यह एक आवश्यक तत्व है। पश्चिम में विशेष रूप से फ्रांस में अनेक कलावाद जन्मे और समय के साथ विलुप्त होते गए। जबकि भारत में वाद पर ज़ोर नहीं रहा। मूल संवेदना वही रही भले उसका समय के अनुरूप रुपांतरण होता रहा हो।

इस परिप्रेक्ष्य में स्पष्ट होता है कि भारतीय कला में अवधारणाओं का गुंजलक विद्यमान नहीं है। भारतीय कला में कहीं से कहीं तक क्लिष्टता नहीं है, दुरूहता नहीं है। वह नैसर्गिक है। भारतीय कलाकार ने अमूर्तन में भी अपनी उन मानस छवियों को साकार किया है जो कहीं अपने लोक की चिंताओं से जन्मी है। भारतीय कला के प्रवाहों की दिशा में भिन्नता है लेकिन उनके उत्स में भिन्नता नहीं है। उत्स की यह भिन्नता भले परिभाषित की जाने की चेष्टा की जाती रही हो किन्तु यह भिन्नता है नहीं।

जहां तक साहित्य का प्रश्न है यह शब्द संस्कृत के सहित शब्द से बना है जिसका अर्थ है साथ-साथ। जो सबके सहित है वह साहित्य है। साहित्य, सहित शब्द में आकारत्व के साथ 'य' प्रत्यय के योग से बना है। प्रख्यात वैयाकरण भामह ने अपने ग्रंथ काव्यालंकार में साहित्य की परिभाषा देते हुए कहा है, ''सहितस्य भाव: साहित्यम' राजशेखर और कुन्तक ने भी साहित्य का प्राय: यही अर्थ किया है। साहित्य तब तक साहित्य है ही नहीं जब तक उसमें कहीं स्व है, निजता है केवल अपने तक सिमटने का भाव है। साहित्य समग्र का है इसीलिए साहित्य है और तैत्तरीय उपनिषद में इस भावना का उद्घोष रसो वैस: कहकर किया गया है अर्थात रस हमारी सबकी दैवीय प्रकृति है। जहां रस है वहां वह है ही इसीलिए

कला और साहित्य के भारतीय संदर्भ में लोक की दृष्टि बहुत महत्वपूर्ण है। यह लोक पश्चिम के फोक से पूरी तरह भिन्न है। यह लोक हमारी वाचिक परम्परा में आया है जिसके माध्यम से शब्द नहीं बल्कि चेतना परिवहित होती है। इसी लोक शब्द से आलोक बना है जिसका अर्थ है उजाला। इस लोक से कला और साहित्य दोनों अटूट रूप से सम्बद्ध हैं। भारत में कला अपने लोक का प्रतिनिधित्व करती है। यहां तक कि मध्यकाल के राज्याश्रयी चितेरों और शिल्पियों ने भी अपने लोक को रचा है। सांची, भरहुत, अमरावती, नागार्जुनकोण्डा, कार्ले, कान्हेरी, भज, बदामी और सित्तनवासल की कला से लेकर अजन्ता और बाघ तक में लोक के दर्शन होते हैं। यह लोक कला और साहित्य में कुछ इस तरह समाया है कि उसके बिना इन दोनों की पहचान नहीं बनती।

क्योंकि वह सबका है। भारतीय दर्शन का भी यही स्वर है,

अयं निज: परो वेति, गणना लघु चेतसाम
उदार चरितानां च, वसुधैव कुटुम्बकम्

पूरे विश्व को साथ लेने का भाव और यह भाव इतना प्रबल है कि यदि तुलसी राम की कथा स्वांत: सुखाय भी लिखते हैं तो वह युगों-युगों के, पूरे समाज के सुख के लिए कही गई कथा हो जाती है और सूर जैसे दृष्टा जब अपनी आंखों के कोटरों में राधा-कृष्ण की लीला देखते हैं तो फिर वह लीला जन-जन की आंखों में समा जाती है और सूर के जैसा दृष्टिसंपन्न सर्जक हमें संसार में दूसरा नहीं दिखाई देता। उनकी आंखों का अन्धत्व समूचे युग का आलोक बन जाता है। सूर की आंखें हमारी आंखें हो जाती हैं। हम आज साहित्य को जिस विधागत रूप तक सीमित करते हैं यह साहित्य का, उसकी व्यंजना का विखण्डन है।

भारत में साहित्य का अर्थ बड़ा व्यापक है। भारतीय साहित्य भाषा को भाषा के साथ या भाव को भाव के साथ ही नहीं मिलाता अपितु मानव को मानव के साथ, अतीत को वर्तमान के साथ और बाह्य को अन्तर के साथ मिलाता है और इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल वृत्तियों का सामंजस्य कहते हैं और यही कार्य कला भी करती है।

मनुष्य के कला प्रयत्नों का अर्थ है जड़ता से संघर्ष और यही प्रयोजन साहित्य का भी है। नवीनजी की पंक्तियां हैं -

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाए
एक लहर इधर से आए
एक लहर उधर से जाए

इस तरह दोनों के प्रयोजन समान हैं।

वास्तविकता यह है कि कला और साहित्य इन दोनों की प्रकृति और प्रयोजन एक जैसे हैं केवल माध्यम भिन्न हैं। जैसे हम कविता में शब्दों को, उनसे बने वाक्यों को पढ़ते हैं वैसे ही शिल्पी पत्थर की भाषा को पढ़ता और सुनता है। यह सोचना गलत है कि शिल्पी अपनी छेनी से पत्थर में मूर्ति बनाता है, सच यह है कि पत्थर की भाषा उसे अपना रूप बता देती है और वह सिर्फ यही करता है कि पत्थर की इस मूर्ति के स्पष्ट होने में पत्थर का जो अंश बाधक होता है उसे निकाल देता है तो वह मूर्ति स्वयं प्रकट हो जाती है। वास्तव में विषय के अंर्तनिहित छन्द को कवि और पत्थर के अंर्तनिहित छन्द को शिल्पी पहचानता है। आज कविता कानों का विषय बना दी गई है और चित्र या शिल्प आंखों के विषय मान लिए गए हैं जबकि सच्चे अर्थों में कविता आंखों का विषय भी होती है और चित्र या मूर्ति की ध्वनियों को भी हमारे कान सुनते हैं।

कवि या शिल्पी वास्तविक जगत की वस्तुओं को देखकर पहले अपने चित्त में एक मानसी मूर्ति बनाते हैं और फिर कविता लिखी जाती है या मूर्ति बनाई जाती है। यह कार्य सरल नहीं होता। यह कहा गया है कि सीधी रेखा खींचने का काम सदैव टेढ़ा होता है।

साहित्य और कला इन दोनों की प्रकृति समान है। दोनों लोक के लिए, लोक की देन है तथा इन दोनों का प्रयोजन लोकहित है। कला और साहित्य तपस्या के प्रतिफल हैं और दोनों की पहचान एक-दूसरे से बनती है। यह अलग बात है कि इस अंतरावलंबन को हम नहीं पहचान पाते।

कला और साहित्य के भारतीय संदर्भ में लोक की दृष्टि बहुत महत्वपूर्ण है। यह लोक पश्चिम के फोक से पूरी तरह भिन्न है। यह लोक हमारी वाचिक परम्परा में आया है जिसके माध्यम से शब्द नहीं बल्कि चेतना परिवहित होती है। इसी लोक शब्द से आलोक बना है जिसका अर्थ है उजाला। इस लोक से कला और साहित्य दोनों अटूट रूप से सम्बद्ध हैं। भारत में कला अपने लोक का प्रतिनिधित्व करती है। यहां तक कि मध्यकाल के राज्याश्रयी चितेरों और शिल्पियों ने भी अपने लोक को रचा है। सांची, भरहुत, अमरावती, नागार्जुनकोण्डा, कार्ले, कान्हेरी, भज, बदामी और सित्तनवासल की कला से लेकर अजन्ता और बाघ तक में लोक के दर्शन होते हैं। यह लोक कला और साहित्य में कुछ इस तरह समाया है कि उसके बिना इन दोनों की पहचान नहीं बनती।

कला और साहित्य के बीच अंतर्संबंध वेदों के समय से हैं। वेद, पुराण, ब्राह्मण और स्मृतियों से लेकर पाणिनी की अष्टाध्यायी, कौटिल्य का अर्थशास्त्र और वात्सयायन के कामसूत्र से लेकर वाल्मीकि की रामायण और वेदव्यास के महाभारत तक के ग्रन्थ साहित्य और कला के ग्रन्थ हैं। इनका विभाजन हमने धर्म, साहित्य और कला के ग्रन्थों के रूप में कर दिया है। ईसा पूर्व की सदियों में रचे गए इन ग्रन्थों की परम्परा बाद में कालिदास, बाणभट्ट और भोज तक निरंतर चली तथा इन महान कवियों और लेखकों ने जो ग्रन्थ रचे वे कला और साहित्य के अंतर्संबंधों पर केन्द्रित ग्रन्थ थे। मुझे इस संदर्भ में दसवीं सदी के बाद रचे गए एक ग्रन्थ की याद आती है यह है, माधवाचार्य विद्यारण्य के द्वारा रचित ग्रन्थ 'पंचदशी'। यह साहित्यिक ग्रन्थ कहा जाता है लेकिन वास्तव में यह साहित्यिक प्रतीकों के माध्यम से हमारे कला दर्शन की कहानी कहता है। इस संदर्भ में विशेष रूप से कालिदास, अमरूक और जयदेव का स्मरण होता है। उदाहरण के रूप में यदि कालिदास को लें तो यह ज्ञात होगा कि कालिदास का कृतित्व केवल शब्द धरोहर नहीं है बल्कि वह मूर्तिकला, शिल्प, संगीत, नाट्य और चित्रकला जैसे अनुशासनों में भी मूर्त हुआ है।

कालिदास की कृतियों का यदि केवल चित्रांकन की दृष्टि से ही परिशीलन किया जाए तो यह ज्ञात होता है कि उनकी सभी कृतियों में चित्रांकन

के विपुल संदर्भ हैं। ये दो तरह के हैं। एक ओर तो वे चित्रों के संबंध में भिन्न-भिन्न प्रसंगों में संदर्भ देते हैं तो वहीं दूसरी ओर अपनी रचनाओं में इतना बिम्बात्मक विवरण देते हैं कि समूचा चित्र हमारी आंखों के सामने मूर्त हो उठता है। रघुवंश, मेघदूत, कुमारसंभव, ऋतुसंहार जैसे काव्य तथा अभिज्ञानशाकुंतल, विक्रमोवर्शीय तथा मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने जो बिम्ब खींचे हैं वे अद्भुत हैं। इन बिम्बों के आधार पर परवर्तीकाल में भी पहाड़ और राजस्थान की शैलियों से लेकर मालवा और दकन तक की शैलियों में बहुत सुंदर लघुचित्रों के अंकन हुए। कालिदास ने अपनी सभी नायिकाओं के सौन्दर्य का सजीव वर्णन किया, विशेष रूप से पार्वती का। उन्होंने पार्वती के केवल दैहिक लावण्य का ही वर्णन नहीं किया अपितु उनकी कुशाग्र बुद्धि का भी बिम्बात्मक वर्णन किया। उन्होंने लिखा कि पार्वती ने जब पढ़ना आरम्भ किया तो पूर्व जन्म की सभी विद्याएं उन्हें वैसे ही स्मरण हो आईं जैसे शरद ऋतु के आगमन पर गंगा में हंस स्वयं आ जाते हैं अथवा स्वत: चमकने वाली जड़ी बूटियों से रात को चमक आ जाती है।

पार्वती की उज्जवल मुस्कान के बारे में उन्होंने लिखा कि यदि नवपल्लवों के बीच सफेद फूल को रख दिया जाए या लाल रंग के मूंगे पर उज्जवल मोती रख दिया जाए तो दोनों में से एक की तुलना पार्वती के अरुण अधरों पर कान्ति बरसाने वाले उनके उज्जवल मंद हास्य से की जा सकती है। इसी तरह बारहवीं सदी में जयदेव के द्वारा रचित ग्रन्थ गीतगोविन्द अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसकी प्रत्येक अष्टपदी जहां एक ओर साहित्य का मानक है वहीं दूसरी ओर वह संगीत और चित्रकला जैसी महान कलाओं की उद्गाता भी है। नाट्य, संगीत, चित्रांकन और नृत्य ये सब कलाएं गीतगोविन्द में विद्यमान हैं तथा गीतगोविन्द के आधार पर इन अनुशासनों का आज के समय तक विस्तार हुआ है। गीतगोविन्द की अष्टपदियां विभिन्न रागों में निबद्ध हैं।

आगे चलकर यह परम्परा खड़ी बोली के साहित्य में भी निरंतर चली आती है। भारतेन्दु से लेकर उनके समकालीन प्रताप नारायण मिश्र और बालमुकुन्द गुप्त जैसे निबंधकार कला और साहित्य के आख्याता हैं, और आगे के काल में माखनलाल चतुर्वेदी जैसे महान रचनाकार हमारे बीच आते हैं जिन्होंने 'कला का अनुवाद' और 'साहित्य देवता' जैसे अर्न्तअनुशासिक ग्रन्थ लिखे। अज्ञेय, डॉ. राम विलास शर्मा और नामवर सिंहजी तथा डॉ. रमेश कुन्तल 'मेघ' जैसे रचनाकारों ने हमारे कला और साहित्य की अर्न्तअवलंबित परम्परा पर आधुनिक युग में विचार किया है।

यदि भारतीय लघुचित्रों की परम्परा को लें जो ग्यारहवीं सदी से लेकर उन्नीसवीं सदी तक अप्रतिहत रूप से विद्यमान रही तो हम पाऐंगे कि इन लघुचित्रों में राग-रागिनियों को चित्रित किया गया है अर्थात् ध्वनि का चित्रण है। हम देखेंगे कि इन लघुचित्रों में वाल्मीकि की रामायण, तथा व्यास के महाभारत के प्रसंगों सहित कालिदास के रघुवंश, मेघदूत तथा अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रसंगों को चित्रित किया गया है। मुग़लकालीन लघुचित्रों में ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण है। फतेहपुर सीकरी के निर्माण से लेकर विभिन्न युद्ध दृष्यों को चित्रित किया गया है। मध्यकाल की पहाड़ी और राजस्थान व मालवा की चित्रशैलियों में केशव की रसिकप्रिया व कविप्रिया, बिहारी की सतसई, मतिराम के रसराज तथा पुहकर की रसबेली के प्रसंगों को चित्रित किया गया है। इस चित्रण में कल्पनाशीलता भी है जो इस चित्रकर्म को साहित्य के निकट ले जाती है। इसलिए यह सूत्र ध्यान में रखा जाना बहुत आवष्यक है कि ये अंतर्संबंध भारतीय कला और साहित्य के दृढ़ स्तम्भ हैं।

यहां एक और दिलचस्प तथ्य का उल्लेख करना चाहता हूं जिसे स्व. रायकृष्णदासजी ने उद्घाटित किया था तथा जो साहित्य, कला और इतिहास इन तीनों के अंतर्संबंधों पर विस्तार से प्रकाश डालता है। उन्होंने ग्यारहवीं से सत्रहवीं सदी तक चित्रांकन की उस शैली को अपभ्रंश शैली का नाम दिया जिसमें भारत में मुख्य रूप से भारत में जैन ग्रंथ चित्रित किए गए थे और इसका कारण उन्होंने यह दिया कि उस काल में भारत में अपभ्रंश बोली जाती थी जो अनगढ़ भाषा थी और जिसका प्रभाव चित्रांकन पर हुआ जिसके कारण अपभ्रंश शैली में अनगढ़ तथा अपरिष्कृत चित्र बनाए गए। उन्होंने उस समय के साहित्य ग्रंथों से ऐसे उदाहरण दिए जिनके अनुसार राजदरबार के कवि अपभ्रंश के कवियों को निम्न मानकर उनकी हंसी उड़ाते हैं। यह तथ्य साहित्य, इतिहास और कला के इन तीनों के अंतर्संबंधों को उजागर करता है। वैसे भी कालक्रम के लिहाज से विभाजित शिल्प, स्थापत्य और चित्रांकन इतिहास के अन्तर्गत ही आते हैं

डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी कृति आस्था और सौन्दर्य में इस अंतर्संबंध के बड़े रोचक विवरण दिए हैं। उन्होंने डॉ. वृन्दावन लाल वर्मा के उन नोट्स का वर्णन दिया है जो उन्होंने मृगनयनी तथा गढ़कुंडार लिखते समय लिए थे। इनमें ग्वालियर के किले का चित्र भी है और कुतुबमीनार की लाट पर खुदे हुए शिलालेख का वर्णन भी है।

कला और साहित्य के अंर्तसंबंधों का भारतीय संदर्भ में पूर्ण औचित्य है इसलिए कि भारतीय साहित्यिक और कलात्मक परिप्रेक्ष्य के प्रयोजन एक जैसे हैं। हमारे यहां ये अंतर्संबंध आज के नहीं हैं, ये हमें विरासत में मिले हैं। वात्सयायन ने जिन चौंसठ कलाओं को गिनाया है उनमें एक तिहाई कलाएं साहित्यिक व ललित कलाएं हैं। जैसे कथा, नाटक, आख्यायिका, काव्य, शिल्प, छन्द, विदेशी लिपियों व विदेशी भाषाओं में पारंगत होने की कला, वीणा, वेणु, मुरज तथा कांस्य वाद्यों का बजाना व नृत्य, गीत, चित्रकर्म, पुस्तक लेखन व पत्रच्छेदन जैसी कलाएं।

ये हमारे संस्कारों में हैं। इन अंतर्संबंधों के कारण हमारे चिंतन का और उस चिंतन से उपजे सृजन का क्षेत्रफल बढ़ता है।

हुआ यह है कि हमने इन अंतर्संबंधों की पड़ताल करना बंद कर दिया। हम जड़ता से जुड़ गए। आप स्मरण कीजिए हमारे वेद की ऋचाओं का

कला और साहित्य के अंर्तसंबंधों का भारतीय संदर्भ में पूर्ण औचित्य है इसलिए कि भारतीय साहित्यिक और कलात्मक परिप्रेक्ष्य के प्रयोजन एक जैसे हैं। हमारे यहां ये अंतर्संबंध आज के नहीं हैं, ये हमें विरासत में मिले हैं। वात्सयायन ने जिन चौंसठ कलाओं को गिनाया है उनमें एक तिहाई कलाएं साहित्यिक व ललित कलाएं हैं। जैसे कथा, नाटक, आख्यायिका, काव्य, शिल्प, छन्द, विदेशी लिपियों व विदेशी भाषाओं में पारंगत होने की कला, वीणा, वेणु, मुरज तथा कांस्य वाद्यों का बजाना व नृत्य, गीत, चित्रकर्म, पुस्तक लेखन व पत्रच्छेदन जैसी कलाएं। ये हमारे संस्कारों में हैं। इन अंतर्संबंधों के कारण हमारे चिंतन का और उस चिंतन से उपजे सृजन का क्षेत्रफल बढ़ता है।

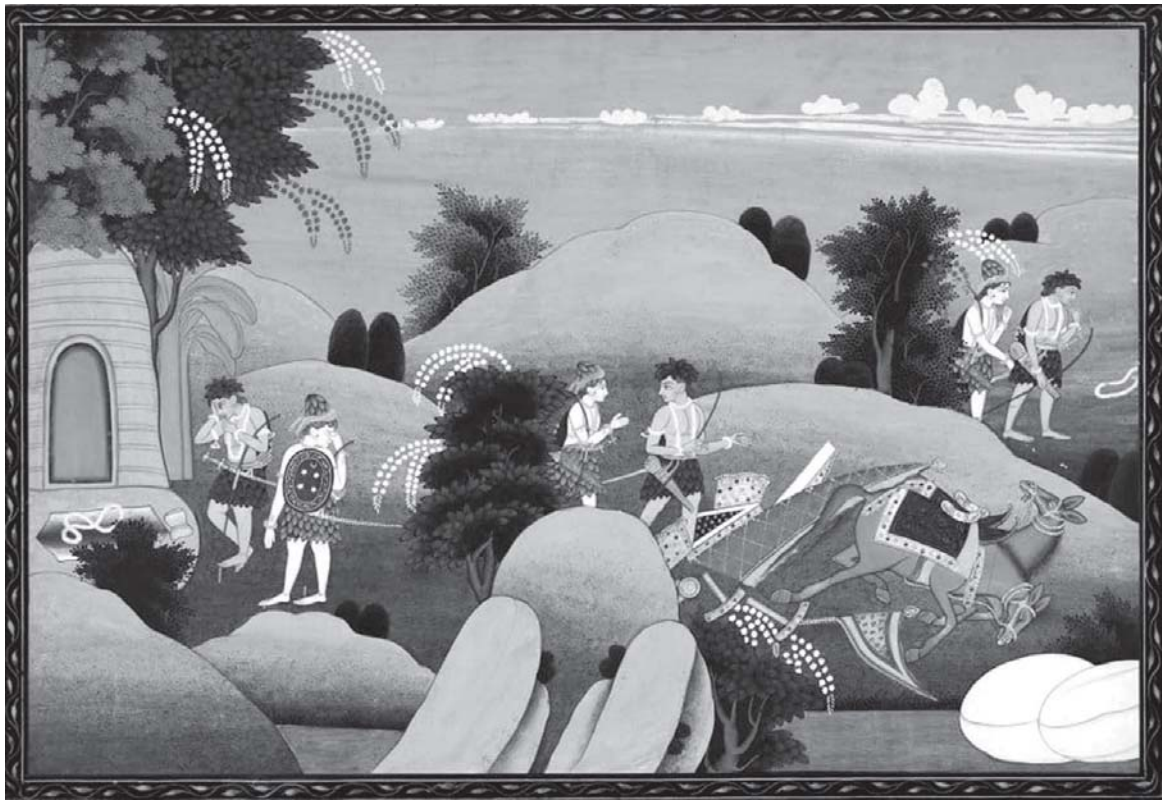

जिनमें किसी ईश्वर की वंदना नहीं है बल्कि अग्नि की, ऊषा की और नदी की वंदना है। इसलिए कि आदिमानव इर्द-गिर्द के वातावरण को जीवंत रूप में देखता था। उसके लिए पेड़, पशु, पक्षी, नदी और पर्वत सब जीवंत थे। वे उसके लिए प्राणवान थे और इसी जीवंतता ने मनुष्य के विकास का पथ प्रशस्त किया। वास्तव में विकास के पथ पर आगे बढ़ने में ही कलात्मकता विद्यमान थी, वह सृजन विद्यमान था जो साहित्य की आत्मा है।

साहित्य और कला के अंतर्संबंध इसलिए भी होना चाहिए क्योंकि आज विश्व में निकटता इतनी बढ़ी है कि उस निकटता की यह आवश्यकता हो गई है कि हम समग्रता में एक दूसरे को समझें और जानें। अपने अस्तित्व को अलग-अलग रखते हुए हम इस निकटता को अनुभव नहीं कर सकते और यह निकटता तभी जानी जा सकती है जब हमारे तमाम अनुशासन एक दूसरे से मिलें, उनकी आवाजाही हो और वे एक दूसरे की सर्जनात्मकता को ग्रहण कर सकें।

संवेदना का स्वभाव ही है रुपांतरित होना। वह कला और साहित्य की विभिन्न विधाओं में रुपांतरित होती है। यह संवेदना कविता में भी ढलती है तथा रंगों और रेखाओं के माध्यम से चित्रों में और पत्थर के माध्यम से शिल्प में। स्रोत एक ही है लेकिन स्रोतस्विनी के प्रवाह अलग-अलग होने के कारण दूरियां बढ़ती हैं।

आज विधागत रूप से संवाद होना बंद हो गया। इसके कारण अपरिचय का क्षेत्रफल बढ़ा और सृजनात्मक आयामों की सीमाएं संकुचित हुईं। आज आवश्यकता इस बात की है कि चाहे कलाकार हों या साहित्यकार वे आत्मचिंतन करें, परीक्षण करें स्वयं का। उन्हें लगेगा कि वास्तव में हमारी विरासत को विस्मृत कर देने के कारण, धरातल को परिवर्तित कर देने के कारण कहीं ग़लती हुई है जिसके कारण सर्जनात्मकता आहत हुई है।

यह प्रयास किया जाना चाहिए कि संवादों की निरंतरता बनी रहे तथा कला और साहित्य की रक्तवाहिनियों में दौड़ने वाले रक्त का प्रवाह कभी थमे नहीं।

-नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास नई दिल्ली से प्रकाशित पुस्तक
'भारतीय कला के अंतर्संबंध' से साभार

आलेख

कला और साहित्य

राधावल्लभ त्रिपाठी

भारतीय दृष्टि ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों को उनकी पारस्परिकता में देखती रही है। कलाओं के विमर्श में यह बात विशेष रूप से लागू होती है। एक कला को अन्यान्य कलाओं की पारस्परिकता में ही समग्रतया बूझा परखा जा सकता है। यह समग्रता की दृष्टि अखंड के बोध से जुड़ती है। भारतीय कलाबोध इसी अखंड के रस में पगा हुआ है।

कलाएँ एक दूसरे के संसार में आवाजाही करती हैं, कहीं कहीं वे गलबाही करती हुई साथ साथ चलती हैं, कहीं एक दूसरे में समा जाती हैं, कभी कभी दो कलाएँ गंगा और यमुना की तरह मिलती हैं, तीसरी कोई कला उनकी तह में सरस्वती की तरह बहती है। कलाओं में सहयात्रा का संबंध हो सकता है, अंगागिभाव का संबंध हो सकता है और एकमेक हो जाने का भी। एक कला के चंदन में दूसरी कला अपना पानी मिलाती है, ताकि चंदन घिसा जा सके, तीसरी कला में इस चंदन की गंध समाई हो सकती है।

हमारे समय में कलाओं के परस्पर संबंध का प्रश्न विशेष रूप से उठाया जाता रहा है, इस पिछले कुछ दशकों में एक खास तरह की शब्दावली इससे जुड़ कर प्रक्षेपित की जाती रही है - कलाओं की अन्तर्निर्भरता, अन्तरवलंबन या इंटरडिपेंडेंस, अन्तरानुशासी अध्ययन इंटरडिसिप्ररी स्टडी, पारस्परिकता या मुचुअलिटी- इसतरह के बहुत से शब्द शिक्षाजगत् में उछले, ऊपर से आदेश भी जारी किये गये कि इंटरडिसिप्ररी स्टडी रिसर्च होनी चाहिये। बार बार यह भी कहा जाने लगा कि हमारे अध्ययनों में समग्र दृष्टि या होलिस्टिक एप्रोच होनी चाहिये। यह शब्दावली आयातित और आरोपित थी, इसलिये हमारी पाठ्यचर्या में भीतर तक सहज ग्राह्य नहीं हो पाई। ऊपर ऊपर से कुछ शोधकार्य विश्वविद्यालयों में इस तरह के किये जाने लगे, जिन्हें अन्तरानुशासी प्रकृति का माना गया।

समग्र दृष्टि सरकार का या नियोजक संस्थाओं का आदेश जारी होने से पाठ्यचर्या में नहीं आ सकती, या तो वह संस्कारों में सहज रूप से समोई रहती है या वह परंपरा में रचबस कर पाई जा सकती है। नर्मदाप्रसाद उपाध्याय ने हमारी पाठ्यचर्या में कलाओं के समावेश को ले कर सवाल उठाये हैं - वह इसलिये कि वे उन्होंने अपने को इस समग्रता में रचा बसा लिया है। वे चाहते हैं कि इस समग्रता का पुनर्वास हमारी शिक्षा व्यवस्था में हो।

हमारी परंपरा में कलाओं की अन्तर्निर्भरता, अन्तरवलंबन या इंटरडिपेंडेंस, अन्तरानुशासी अध्ययन इंटरडिसिप्ररी स्टडी, पारस्परिकता या मुचुअलिटी- इस तरह की शब्दावली पहले क्यों नहीं आई, उसका एक कारण है। यह शब्दावली उस समाज में उपजेगी, जो विखंडित समाज है। जो समाज अखंड में रमा हुआ है, उसमें इस शब्दावली के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। जहाँ कमी होगी, ज़रूरत होगी इन सब की वहां यह शब्दावली उपजेगी, जो लोग रस में रसे पगे हैं, जिनके पास समग्र दृष्टि है, उन्हें बार बार यह कहने की ज़रूरत ही नहीं है इन खंडों को हम परस्पर एकता में देखें, उनके लिये वे अखंड के हिस्से हैं ही। तब प्रश्न यह आता है कि हमारी परंपरा में कला की अखंडता का विचार किस तरह किया गया है। शब्दावली नहीं है, ऐसी बात नहीं है, पर वह खंडित दृष्टि से उपजी शब्दावली के स्थान पर अखंड दृष्टि से उपजी हुई शब्दावली है। कलाओं की अखंडता का विचार हमारे आचार्यों ने दो तरह से किया है - एक समवाय संबंध के द्वारा दूसरे संयोग संबंध के द्वारा। समवाय संबंध में दो या दो से अधिक कोटियाँ इस तरह परस्पर मिल जाती हैं कि वे अविभाज्य बन जाती हैं, उनमें संश्लेषण हो जाता है। न्यादर्शन में इसे अयुतसिद्धों का संबंध कहा गया है। दूध में पानी मिला दिया जाये, तो फिर अलग अलग कर के नहीं देखा जा सकता। इस दृष्टि से हम देखते हैं नाट्य या रंगमंच में चित्र, मूर्ति, नृत्त या नृत्य, संगीत-ये सारी कलाएँ भीतर तक भिदी हुई हैं। अभिनेता की काया, वाणी और मानस में नृत्य, चित्र और मूर्ति के अभिप्राय अविभाज्यतया सिमट आते हैं। यह समवाय संबंध हुआ। संयोग संबंध तिलतंडुलवत् होता है। तिल और चावल मिला कर के थाली में हम रख देते हैं, तो गड्डमड्ड तो हो गये, लेकिन बारीकी से देखें तो चावल के दाने अलग और तिल के ने अलग दिखेंगें, चाहें तो एक एक बीन बीन कर अलग अलग भी कर सकते हैं। इसी तरह नाट्य में संगीत, चित्र, मूर्ति या नृत्य की कलाएँ संयोग संबंध से भी रह सकती हैं। एक कला की संरचना में अन्य कला उसका अंग बन कर आ सकती है। इस दृष्टि से नाट्यशास्त्र में भरतमुनि कहते हैं -

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।ना.शा. 1.116

(ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म नहीं है, जो इस नाट्य में नहीं देखा जाता)

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में नाटक में इतर कलाओं का विनियोग बताते हुए कहा है -

एते कलाकौशलसम्प्रयुक्ताः कार्यास्तथा लोकविधानयुक्ताः।
धर्मार्थकामाद्युपदेशगाश्च हिताय लोकस्य नरेन्द्रचन्द्र

(विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तीसरा खण्ड, 17.63)

(ये नाटक आदि प्रबन्धविभिन्न कलाओं के कौशल से युक्त, लोकविधान से समन्वित तथा धर्म, अर्थ और काम के उपदेशक होते हैं, लोक हित के लिए इनका प्रयोग करना चाहिए।)

नाट्यशास्त्र में नाट्य को अनुकृति या अनुकरण के द्वारा परिभाषित किया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार अनुकरण का तत्व सभी कलाओं में रहता है। मूल तत्व के एक होने से सभी कलाओं में पारस्परिकता, अन्तनिर्भरता और साम्य दिखाई देता है।

नृत्य और नाटक की पारस्परिकता भी इस पुराण में स्वीकार की गयी है (वही, 15.5) तथा प्रतिमा, चित्र, नृत्त, आतोद्य ओर गीत की अन्तनिर्भरता को समझाने के लिये इस पुराण के आरम्भ में ही राजा वज्र का मार्कण्डेय ऋषि से संवाद बताया गया है। राजा वज्र मूर्तियाँ बनवाना चाहते हैं। वे मुनि से कहते हैं कि मुझे प्रतिमालक्षण आइकोनोग्राफी समझा दीजिये। मार्कंडेय उनसे कहते हैं-

चित्रसूत्रं न जानाति यस्तु सम्यङ्नराधिप।
प्रतिमालक्षणं वेत्तुं न शक्यं तेन कर्हिचित्।।

(हे नराधिप, जो व्यक्ति चित्रसूत्र या चित्रकला के शास्त्र को सम्यक् नहीं जानता, वह प्रतिमालक्षण या प्रतिमा का शास्त्र कभी नहीं जान सकेगा।)

तब राजा वज्र कहते हैं कि फिर मुझे चित्रसूत्र समझा दीजिये। मार्कंडेय इसके उत्तर में कहते हैं – ।

बिना तु नृत्तशास्त्रेण चित्रसूत्रं सुदुर्विदम्।
जगतोऽनुक्रिया कार्या द्वयोरपि यतो नृप।।

नृत्तशास्त्र या नृत्तकला के बिना चित्रसूत्र नहीं जाना जा सकता, क्यों कि हे राजन्, दोनों में ही जगत् की अनुक्रिया या अनुकृति होती है।

अब राजा वज्र कहते हैं कि तब फिर नृत्तशास्त्र ही बता दीजिये। मार्कंडेय कहते हैं –

आतोद्येन बिना नृत्तं विद्यते न कथञ्चन।
न गीतेन बिना शक्यं ज्ञातुमातोद्यमच्युत।
गीतशास्त्रविधानज्ञः सर्वं वेत्ति यथाविधि।।

(वही, 2.2-8) कि आतोद्य समझा

आतोद्य या संगीत के वाद्यों के बिना नृत्य का अस्तित्व ही नहीं होता अब कहो कि आतोद्य समझा दीजिये, तो गीत के बिना आतोद्य नहीं जाना जा सकता, गीतशास्त्र का जानकार सब जान सकता है। गीत को समझने के लिये भी काव्य को जानना चाहिये, और काव्य समझने के लिये व्याकरण का ज्ञान होना चाहिये। इसलिये विष्णुधर्मोतत्तर पुराण में आरंभ व्याकरण का विवेचन किया गया, फिर कलाओं का विवेचन पुराणकार काव्य से करते हैं।

भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र में चित्र, मूर्ति, काव्य आदि के उस प्रकार से अलग अलग प्रकरण हीं है, जिस तरह विष्णुधर्मोत्तरपुराण में। पर प्रसंगानुसार नाट्य में विनियोग की दृष्टि से सभी कलाओं का नाट्यशास्त्र में विचार हुआ है नाट्यमण्डप के भीतर विभिन्न प्रकार के चित्र भित्तियों या स्तम्भों पर बनाये जाने चाहिए -- इसका निर्देश नाट्यशास्त्र की परम्परा में मिलता है। उसी प्रकार आहार्यअभिनय के अन्तर्गत वर्णरचना में रंगों का विचार किया गया है, उनका रस से सम्बन्ध भी बताया गया है।

सौन्दर्यानुभूति के विमर्श में चित्रकला के अभिप्रायों का अनेकत्र उपयोग किया गया है। आचार्य शङ्कुक ने रसास्वाद की प्रक्रिया को चित्रतुरगन्याय के द्वारा समझाया था। आचार्य वामन साहित्य की सभी विधाओं में दशरूपक की श्रेष्ठता बताते हुए कहते हैं कि चित्रपट पर निर्मित चित्र में जिस प्रकार विविध वैशिष्ट्य का साकल्य हो जाता है, उसी प्रकार दशरूपकों में भी- **'सन्दर्भेषु दशरूपक श्रेयः। तद्धि चित्रं चित्रपटवद् विशेषसाकल्यात्।'** (काव्यालङ्कारसूत्र, 1.3.30-31)।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार रस, भाव, दृष्टि अंग, उपांग, हस्त आदि की अवधारणाएँ चित्र में उसी प्रकार विनियुक्त होती हैं, जिस प्रकार नृत्य या नाट्य में (विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, 25.7), केवल प्रमाण (नाप) का अन्तर रहता है, नृत्त का प्रमाण चित्र के प्रमाण से भिन्न होता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के इस मन्तव्य को स्वीकार करते हुए भोज ने समराङ्गणसूत्रधार तथा सोमेश्वर ने मानसोल्लास में चित्र का निरूपण करते हुए नाशा. में निरूपित आङ्गिक अभिनय, हस्त-भेद, दृष्टि आदि का प्रतिफलन चित्र में भी प्रतिपादित होता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चित्र के लिए अंगुल का प्रमाण मानक माना गया है, भोज में कला का।

नाशा. में निरूपित स्थान चित्रकला में उसी प्रकार विनियुक्त होते हैं जैसे नाट्य में इस दृष्टि से चित्रशास्त्र और नाट्यशास्त्र का गहरा सम्बन्ध बनता है। भोज ने नाशा. के स्थानों-वैष्णव, समपाद, वैशाखमण्डल, प्रत्यालीढ, आलीढ आदि को चित्र में उन्हीं परिभाषाओं के साथ स्वीकार किया है (समरा., अ. 90)। वे ही राग जो संगीत में हैं, उनसे रागमालिका से चित्र बने हैं।

रसनिष्पत्ति तथा रसास्वाद का चित्र के सन्दर्भ में विस्तृत निरूपण नाशा. से प्रेरित होकर विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा भोज ने किया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण ने चित्र में नव रस माने हैं और प्रत्येक रस के अनुसार चित्र की संरचना का वैशिष्ट्य बतलाया है, रसास्वाद की दृष्टि से गुण और दोष का विचार अवश्य चित्रकला में अलग हो जाता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार दौर्बल्य, स्थूलरेखत्व, अविभक्तत्व (विभाजन की प्रतीति न होना), बृहद्गण्डौष्ठनेत्रत्व, वक्ररेखत्व तथा वर्णसंकर ये चित्र में रसापकर्षक दोष हैं तथा स्थान, प्रमाण, भूलम्भ, मधुरत्व, विभक्तता, सादृश्य, क्षय और वृद्धि ये गुण हैं। नाट्य में सौष्ठव की अवधारणा है। विष्णुधर्मोत्तरकार ने चित्र में अभिनय की स्थितियों तथा भावों की अभिव्यक्ति को सर्वोपरि महत्व दिया है। उसके अनुसार जिस चित्र में भूलम्भ सुशोभित हो, श्लिष्टा हो, माधुर्य का हास प्रतीति होता हो, जो सजीव जैसा दिखायी दे, सांस लेता हुआ लगे, वही चित्र शुभलक्षण वाला होता –

लसतीव च भूलम्भो श्लिष्यतीव तथा नृप।
हसतीव च माधुर्यं सजीव इव दृश्यते।।
सश्वास इव सच्चित्रं च तच्चित्रं शुभलक्षणम्।।

(विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड 43.21-22)

भोज ने चित्र में ग्यारह रस माने हैं, जिसमें नाशा. सम्मत नौ रसों के साथ प्रेयान् नामक दसवां रस है। ग्यारहवें रस को समराङ्गणसूत्रधार में प्रत्यक्षाक्षि कहा गया है।

भोज ने चित्र में दृष्टियों का निरूपण विशेष रूप से किया है, जो नाशा. में प्रतिपादित दृष्टिप्रकारों से कुछ भिन्न भी है। भोज ने ललिता, विकासिता, हृष्टा, विकृता, मुकुलीकृता, भ्रकुटीविभ्रमा, संकुचिता, ऊर्ध्वगता, योगिनी, दीना, विह्वला, जिह्मा, मध्यस्था, स्थिरा-इत्यादि दृष्टियाँ चित्र में भावविन्यास की दृष्टि से मानी हैं। इस प्रकार चित्र में नाशा. में निरूपित स्थानों के अतिरिक्त उसके अपने स्थान भी विष्णुधर्मोत्तर पुराण तथा भोज ने माने हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण ने ऋज्वागत, अनृजु, साचीकृतार्ध-विलोचन, पुरावृत्त, पृष्ठगत, अधःकाय, पुरावृत्त और समानत-ये नव स्थान चित्र के लिए अतिरिक्त माने हैं। भोज ने इन्हीं स्थानों के उपभेद और जोड़ते हुए समरा. के चित्रविषयक प्रकरण में विवेचन किया है।

चित्र के ही समान प्रतिमाओं में भी नाशा. में निरूपित आंगिक अभिनय का चित्रण किया जाना चाहिए-यह विष्णुधर्मोत्तर पुराण, समरा. तथा मान. आदि ग्रन्थों में विवेचन से स्पष्ट है। प्राचीन प्रतिमाओं में करण, हस्त, स्थान, पद आदि का चित्रण नाशा. के अनुसार अनेकत्र मिलता भी है।

कलाएँ एक दूसरे से मिल कर एक अखंड बनाती हैं, पर इससे उनकी पहचान खतम नहीं हो जाती। विभेदक तत्व भी समझना चाहिये। एक मूल तत्व सभी में है, पर जैसे पानी को अलग अलग बर्तनों में हम रखते हैं, तो वह उसके आकार जैसा हो जाता है। गोल गिलास में रखेगें, तो वर्तुलाकार हो जाये, चौकोर बर्तन चतुष्कोण बन जायेगा। रस सभी में है, पर नाट्य में जो रस है उसे नाट्यरस कहा गया। चित्र में जो रस है, उसे चित्ररस कहा गया। सौंदर्य सभी में रहेगा में भावानुकीर्तन, अभिनय और नाट्यधर्मी रहेगा, तो नाट्य नाट्य होगा। काव्यरस भी अलग हो जायेगा। इसी तरह से वाक् का तत्व तो सभी में है, जो वाद्यसंगीत है, उसमें भी वाक् - तत्व तो है। पर कविता में वह आद्यन्त सर्वव्यापी तत्व बन

जाती है। कविता में शब्दबह्म है, संगीत में नादब्रह्म है। प्रतिमा में वह आकार बनता है चित्र में रेखा। वास्तुशास्त्र में वह वास्तुब्रह्म बन जाता है।

कुछ मूल तत्व प्रत्येक कला में आंतरिक और अविभाज्य रूप से रहते हैं। रचनाप्रक्रिया की दृष्टि से अनुकृति या अनुकरण की प्रक्रिया सभी कलाओं में रहती है। कुछ तत्व कलाओं की संरचना के अंग होते हैं, जैसे लय, गति और यति – कविता, गद्य, संगीत, वादन, नृत्य इन सब में अनिवार्यतया रहते हैं। इन समनिष्ठ तत्वों के द्वारा कलाएँ एक दूसरे से संपर्कित होती हैं, सादृश्य होता है। कुछ कलाओं में गहरी अन्तर्निर्भरता हम देख सकते हैं। प्रतिमा और नृत्य। प्रतिमाकार नर्तकी को देख कर प्रतिमा उकेरता है। इसका उलट भी कभी कभी संभव हो जाता है, प्रतिमाओं को देख कर किसी नृत्यविधा को हम फिर से समझते हैं पुनराविष्कार करते हैं – जैसे ओडिसी।

भारत दोसौ साल तक ब्रिटिश हुकूमत ने भारत की शिक्षाव्यवस्था को पंगु और परोपजीवी बना दिया है। उपनिवेशवाद ने हमारी संस्कृत और इतिहास की गलत छवियाँ हमारे मस्तिष्क में बिठाईं, हमारी पाठ्यचर्या का विध्वंस किया। भरतमुनि और मार्कंडेय की कलाओं को समग्रता में देखने वाली दृष्टि हम से छूट गई। साहित्य के प्राध्यापकों ने शोधकार्य के लिये कभी कभी अन्तरानुशासी अध्ययन के नाम पर साहित्य को अन्य अनुशासनों से जोड़ने वाले विषय लिये, पर कलाओं की अंतरंगता हमारी पाठ्यचर्या के बाहर रही। तुलसी, बिहारी, केशव, देव, मतिराम, कालिदास या जयदेव के काव्य को चित्रकला के ज्ञान के बिना नहीं समझा जा सकता। मध्यकाल मे निर्मित चित्रों के साथ ही इनकी कविता को समझा जाना चाहिये। पर अध्यापन पाठ्यचर्या में ऐसा विचार कहीं नहीं किया जाता। संस्कृत विभागों की भी यही स्थिति है। अजंता एलोरा या गुप्तकाल बनी प्रतिमाओं के आलोक में कालिदास के काव्यों की मीमांसा हमारी पाठ्यचर्या का अंग नहीं बन सकी। प्राचीन मन्दिरों में में प्राप्त मूर्त्यङ्कनों, पुरातत्व की कला- सामग्री के आधार पर संस्कृत कवियों को पढ़ा जाये, तो उनकी रचना की समझ और अच्छी बन सकती है। इससे भी अधिक ज़रूरी है कि संगीत, नृत्य, चित्र और मूर्ति का अभ्यास करने वाले छात्रों को साहित्य और नाट्यकला का भी ज्ञान हो।

हमारी ज्ञानसाधना विश्वस्तरीय नहीं बन पा रही है – हमारे विश्वविद्यालय विश्व के सबसे अच्छे विश्वविद्यालयों की होड़ में पिछड़ रहे हैं, उसका कारण इस समग्रता का हमारी पाठ्यचर्या से विलोप हो जाना है। आजादी के पहले तक उपनिवेशवाद ने इस तरह हमारे भीतर घुस कर तोड़ फोड़ नहीं की थी, जैसी आजादी के बाद उसके द्वारा संक्रमित दुष्प्रभावों ने की। आजादी के बाद -- स्कूली शिक्षा हो या उच्चशिक्षा – हम प्रायः इसी परोपजीवी दिमागी गुलामी में जकड़ी शिक्षा व्यवस्था को ढोते रहे हैं। साहित्य के अध्यापकों में अन्य कलाओं के प्रति उपेक्षा का भाव बना रहा है।

नर्मदाप्रसाद उपाध्याय जी ने कला के क्षेत्र में श्रेष्ठ कार्य करने वाले बड़े विद्वानों के उदाहरण दिये हैं – रायकृष्णदास, वासुदेवशरण अग्रवाल डा, रघुवीर सिंह आदि। एक और नाम शिवराम मूर्ति का मुझे याद आ रहा है। उनकी किताबों से संस्कृत कविता को समझने में मुझे मदद मिली। पर ये मनीषी साहित्य के प्राध्यापक नहीं रहे।

चित्र कविता को प्रेरित करते हैं कविता चित्रों को। चित्रकला का ज्ञान कवियों को न होता, तो हमारे साहित्य की अनेक श्रेष्ठरचनाएँ संभव न हो पाती।

भरतमुनि और विष्णुधर्मोत्तरपुराणकार कलाओं के सामीप्य की जो चर्चा करते हैं, कालिदास कविता की भाषा में उसे रूपांतरित करते हैं। विधाता ने शकुन्तला को कैसे गढ़ा होगा इसकी कल्पना करते हुए कविता की सर्जना प्रक्रिया और चित्र तथा मूर्ति की सर्जनाप्रक्रियाओं को कवि ने आमने सामने रख दिया है–

चित्रे निवेश्ये परिकल्पितसत्त्वयोगा
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वं अनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।। ।।2.9 ।।

पहले विधाता ने उसका खाका मन में बनाया होगा,फिर उसमें सत्व या प्राण डाल दिये, उसके बाद रूप या सौन्दर्य की सामग्री इकट्ठी कर के उसमें सँजोते गये। फिर जो रचना बनती गई वह कुछ और ही होती चली गई, विधाता की विभुता से भी बढ़चढ़ कर वह हो गई।

ऊपर उद्धृत श्लोक में किसी पोथी में चित्रे की जगह चित्ते यह पाठ मिलता है। तब अर्थ हो जायेगा मन में उसका खाका बना कर। पर यह पाठ सही नहीं लगता, अगली पंक्ति में मनसा कृता (मन में रचना कर ली) यह कहा ही है। इसलिये चित्त और मन की पुनरावृत्ति कालिदास क्यों करेंगे?

यहाँ विष्णुधर्मोत्तर पुराण से कालिदास का भावसाम्य झलक रहा है। इस पुराण में चित्रकला के विवेचन में कहा गया है कि नारायण मुनि ने उर्वशी की रचना करने के पहले सहकार के रस से उसका चित्र बनाया, फिर उसके आधार पर रूपमयी अप्सरा को रच दिया (विष्णुधर्मोत्तर, तीसरा खण्ड. 3.35.3)।

शाकुन्तल के छठे अंक में दुष्यन्त शकुन्तला का चित्र बनाता है। इस पूरे प्रसंग में कालिदास ने चित्रकला और सौन्दर्यशास्त्र का मर्म कविता की भाषा में उतार दिया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तो कालिदास के ऐसे प्रसंगों को ले कर कालिदास की लालित्ययोजना नामक अपनी पुस्तक में एक नया सौन्दर्यशास्त्र प्रस्तावित किया है।

श्रीहर्ष की रत्नावली में चित्ररचना का प्रसंग भी इतना ही सरस और मननीय है। श्रीहर्ष के ही नागानंद नाटक में नायक नायिका की एक झलक देख कर कह उठता है

अक्लिष्टबिम्ब शोभाधरस्य नयनोत्सवस्य शशिन इव।
दयितामुखस्य सुखयति रेखाऽपि प्रथमदृश्येयम्।।

प्रिया के मुख की पहली रेख दिख पड़ी – आँखों का उत्सव रच गया, जैसे चन्द्रमा के पूरे बिंब की झलक देखी हो। यहाँ दूर से देखी झलक के लिये रेखा शब्द चित्रकला से श्रीहर्ष ने ले लिया है

विष्णुधर्मोत्तर पुराण कहता है –
कलानां प्रवरं चित्रं धर्मकामार्थमोक्षदम्।
मङ्गल्यं परमं ह्येतद् गृहे यत्र प्रतिष्ठितम्।।

विष्णुधर्मोत्तर, तृतीयखण्ड, 43.38

समराङ्गणसूत्रधार में भोज कहते हैं

चित्रं हि सर्वशिल्पानां मुखं लोकस्य च प्रियम्(समरा.79.9)

नर्मदा भाई ने बहुत सटीक सवाल उठाये हैं। मैं उनमें कुछ और जोड़ कर उनका विस्तार करना उचित समझता हूँ। केवल प्राचीन और मध्यकालीन कविता की ही नहीं, आधुनिक कविता और कविता ही नहीं, कहानी उपन्यास आदि विधाओं में लिखे गये साहित्य के अध्ययन के लिये भी चित्र, मूर्ति आदि कलाओं का ज्ञान होना चाहिये। विश्वविद्यालयों के भाषा और साहित्य के विभागों में इस तरह के अध्ययन की विधिवत् व्यवस्था नहीं की गई है। इसके लिये सबसे पहले पाठ्यक्रमों में सुधार किया जाना चाहिये

–प्रख्यात संस्कृत विद्वान तथा दिल्ली संस्कृत वि.वि. पूर्व उप कुलपति
मो. 9999836088

आलेख

श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के उठाये गये सवालों पर प्रतिक्रिया

काव्य और चित्र का अंतरावलंबन

श्यामसुंदर दुबे

कलाओं का स्थूल विभाजन उनके माध्यमों उनके संसाधनों और उनकी अभिव्यक्तिगत प्रणालियों के कारण भले ही उन्हें एक स्वतंत्र सत्ता प्रदान करता है, किंतु वे अपनी अनुभूति के स्तर पर लगभग एक जैसे उत्स से ही संभव होती है और अपने प्रभाव के अंतिम क्षण में एक जैसी भाव-व्याकुलता में ही विश्रांति प्राप्त करती है या प्रदान करती है। सभी कलाएँ मनुष्य की वह भाषा ही है जिनमें वह अपने सौन्दर्य-बोध को उजागर करने में सतत संलग्न है इस रूप में कलाओं के अंतर्संबंध के अध्ययन के अंतर्गत उस केन्द्र तक पहुंचता है जहाँ से वे दीप्त होने की सृजन-ऊष्मा से आलौकिक आनंद को प्राप्त करने की प्यास से संवेदित होती है।

साहित्य सर्व कला संवेदी विधा है। साहित्य के परिसर में यदि प्रदर्शनकारी कला 'नाटक' को अध्ययन का विषय बनाया गया है तो यह मात्र नाटक में आये शब्दों का अध्ययन ही नहीं है, यह नाट्य कला के तमाम अनुबंगों का अध्ययन भी है। यहाँ यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि अधिकांश नाटकों की रचना साहित्यकारों द्वारा की गयी है इसलिए यह विधा दृश्य काव्य में समाहित है। यही आधार बनता है कि नाटक ललित कला और साहित्य में उभयानिष्ठ है किंतु यदि कोई साहित्यकार चित्रकार भी है - यह संभावना ही नहीं है, बल्कि इस तरह से घटित भी हुआ है। महादेवी वर्मा, शमशेर बहादुर सिंह, रामकुमार जैसी प्रतिभाऐं इन दोनों माध्यमों को साधती रही है। इसलिए यह स्पष्ट है कि साहित्य के साथ चित्रों का अध्ययन साहित्य की उन शक्तियों का उद्घाटन करने वाला भी है - जो चाक्षुष स्तर पर बिम्ब धर्मिता को साकार करती है। इस रूप में चित्र कविता या अन्य विधा का एक कला आश्रयी पाठ भी है। मध्यकाल में सचमुच कला के अंतर्संबंधों का परिदृश्य व्यापक और गहन है - न केवल चित्रकला बल्कि संगीत और नाटक का समावेशित स्वरूप साहित्य के साथ है।

आपने जो बात उठाई है कि साहित्य के साथ इन लघुचित्रों का अध्ययन भी होना चाहिए, जो काव्याधारित विषय वस्तु पर हजारों की संख्या में तत्कालीन चित्रकारों ने बनाये थे। अब अभी तक इस तरह का अध्ययन क्यों संपन्न नहीं हो सका - इसके विषय में यही कला जा सकता है कि कुछ तो चित्रों की अनुपलब्धता रही कुछ हमारे अध्यापकों, समीक्षकों और काव्य रसिकों की उदासीनता भी रही और बहुत कुछ शोधवृत्ति की रूढ़ परम्पराओं के चलते भी यह नहीं हो पाया है। फिर इस तरह से विचार करने वाली प्रतिभाओं का अभी इंतजार है।

आप इस दिशा में नवाचारी आधार प्रस्तुत कर रहे हैं। एक हलचल हो रही है - आपने दिसा क न केवल अनुसंधान किया है, बल्कि उसके अनेक क्षितिज भी उद्घाटित किए हैं। यदि साहित्य और चित्रकला के अंतर्संबंधों के अध्ययन का पाट विस्तृत हुआ तो बहुत सारी धाराओं की तलहटी के सुनहरे शैवाल हमारे दृश्यपटल के समक्ष झलमला उठेंगे। चित्र, काव्य की अनेक आभाओं को विच्छुरित करता है - इसलिए कवि की कल्पना शक्तियों के साथ चित्रकार की जुगल बंदी जिन अभिप्रायों को प्रकट करेगी वे एकदम चमत्कृत करने वाले और नवोन्मेषी होंगे।

इस संदर्भ में मैं बहुत सामान्य सी बात रखना चाहता हूँ। हमारी प्रारंभिक शिक्षा में चित्रों का महत्व अब भी है। एक तरह से चित्र साहित्य की छिपी दुनिया को यवनिकाहीन करता है। वह उसके अनेक डायमेन्शन्स अपने पाठकों के समक्ष खोलता है - यह अवबोधन की अनुरंजनात्मक प्रणाली है। इस रूप में चित्र, एक दृश्य बोधी काव्य बन जाता है।

मेरी दृष्टि में एक दो ऐसे शोधकार्य आये हैं जिनमें मध्यकालीन लघुचित्रों और मध्यकालीन साहित्य के युगपत अध्ययन की गुजायश निकाली गयी है। इनमें डॉ. रघुनंदन प्रसाद तिवारी का शोध प्रबंध मध्यकालीन हिन्दी की भक्ति और रीति काव्य परंपरा में चित्रकला की समानताऐं और प्रभाव का अनुशीलन महल की कृति है - स्फुट लेखन में डॉ. सावित्री सिन्हा, डॉ. जयसिंह नीरज के नामों का उल्लेख किया जा सकता है। मेरी भी रूचि इस तरह के अध्ययन में रही है। मैं यह अनुभव करता रहा हूँ कि किसी काव्य अंश पर चित्रकार ने चित्र निर्मित करते हुए कवि की अनुभूतिगत संरचना में अपने आपको इनवाल्व किया है? यह केवल अनुकरण के स्तर पर किया जाने वाला कला-कर्म नहीं है! यह एक तरह का अंत:क्रियात्मक अनुशीलन भी है, इस अनुशीलन में चित्रकार की मौलिक उद्भावनाओं के लिए भी स्पेस बना रहता है कवि सत्य के साथ चित्रकार का आत्म सत्य कैसी-कैसी अभिक्रियायें शेड्स, रंग, रेखा, छाया-प्रकाश और स्थिर तथा गतिज वस्तु चित्रण के माध्यम से मन: सौन्दर्यात्मक संसार की संरचनायें करता है। यह विचारणीय तथ्य है।

वस्तुत: यह शब्द की उजास को पकड़ने के साथ भावगत सक्रियता का चलचित्रीकरण जैसा कौशल है। चित्रकार अपने स्टिल लाईफ वाले चित्रों में भाव-तरंगों को भी अन्वेषण रंगों रेखाओं और दृश्य बंधों के माध्यम से करता है यह उसकी स्वायत्तता भी है, किन्तु उसकी यह स्वायत्तता कवि अभिप्रेत को विचलित करने वाली नहीं होती है, बल्कि वह अपने स्तर पर बहु अर्थव्यंजी काव्य का अपना पाठ भी निर्धारित करता है। मैं जब बिहारी के दोहों पर बने लघुचित्रों पर काम कर रहा था - तब मुझे इस तरह का अनुभव हुआ है। एक दोहा है - **'इक भीजे चहले परै बूड़े बहे हजार कितै न औगुन जग करे नै बै चढ़ती बार।'** इस दोहे पर कई चित्रकारों के चित्र उपलब्ध हैं। दोहे की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए चित्रकारों के चित्र उपलब्ध हैं। दोहे की आत्मा को सुरक्षित रखते हुए चित्रकारों का कल्पना-विधान किस तरह दृश्य-संरचना का अलग-अलग संसार अपने अनुसार सिरजते हैं - यह बोध के अनेक स्तरों को जगाने वाला प्रसंग है।

इस रूप में साहित्य के अंतर्निहित सत्य को जितना शाब्दिक स्तर पर अनुभव किया जा सकता है – विश्लेषित किया जा सकता है – उतना ही रंगों–रेखाओं, छाया–प्रकाश के माध्यम से भी अवबोधित किया जा सकता है – विश्लेषित किया जा सकता है यह परिपूरकता का उपक्रम साहित्य को समृद्ध करेगा और चित्रकला को अनुभव करने की सामर्थ्य भी हमारे समाज को प्रदान करेगा। निश्चित रूप से इस अंतर्संवाद को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना चाहिए। किंतु इसे बरायनाम न लिया जाऐ। यह गंभीर अध्ययन की माँग करने वाला विषय है। अकादमिक स्तर पर इस तरह के कार्य में संलग्न सुधीजनों की राय–सलाह का अपना महत्व रहेगा। इस अध्ययन के माध्यम से हम कल्पना विजड़ित छात्र वर्ग को उर्वरकल्पना की शक्तियों से लैस कर सकेंगे। हमारी आपकी यह भी तो चिन्ता होना चाहिए कि हमारे इस यांत्रिक समय ने हमारी कल्पना शक्ति का क्षय किया है – उसे सीमित किया है – यह स्तब्धता हमारे लिए घातक है। मुझे वह समय याद है जब हमारे समय में चित्रकला एक विषय के रूप में हमारे पाठ्यक्रम में अनिवार्यत: सम्मिलित थी। चित्र, रचना की सामर्थ्य, संस्कार देने में और मनुष्य को मानवीय बनाने में योगदान करती है।

संदर्भ–विहारी सतसई। काव्य और चित्रकला का अंतर्संवाद : मुँह ससि की उनहारि

यद्यपि बिहारी सुफैल के कवि नहीं है, फिर भी वे कभी कभी बेपर की भी उठाते हैं लेकिन मज़े की बात यह है कि वे इस मामले में भी मँजे हुए खिलाड़ी हैं। उनकी बेपर की भी कविता में न केवल चमत्कार उत्पन्न करती है, बल्कि वह विशेष उक्ति बनकर अक्षर–संसार में प्रतिष्ठित हो जाती है – यह कल्पना का विशेष विस्फार भी है, और काव्य–सत्य के निकट का यथार्थ–सा अनुभव भी है। चन्द्रमा और नायिका का मुख काव्य में लंबे अरसे से अपनी समानता का आलंकारिक सादृश्यमूलक वितान रचता रहा है। यहाँ तक कि सीता के मुख की उपमा चन्द्रमा से देते हुए तुलसीदास को यह कहना पड़ता है, कि '**सिय मुख उपमा पाय किमि चन्द्र बापुरो रंक, चन्द्रमा बेचारा बहुत गरीब है** – अपने सौन्दर्य में एक तो क्षय–पीड़ित है, दूसरा कलंक युक्त है – इसलिए के मुख की उपमा चन्द्रमा से नहीं दी जा सकती है। अब यदि बिहारी कह दें कि '**पत्रा ही तिथि पाइये बा घर के चहुँपास। नित प्रति पून्यौई रहति आनन ओप उजास।**' नायिका का मुख पूर्णचन्द्र जैसा प्रकाशित है – इसलिए जहाँ नायिका निवास करती है वहाँ सदैव पूर्णिमा रहती है, तिथि जानने के लिए वहाँ पचाँग का सहारा लेना पड़ता है। हुई न बेपर की परंतु यह मन का काव्य–सुख भी है। कवि की कल्पना भरी ऊँची उड़ान पाठक के मन को भी ऊँचा करती है – उसे विस्फारित करती है। बिहारी के यहाँ अनेक तरह से मुख और चन्द्रमा का यह मेलजोल प्राप्त होता है। चित्रकार, अपनी क्षमताओं को तौलकर ही किसी कविता पर केन्द्रित चित्र बनाने को समुद्यत होता है। वह प्राय: चित्र–माध्यम में निरापट अभिव्यक्ति की कोशिश करता है। बिहारी ने एक दोहा रचा–

'चुनरी स्याम सतार नभ, मुँह ससि की उनहारि।
नेहु दबावतु नींद लौं निरखि निसा सी नारि।।'

यह एक रूपक है। स्त्री को रात्रि की तरह प्रस्तुत करने वाला रूपक! आधुनिक काव्य में भी इस तरह के प्रयोग कवियों ने किए हैं। चाहे प्रसाद की 'शशि मुख पर घूँघट डाले' हो या महादेवी वर्मा की सिहरती आ वसंत रजनी या फिर निराला की 'संध्या सुंदरी' हो सब में रात्रि के नायिका रूप की चर्चा है। बिहारी ने नायिका को रात्रि की तरह चित्रित किया है – अपनी एकाध मौलिक विशेषता के साथ। वे स्पष्ट करते हैं कि उसने जो श्यामरंग की चुनरी सलमें–सितारों भरी ओढ़ रखी है – वह तारों भरा आकाश है। उसका मुख चन्द्रमा जैसा है। रात्रि आती है तो नींद का प्रभाव बढ़ने लगता है और जब नायिका का मादक सौन्दर्य जो रात्रि जैसा ही है, जब सामने होता है, तब प्रेम की उन्मादिनी ताकत दर्शक के मन को दबाने लगती है। बिहारी ने प्रेम और नींद को एक करके एक नयी उद्भावना को प्रकट किया है। निराला ने भी अपनी 'संध्या सुंदरी' कविता में प्रेम की मदिरा के इस प्याले की चर्चा की है। बिहारी के इस दोहे का प्रसंग है कि नायक ने किसी नायिका को श्याम चूनर धारण किए देख लिया है, तब से वह उसके स्नेह में अपनी सब सुधबुध भूल गया है। अपनी इस दशा का वर्णन नायिका की सखी से करता है। कहता है, 'उसकी चूनर तारों से जड़ित थी जो सितारों भरे आकाश जैसी थी उसका मुख–चन्द्रमा जैसा था। वह बिल्कुल रात्रि जैसी लग रही थी। लग ही नहीं रही थी, बल्कि उसका प्रभाव भी रात्रि की नींद जैसा था – नींद जैसे सुधबुध भुला देती है, वैसे ही उसने मुझे अपने स्नेह में डुबा दिया है।'

कवि का कथन कम से कम दोहा जैसे छंद में संवाद की रचना भी करता है, और स्वयं कवि की उक्ति भी बनता है। इसी दोहे को ले लिया जाए तो यह दोहा जैसे कवि की तरफ से कहा जा रहा है, वैसे ही इसकी व्याख्या करने वालों दो सखियों का कथन नायिका के लिए भी हो सकता है। ठीक इसके विपरीत यह कथन नायक का नायिका की सखी के लिए भी कहा जा सकता है। चित्रकार चूँकि चित्र में कविता की व्याख्या भी करता है, और उसकी पुनर्रचना भी करता है इसलिए वह संवाद चयन अपने स्तर पर अपने ढंग से करता है। प्रस्तुत दोहे के संवाद को चित्रकार ने इस रूप में लिया है कि सखी जो उभयपक्ष में सखी है, नायक और नायिका दोनों की वह दूती है – काव्य शास्त्र में इसे दूती भी कहा जाता है; वह नायिका के इस विशेष रूप दर्शन से प्रभावित नायक की बात जैसे नायिका को सुना रही है। इन दोनों के बीच प्रेम को वह सघन करना चाहती है। इस आधार पर ही चित्र का परिवेश निर्मित किया गया है।

चित्र में तीन भवन आकृतिवान है। ये भवन

बाऐं से दाऐं क्रमशः उतरती ऊँचाई में है। इस क्रम से लगता है, जैसे भवन एक सीधी श्रृंखला में नहीं है, वे क्रमिक दूरी वाले हैं। पहला मकान दो खंड का है। इनके निम्न प्रदेश में भी कोई भवन है, जिसके छत पर दो स्त्रियाँ खड़ी हैं। ऊपर सघन अँधेरा है। यह अँधेरा रात्रि में बादलों के घिरने से और गाढ़ा हो गया है। बादल में पूर्णिमा का आधा चन्द्रमा ढ़का है, और चन्द्रमा का आधा भाग प्रकाशित हो रहा है नीचे-ऊपर दाऐं-बाऐं अँधेरा ही अँधेरा है। इस परिवेश में चित्रकार ने अपनी तरफ से यह छूट ली है कि उसने आकाश में तारागणों को टिमटिमाते हुए नहीं दिखाया है कवि की अभिव्यक्ति जो कि कहती है कि **'चुनरी स्याम सतार नय'** यहाँ चित्र में ज्यौं की त्यौं नहीं है। यह चित्रकार का कविता से विचलन नहीं है, बल्कि उसकी स्वयं की कल्पना का ही यह पर्याय है। इसीलिए यह कहा गया था कि चित्रकार हूबहू कविता को अपने कैनवास पर नहीं उतारता है ऐसा करना संभव ही नहीं है। वह चित्र और, कविता का ऐसा रसायन बनाता है जो एकदम नया रूप ले लेता है, इस प्रक्रिया में चित्रकार का एक लक्ष्य यह रहता है कि वह यदि संपूर्ण कविता को न पकड़ पाये तो उसके एक महत्वपूर्ण अंग को ही पकड़ सके, उसे प्रत्यक्ष कर सके।

कुछ इसी तरह का प्रयास इस चित्र में किया गया है। यह चित्र बेहद कलात्मक ढंग से बनाया गया है। संपूर्ण चित्र की पृष्ठभूमि यद्यपि काली दृश्यावली वाली है रात्रि को रूपायित करने इस तरह के शेड्स जरूरी थे। चित्र को बहुत नजदीक से देखने पर ये शेड्स दिखायी देते हैं। जैसे आकाश के चित्रण में स्पष्ट रूप से आकाश की नीली आभा व्यक्त होती है। चूंकि पूर्णिमा की रात्रि है - और पूर्ण चन्द्रमा आकाश में है इसलिए आकाश की नीलिमा स्पष्ट है। इस नीलिमा पर छाती काले बादलों की छाया भी स्पष्ट हो रही है। यह छाया अपनी उठान में पूर्णिमा के चन्द्रमा को दबा रही है। अब चन्द्रमा आधा दिख रहा है, किंतु बीच में हँसिया की आकृति जैसे अवतल कर्व में भी एक कोण बाहर निकल आया है। चंद्रमा की किरणों की उजास कुछ चीजों को मद्धिम-मद्धिम रूप से स्पष्ट कर रही है। भवनों की मुड़ेरों की आकृतियों में प्रकट होने वाली सफेदी और उन पर निकाली गयी डिजायन चाँदनी को ओढ़कर ही प्रत्यक्ष है।

प्रथम भवन के दूसरे खंड पर स्थित द्वितीय खंड चाँदनी में साफ दिख रहा है। उसमें एक दरवाजा है। ऊपर की मुंडेर भी अब तक कोणाकार है नीचे के भवनों के अक्स भी झलक रहे हैं। पहले ऊंचे भवन की दीवार पर मुंडेर के पास गुड़कारी की डिजायन है। जहाँ दोनों स्त्रियाँ खड़ी है, वह भी एक छत प्रतीत होता है। वे छत की मुड़ेर से सटकर खड़ी है। इस मुड़ेर के नीचे छोटे-छोटे झरोखे दीवार में हैं। ये एकदम मद्धिम-मद्धिम दिखाई दे रहे हैं।

चित्र में जो दो स्त्रियाँ खड़ी है, उनमें एक नायिका है दूसरी सखी है। नायिका से सखी, स्वरूप रचना में छोटी है। नायिका एकदम गौरवर्ण है उसका मुख उज्जवल है वह अपने दाहिने हाथ के पंजे से ठोढ़ी पकड़े है। बायाँ हाथ नीचे झूल रहा है। मुख थोड़ा सा एक ओर झुका हुआ है। जिस और झुका है उस ओर सखी खड़ी है। सखी नायिका की ओर देख रही है। वह दोनों हाथ कुहनी से मोड़े हथेलियों की मुद्रायें ऐसे बनाये है जैसे नायिका से बात कर रही हो। उसकी गरदन थोड़ी सी उठी हुई है। दोनों चित्र एक चश्मी हैं। नायिका चाकलेटी रंग का लहँगा पहने है। इस पर रंग-बिरंगे सलने-सितारे टंके हैं। चूनर दोहरे रंग की है। भीतर का रंग लाल है, और ऊपर का रंग काला है। कंधे पर ओढ़ने पर चूनर का रंग काला दिख रहा है। वहाँ उस पर टँके सितारे भी चमक रहे हैं। निश्चित रूप से उसकी पीठ को काली चूनरी ही ढँके है जिस पर सितारे टँके हैं। चित्रकार ने अप्रत्यक्ष रूप से कवि को पंक्ति **'चुनरी स्याम सतार नम'** का अंकन किया है। उसकी कुंचकी गाढ़े खैरे रंग की है। वह सजी-धजी है। माथे पर बिन्दी और टिकुली कानों में कर्णफूल, गले में ग्रीवाभरण हँसुली, हार माला आदि धारण किए है। हाथों की कलाईयों में भरपूर नीली-पीली चूड़ियाँ और बाजुओं में बाजूबंद धारण किये है। एक भीनी सी फरिया भी वह वक्ष पर ओढ़े है। सखी लाल और नीले रंग के पट्टों का लहँगा पहने है। वह भी लगभग श्रृंगारवती है। उसके और नायिका के बेसर में पिराये गये मोतियों की झलक स्पष्ट होती है। वह नीली चूनर और लाल अँगिया पहने है। उसकी हथेलियों में मेंहदी लगी है। दोनों उस बादल भरी रात्रि में अपनी आभा से दीप्त हो रही हैं।

चित्रकार ने कवि की पंक्ति **'मुँह ससि की उनहारि।'** को अपना केन्द्रीय विषय बनयाा है। आकाश में स्थित चन्द्रमा की आकृति और नायिका के मुख की आकृति में साम्य है। नायिका की केश राशि कुछ इस तरह से मुँह के एक ओर सँवारी गयी है कि मुँह आकाश में स्थित चन्द्रमा जैसा लगता है। बाल बादलों के प्रतिरूप बन जाते हैं, जो मुख रूपी चन्द्रमा को ढ़के हुए हैं। यह दृश्य चित्र में एक सादृश्य निर्मित करता है। सखी नायक द्वारा कही गयी नायिका की प्रशंसा भरी उक्तियों को गंभीरतापूर्वक सुना रही है। वह जो कह रही है उसका असर नायिका पर चड़ रहा है। विशेष रूप से **नेह दबावत नींद लौ, निरखि निसा सी नारि।'** जैसे प्रसंग को सुनकर नायिका अचरज भरी प्रसन्नता से भर उठती है। इसलिए उसने अपनी ढ़ौडी से हथेली लगा रखी है। उसकी आँखों में इस भाव को अनुभव किया जा सकता है। नायक उसके प्रेम की उन्मादकारी स्थिति में डूबा हुआ है यह सुनकर वह आत्ममुग्ध है। वह कुछ इस तरह सखी की ओर देख रही है, जैसे कह रही हो कि सच्ची मुच्ची नायक ने ऐसा कहा है सखी भी जैसे कह रही है, हाँ! हाँ! नायक ने बिल्कुल ऐसा ही कहा है। चित्रकार ने सखी और नायिका के संवाद के माध्यम के लिए इनकी मुद्रओं को आधार बनाया है। आँगिक मुद्रायें और चेष्टायें कभी-कभी कैसे बात करने लगती हैं -यह चित्र में दृष्टव्य है।

संपूर्ण चित्र की पृष्ठभूमि काले-सफेद और नीले रंग के शेड्स से बनायी गयी है। इन रंगों में सफेद और नीले रंग धूमिल है, जबकि काला रंग गाढ़ा है। बादल एकदम काले बनाये गये हैं बादलों के नीचे के हिस्सों में कालापन उतना गाढ़ा नहीं है, क्योंकि उस रंग पर चाँदनी बरस सी रही है। चित्रकार ने अपनी मौलिकता को सुरक्षित रखते हुए आकाश में सितारे नहीं बनाये हैं। पूर्णचन्द्र वाली रात में वैसे ही सितारों का प्रकाश मंद पड़ जाता है - ऊपर से बादलों से ढ़ँका आकाश! इस न्याय के अनुसार कि आकाश में सितारे छिपे हुए हैं - चित्रकार ने नायिका को पीठ पर पड़ी ओढ़नी को नहीं दिखाया है। नायिका और सखी के व्यक्तित्व का अंकन करने के लिए चित्रकार ने चमकदार रंगों का प्रयोग किया है। इसलिए अंधेरी रात में ये दोनों उभरकर आ जाती है। चित्र पहाड़ी शैली में है।

-प्रख्यात ललित निबंधकार व पूर्व विभागाध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय (म.प्र.)
मो. 09977421629

■

आलेख

चित्रांकन और साहित्य - अन्तरसम्बंध की अंतरंगता

रमेश दवे

विज्ञान, प्रौद्योगिकी (तकनीक) और भूमण्डीकृत बाजारवाद के इस भौतिकवादी समय में कला और साहित्य का प्रश्न उठाकर कला-संस्कृति-इतिहास-विद नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने सभ्यता के प्रांगण में सार्थक और सक्रिय हस्तक्षेप किया है। कला मनुष्य की रूचि या अभिरूचि का आदिम स्त्रोत है क्योंकि आदि-मानव ने सर्वप्रथम अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम कला को ही बना कर भीमबैठका एवं ऐसे अनेक शैल-चित्रों का ऐसा इतिहास रच दिया जिसमें से आदिम भाषा का संकेतात्मक सारूप शैल-चित्रों में प्रकट हुआ। तात्पर्य यह कि भाषा का जन्म या उदय मनुष्य की वाणी के बजाए सर्वप्रथम चित्र-संकेतों में हुआ। इसलिए भाषा-वैज्ञानिक अब मानने लगे हैं कि वाचिक-भाषा के पूर्व संकेत-लिपि के रूप में भाषा भित्तियों पर जन्मी। हड़प्पा-लिपि आज तक पूरी तरह डी-सायफर भले ही न हुई हो लेकिन वेदों और संपूर्ण वाङ्मय एवं पुरा-साहित्य के साथ सर्वप्रथम भारतीय मनुष्य ने ही भाषा का सिद्ध किया और कला के सौन्दर्य एवं जीवन-सम्बद्ध सम्बोधन को साहित्य का सौन्दर्य, संवेदन और संदर्भ बनाया।

कलाओं में चित्रांकन की कला एक प्रकार से तूलिका की तपस्या है और साहित्य की साधना है। सृजन तूलिका से चित्रांकन के रूप में हो या शब्दों में साहित्य के रूप वह मनुष्य के संस्कृति निर्माण और सभ्यता विकास की कीर्ति गाथा होती है। साहित्य जितना मानव-संवेदी या चराचर संवेदी होता है, उतना ही कला-संवेदी भी होता है। यदि कलाएँ रूप हैं तो साहित्य उन्हें निहारने की संवेदनशील सृष्टि। चित्रकला या चित्रांकन की कला चाक्षुष-माध्यम है। यहां 'माध्यम' शब्द के स्थान पर संवेदन है तो साहित्य लिपि-बद्ध होकर भले ही चाक्षुष लगे, लेकिन वह तो अन्तरात्मा का आलोक है, साहित्यकार की कल्पना का रूप में प्रत्यक्षीकरण है और मानवीय-चेतना में मनुष्य के अधिक मनुष्य होने या मनुष्येतर होकर दृष्टि सम्पन्न, विचार-समाज और अनुभव-सम्पन्न होने का प्रमाण है।

साहित्य हो या चित्रांकन जैसी कलाएँ अथवा सभी प्रकार के कला-रूप, सभी मानव-सम्बोधी होते हैं, भले ही उनकी पृष्ठभूमि चराचर के प्रति संवेदन हो। साहित्य को मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी-जगत न तो सुन सकता है, न पढ़ सकता है, इसलिए वह कोई प्रतिक्रिया भी नहीं कर सकता। मनुष्य ही सुने, देखे, पढ़े या सोचे, उसके पास प्रतिक्रियात्मक-मानस होता है और चित्रांकन की रंग-भाषा, भावभाषा, विचार-भाषा को पढ़ कर प्रेरित होता है एवं प्रेरित होकर साहित्यिक-रचना भी कर सकता है। चित्र-भाषा तो एक शिशु को भी आकर्षित करती है, इसलिए उसका प्रथम शिक्षा संस्कार रंगों और चित्रों से किया जाता है। चित्रांकन और साहित्य कितने सह-संबंधी या अन्तर-संबंधी है, इसका एक उदाहरण मुझे तब मिला जब मैं पटियाला में स्व. देवेन्द्र सत्यार्थी से मिला। उन्होंने अपने उपन्यास के कुछ अंश सुनाए और मेरी कविताएँ सुनीं। फिर उन्होंने अपनी फ्रांस-यात्रा के दौरान महान पेण्टर पिकासो से भेंट का संस्मरण सुनाया। पिकासो की चित्र-वीथी देख कर सत्यार्थी जी ने पूछा कि क्या आपने भारत को लेकर कुछ भी नहीं रचा? यह सुन कर पिकासो उन्हें अपने स्टूडियो के अंतरंग में ले गए जहाँ एक वॉल-साइज (दीवारमापी) पेंटिंग लगी हुई थी। पेंटिंग पूरी काली थी लेकिन पेंटिंग के पूर्वी कोने में एक बिन्दु इस प्रकार रचा गया जैसे अंधेरों को चीरता कोई चमकदार तारा हो। देवेन्द्र जी चकित थे और जब उन्होंने पूरे पेंटिंग को देखा तो पेंटिंग के नीचे वाले भाग में 'कठोपनिषद्' का श्लोक संस्कृत में देवनागरी लिपि में लिखा हुआ था। देवेन्द्र जी अभिभूत हो उठे, भारतीय कला के प्रति, वाङ्मय के प्रति एक महान पेण्टर की इस अभिव्यक्ति ने देवेन्द्र जी को गर्व से भर दिया। साहित्य और चित्रांकन का इतना उत्कृष्ट उदाहरण प्रमाण है, साहित्य को यदि सर्वोत्कृष्ट कला माना गया है तो उसका अन्तर संबंधी प्रमाण, पिकासों का वह पेंटिंग था।

लियोनार्यो दी विन्ची शिल्पकार, पेण्टर के अलावा साहित्य सर्जक और विचारक भी था। माइकल एंजिलो के पेंटिंग चाहे वे टिकन प्रकोष्ठों, प्रांगणों तक, सभी चित्रावलियों के अनेक सर्जकों को साहित्य के लिए प्रेरित किया जबकि वह स्वयं भी कवि था।

भारत के पास जो भी ललित कलाएँ और विशेष रूप से चित्रकला है वह तीन स्त्रोतों से मुखर हुई है एक लोककला द्वारा, दूसरा मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य के कारीगर कलाकारों द्वारा जो मुख्य रूप से ग्रामीण या कस्बाई क्षेत्र थे और तीसरा प्रतिमा-संपन्न विचारशील कलाकारों द्वारा। इसलिए जिकासो कहता था कि मैं अपने चित्र वस्तु-जगत देख कर नहीं बनाता बल्कि मेरे अन्दर जो विचार जन्म लेता है, जो भाव उद्वेलित होता है, वह मेरे चित्र बन जाते हैं।

भारत के पास कलाओं का एक समृद्ध संसार है। अजंता, एलोरा के भित्ति एवं गुफा चित्र और शिल्प, बाघ की गुफाओं के चित्र, भीमबैठका के भित्ति चित्र, खजुराहों, साँची, दक्षिण के गोपुरम मंदिरों के आकार, महाबलीपुरम् के शैल-शिल्प, विजय नगर राज्य के कलात्मक मंदिर, संजापुर, चिदम्बरम् के मंदिर और शिव-ताण्डव की नृत्य मुद्राएं, मुगल स्थापत्य और उसके लिप्यात्मक चित्र या मुगल-कलम, ऐसे अनेक अद्भुत कलापुंज हमारे आदि सौन्दर्य एवं कलाबोध के प्रमाण है लेकिन राजस्थान के भित्ति-चित्र, मिनियेचर्स, नाथद्वारा आर्ट, मथुरा की कला की चित्रशैली, मध्यप्रदेश के गौंड आदिवासियों के मंडला, बालाघाट और छिंदवाड़ा, बस्तर आदि के लोक चित्र जिनमें वनस्पति और पशु-जगत का चित्रांकन है, गुजरात में गुप्त-कला और कपड़े की छापाकला के संपूर्ण क्षेत्र का कला-रूप, विदिशा के साँची द्वार, ग्यारसपुर, उदय गिरि और उदयेश्वर (बरेठ) के पास का मंदिर शिल्प और मंदिरों के प्रस्तरों पर छेनियों की कलम से उकेरी गई मूर्ति-कला ये सब कलाएँ हमेशा मनुष्य के साहित्यिक मनोभाव में प्रवेश कर उसे श्रेष्ठतम रचना के लिए प्रेरित करती रही है।

यदि हम देश-विदेश के संग्रहालयों को देखने जाते हैं तो ग्वालियर

के जयविलास पैलेस के म्यूजियम में मिनियेचर से लेकर क्यूरल्स के देशी-विदेशी और त्रिआयामी चित्रावलियों का ही चित्र लोक है। इंग्लैंड का बकिंघम पैलेस के संग्रहालय में न केवल पूरे विश्व की चित्रांकन छवियों का संग्रह है बल्कि भारतीय ललित कलाओं की भी सजावट है। साहित्यकारों ने इन चित्रों को देखकर जो रचनाएँ की, वे खण्ड काव्य, महाकाव्य एवं कविताओं, कहानियों में देखी जा सकती हैं। चाहे वाल्मीकि या तुलसीकृत रामायण या महाभारत, जो पूरा भारतीय वाङ्मय सभी को लेकर साहित्य रचा गया और उनमें वर्णित कथाएं चित्रात्मक होकर हमारे मानस-पटल पर साकार हो जाती हैं। प्रसिद्ध नृत्यांगना कुमुद लाखिया ने कथक-नृत्य-शैली में चित्रकला के मिनियेचर और समाज-संवेदी रंग-या नाट्य-चित्रात्मकता का प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि चित्र केवल चित्र कला ही नहीं बल्कि वे अन्य कलाओं को और साहित्य को भी समृद्ध करते हैं।

चित्रांकन और चित्रावलियों का एक संपूर्ण संग्रह प्रकाशित करके नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने अपने कलाकर्म से साहित्यकारों को भी उद्वेलित किया है। चित्रावलियाँ अधिकतर कथात्मक होती है जैसे ओरछा की दीवारों और छतों पर बनी कृष्णलीला। अब तो नए-नए मंदिर-शिल्प में भी उनके आंतरिक प्रकोष्ठों में चित्रावली कराई जाती है। यह मनुष्य की कलाओं का श्रम-स्वेद है। इसलिए ही संभवतया फेंच साहित्यकार एवं दार्शनिक जॉन रस्किन ने कहा था। 'श्रम रहित जीवन अपराध है, और कला रहित श्रम बर्बरता है' क्योंकि ललित कला में हाथ, हृदय और मन (मस्तिष्क) एक साथ क्रियाशील और भावशील होते है। बावजूद चित्रावलियों के कोई भी चित्र हो या साहित्य अपनी पूर्णता में सम्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए टी.एस. एलियट जैसा सर्जक और नाटककार, विचारक कहता था कलाओं में कोई भी कलाकार अपनी कल्पना को संपूर्ण रूप से सम्पन्न या निष्पन्न नहीं कर पाता। तात्पर्य यह है कि असम्पूर्णता में वह दर्शक या साहित्य-सर्जक के लिए ऐसी स्पेस या ऐसा अवकाश छोड़ देता है जिसे साहित्यकार अपनी रचना से पूर्ण करने का प्रयत्न कर सके।

उपाध्याय जी ने मालवा के भित्ति चित्र और चित्रावलियों का संग्रह, जैन चित्रावली एवं अन्य चित्रांकनों को प्रकाशित कर संभवतया रामकृष्णदास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुबेरनाथ राय, विद्यानिवास मिश्र के वाचिक एवं साहित्यिक विचारों और सृजन से आगे जाकर तीन प्रकार की अभिव्यक्तियों को प्रस्तुत किया है। एक लोक कला की अभिव्यक्ति चौक मांडने से लेकर कलात्मक चित्रांकन साहित्य में कला के प्रवेश और निवेश के साथ नवीन उद्भावनाएं और पूर्णकालिक कलाकारों की तरह चित्रकला, मूर्तिशिल्प, सिरेमिक, टेराकोटा आदि में निर्मित छवियों का साहित्यिक रचना में रूपान्तरण। एक पेण्टर की तूलिका जिस भावधारा का प्रवाह रचती है, वह कपिण, कथा, नाटक बन कर साहित्य में रूपायित हो जाती है। ललित निबंध तो एक प्रकार से भाषा के लालित्य की चित्रावली ही है जिसे हजारी प्रसाद द्विवेदी, कुबेरनाथ राय, विद्यानिवास मिश्र, नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, रमेशचन्द्र शाह, श्याम सुन्दर दुबे जी, श्रीराम परिहार आदि के साहित्य में देखा जा सकता है।

साहित्य और चित्रांकन का अन्तर-संबंध जितना अपने आप है, उससे अधिक उसे शिक्षा-विषय की पाठ्यचर्या भी बनाना होगा क्योंकि साहित्य हो या कलाएँ सब जीवन को न केवल आकर्षित करती है बल्कि प्रेरित और अनुशासित भी करती है। कहा जाता है कि साहित्य में जितने भी आन्दोलन घटित हुए वे स्थापत्य और कलाओं के परिणाम है। अभिव्यंजनावाद, प्रभाववाद, दादावाद, धनवाद, प्रतीकवाद, बिम्बवाद यहाँ तक कि यथार्थवाद भी स्थापत्य की ही देन पश्चिम के कला-मर्मश मानते हैं। यदि आस्ट्रिया या दार्शनिक विटगेन्सटाइन कविता में वाक्य शब्द, भाव या वस्तुरूप व उसके ध्वनि संगीत को पढ़ता है, यही बात प्रकारान्तर से पॉलवेलेरी ने भी कही थी लेकिन हमारे काव्य शास्त्र में तो ध्वनि शास्त्र के रचेता आनंदवर्धन पहले ही कह चुके थे। साहित्य यदि आपको कल्पना और भाव-संज्ञाओं से एक प्रकार की आनंद-मूर्च्छा रचना है जिसे विरेचन भी कहते हैं तो कलाएं अपनी रूप-संज्ञा से वहाँ मूर्च्छा रचते हैं। मूर्ति एवं स्थापत्य कला चाक्षुष है लेकिन साहित्य भाव-प्रवण कला है। साहित्य और कलाएँ इसलिए सहसंबंधी और अंतरंग अन्तर संबंधी कही जा सकती हैं।

वैसे चित्र-काव्य एवं चित्र कथा को उत्कृष्ट काव्य तो नहीं माना जाता लेकिन चित्रांकनों को एक कलाकार-पेण्टर अपनी प्रतिभा एवं प्रज्ञा से नए-नए प्रयोग कर सकता है। चित्रांकन अमूर्त नहीं होते, रूपबद्ध होते हैं लेकिन उनके भीतर एक साहित्यकार की आत्म-ध्वनि, आत्म-राग और आत्म-अभिव्यक्ति निहित होती है। साल्वेडर डाली तो कहता था कि मैं अखबार को उलटा पड़ता हूँ तो अखबार का गद्य मुझे कविता की तरह लगता है। चित्रांकन के कई प्रयोग और प्रादर्श (माडल्ज़) हमें धार्मिक कथा-चित्रों में मिलते हैं। वाइल्ड लाइफ की कथाओं का चित्रण, जातक कथाएँ, पंचतंत्र की कथाएँ एवं अन्य धर्मों की अनेक चित्र कथाएँ भी साहित्य रचती हैं। परी कथाओं का भी चित्रलोक बहुत आकर्षक होता है और चित्र-कॉमिक्स तो बच्चों के मुख्य आकर्षण रहे हैं।

चित्रांकन से जो सौन्दर्यानुभूति होती है वह कभी-कभी तो अंग्रेजी के सौन्दर्यवादी आन्दोलन की याद दिलाती है। वे सौन्दर्यवादी हाथ में गुलाब लिए कहते फिरते थे 'वी आर इस्थेट' यानी हम सौन्दर्य-प्रेमी है। स्विनबर्न जैसे कवियों ने अपनी पृथक रोमांचक सौन्दर्यवादी धारा रची थी। फिरेक लाइट्स का आंदोलन भी सौन्दर्यवाद का प्रवर्तक माना जा सकता है। इससे यह सिद्ध होता है, सौन्दर्य की साहित्यिक सर्जना में ललित-कलाओं और चित्रांकन का बड़ा योगदान है। भारत के दो महान पेण्टर्स हैं एम.एफ. हुसैन और मध्यप्रदेश के मण्डला से फ्रांस में बस कर पुनः भारत लौटने वाले रजा साहब। मकबूल फिदा हुसैन ने इन्दिराजी को लेकर दुर्गा चित्र माला रची थी और रजा साहब की चित्र श्रृंखला से भारतीय अध्यात्म की ब्रह्माण्डीय कल्पना जाग्रत होती है। जे. स्वामीनाथन तो पेण्टर के साथ कवि, काव्यप्रेमी और कला विचारक थे। भारत भवन को लोककला समृद्ध बनाने में उनका योगदान महत्वपूर्ण है।

चित्रांकन रंगों का साहित्य है। इन्द्रधनुष को देख कर कितनी काव्य छवियाँ कवियों ने रची है। कुल मिलाकर यह भी कहा जा सकता है साहित्य-कला सम्पृक्त होना है और कलाएँ साहित्य में रूपांतरित होती है। साहित्य और चित्रांकन का परस्पर संयोग एक प्रकार की ऐसी अंतरंगता है जो पुरातत्व से लेकर उत्तर आधुनिक समय तक को प्रभावित करती है। इसीलिए यह उक्ति प्रचलित है -

'साहित्य संगीत कलाविहीनः, साक्षात पशु पुच्छ विषाण हीनः'

आवश्यकता है कि कला-साहित्य अन्तर संबंध स्थूल भौतिकता या व्यावसायिक विज्ञापनवाद में न देखी जाकर ऐसी सूक्ष्मता में देखी जाए कि चित्रांकन साहित्य लगे और साहित्य में चित्र-दृश्यावली का सौन्दर्य साकार हो उठे।

- वरिष्ठ साहित्यकार एवं समीक्षक तथा प्रधान संपादक 'समावर्तन' पत्रिका

■

आलेख

श्री नर्मदाप्रसाद उपाध्याय: निस्पृह और एकाग्र साधक

कैलाशचन्द्र पंत

वह दिन मैं भूल नहीं सकता जब 23 दिसम्बर 2017 को श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय को हिन्दी भवन में श्री नरेश मेहता वांग्मय सम्मान से अलंकृत किया जा रहा था। शरद व्याख्यान – माला के आयोजन पर ही यह सम्मान दिया जाता है। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि थे डॉ. मुरलीमनोहर जोशी। सभी जानते हैं कि जोशीजी भाजपा के अग्रणी नेता हैं। केन्द्रीय शिक्षा मंत्री रहे, भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष भी रहे। लेकिन उनकी ख्याति विज्ञान और संस्कृति के व्याख्याकार के रूप में ज्यादा है बौद्धिक जगत में उनका प्रभामण्डल विशेष प्रभाव रखता है। राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशेष सम्मान मिलता रहा है। जोशी जी के हाथों उपाध्यायजी को श्री नरेश मेहता की स्मृति में सम्मान मिल रहा था। हिन्दी साहित्य में नरेश जी का अन्यतम स्थान है। अध्यक्ष के रूप में श्री रमेशचन्द्र शाह की उपस्थिति में कार्यक्रम की आभा कुछ ज्यादा ही निखर उठी थी। कुल मिला कर उस दिन का परिदृश्य एक विशिष्ट सांस्कृतिक बोध पैदा कर रहा था। परंपरानुसार सम्मान ग्रहण करने के बाद श्री नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने अपना संक्षिप्त उद्बोधन दिया। संक्षिप्त होने पर भी वह कितना सारगर्भित था इसका आकलन मुख्य अतिथि डॉ. जोशी के भाषण की इन प्रारंभिक पंक्तियों से समझा जा सकता है। जोशी जी ने कहा था– 'उपाध्याय जी का वक्तव्य अपने आप में बहुत गवेषणा पूर्ण लेख के रूप में अगर आगामी अक्षरा के अंक में प्रकाशित हो जाय तो मुझे अच्छा लगेगा। सम्मान के उत्तर में ऐसा प्रगल्भ भाषण प्राय: कम सुनने को मिलता है। लेकिन आज उपाध्याय जी ने यह सिद्ध कर दिया कि सम्मान की और पुरस्कार की कोई आँच उन्हें नहीं लगी है और उस समय भी उनका ध्यान भारत में कला और साहित्य के बीच होने वाले संवाद या कभी कभी विवाद पर गया है।' एक मनीषी के मुख से निकले इन शब्दों में उपाध्याय जी के समग्र व्यक्तित्व का निचोड़ आ गया है। श्री उपाध्याय उच्च पद पर अधिकारी रहे हैं। लेकिन सत्ता सुख की मादकता से स्वयं को उसी तरह अलिप्त रखा, जिस तरह सम्मान की आँच से अपने वक्तव्य को। उनकी दृष्टि सदा ही भारत की उन कलाओं पर केन्द्रित रही जो मूर्तियों और चित्रों में अभिव्यक्ति पाती रहीं। वे मात्र पाषाण प्रतिमाएं नहीं है उनमें संस्कृति की धड़कन सुनी जा सकती है। इस धड़कन को सुनने की क्षमता अर्जित करना आसान नहीं होता। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, वासुदेव शरण अग्रवाल, कमला रत्नम, विद्या निवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, अज्ञेय और नरेश मेहता जैसी कुछ विभूतियों का स्मरण हो आता है जो उन धड़कनों को सुनते और गुनते रहे। उस श्रृंखला को आगे बढ़ाने का काम उपाध्याय जी करते रहे, कर रहे हैं और करते रहेंगे। इस कठिन साधना में निमग्न रहने वाले उपाध्याय जी के निबंधों को पढ़कर लगता है कि वे कला संबंधी नये विमर्श की दिशा निर्धारित कर रहे हैं। यह दिशा कला और साहित्य के अन्तर्संबंधों का मार्ग प्रशस्त करने वाली होगी और पश्चिम की कृत्रिम वैचारिक अवधारणा का सशक्त प्रतिरोध कर सकेगी।

उनकी दृष्टि सदा ही भारत की उन कलाओं पर केन्द्रित रही जो मूर्तियों और चित्रों में अभिव्यक्ति पाती रहीं। वे मात्र पाषाण प्रतिमाएं नहीं है उनमें संस्कृति की धड़कन सुनी जा सकती है। इस धड़कन को सुनने की क्षमता अर्जित करना आसान नहीं होता। डॉ. भगवतशरण उपाध्याय, वासुदेव शरण अग्रवाल, कमला रत्नम, विद्या निवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, अज्ञेय और नरेश मेहता जैसी कुछ विभूतियों का स्मरण हो आता है जो उन धड़कनों को सुनते और गुनते रहे।

श्री उपाध्याय के विचारों को पढ़ते हुए स्पष्ट हो जाता है कि भारत की सांस्कृतिक धारा से वे गहरे जुड़े हैं। उनकी दृष्टि समग्र भारतीय कला दृष्टि पर रहती है और उसमें वह एकात्मता देखते हैं। मूर्तिकला हो या चित्रकला उसमें सांस्कृतिक संकेतों को समझने का प्रयास करते हैं। इसके बाद उनका गहन विवेचन करते हुए निष्कर्ष देते हैं। इस दृष्टि से संपन्न होने के बाद ही वह साहित्य की पड़ताल करते हैं। तभी तो वे यह सिद्ध करने में सफल होते हैं कि कलाकार किसी साहित्य से प्रेरणा लेता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि कला का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। लेकिन अधिकांश मूर्तियों और चित्रों में सोद्देश्यता समाहित होती है और साहित्य से उसके गहरे संबंधों को जोड़ा जा सकता है। यह सत्य है कि अति प्राचीन काल से भारत में प्राप्त होने वाली मूर्तियों और चित्रों में कृष्ण कथा के पौराणिक अंश बहुलता से मौजूद हैं। यह कथाएं साहित्य की उन अनमोल कृतियों में उल्लिखित हैं, जिन्हें हम श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराणों के रूप में जानते हैं।

चित्रकला और मूर्तिकला का व्यवस्थित अध्ययन इतिहास दृष्टि के बिना संभव नहीं है। उपाध्याय जी के पास गहन अध्ययन की वह कुंजी है जिसका उपयोग करते हुए वो इन कलाओं में छिपे रहस्यों का उद्घाटन कर पाते हैं। उनके निबंधों को पढ़ कर उनका गहन अध्ययन और उसका वस्तुनिष्ठ विश्लेषण चमत्कृत करता है। इसीलिये आज वे साहित्य के अतिरिक्त इतिहास और पुरातत्व के विद्वानों के बीच समादृत हैं। कला को परखने के लिए सौन्दर्य दृष्टि तो आवश्यक होती ही है, लेकिन इतिहास और संस्कृति से उसका जुड़ जाना उस कला की महत्ता ज्यादा अच्छे ढंग से प्रतिष्ठापित करता है। लोक कलाओं और लोकगीतों से गहरे परिचय ने उपाध्याय जी की कला दृष्टि को ज्यादा संपन्न बना दिया है।

हिन्दी का यह सौभाग्य है कि उसके वांग्मय को समृद्ध करने में श्री उपाध्याय एकाग्र तल्लीनता से जुटे हैं। यह विधा हिन्दी में प्राय: उपेक्षित रही है। इस तरह के एकाग्र प्रयासों से हिन्दी समृद्ध होती है। निस्संदेह श्री उपाध्याय हिन्दी भाषा और साहित्य को उत्तरोत्तर संपन्न बनाते जा रहे हैं। उन्होंने ऐसा त्रिकोण स्थापित किया जिसका आधार लोक जीवन है और कला तथा साहित्य उसके महत्वपूर्ण कोण हैं।

–मंत्री संचालक म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, भोपाल तथा 'अक्षरा' पत्रिका के संपादक, मो.: 09926151507

■

आलेख

प्रश्न चुनौतीपूर्ण तो है पर असाध्य नहीं

विजय बहादुर सिंह

साहित्य और चित्रकला के पारस्परिक संवाद का प्रश्न हमारे समय के सजग लेखक नर्मदा प्रसाद उपाध्याय जी जिस व्याकुलता से उठा रहे हैं वह यद्यपि कोई नया सांस्कृतिक प्रश्न नहीं है किन्तु ऐतिहासिक रूप से प्रासंगिक से भी अधिक प्रासंगिक है। इस संदर्भ में स्वयं आगे बढ़कर - कहें आगे चलकर अपने समय के समर्पित जिज्ञासुओं का मार्गदर्शन भी व्यावहारिक भूमि पर उतर कर किया है। ज्यादा दिन नहीं हुए जब बणी ठणीं जैसे अतिविख्यात और लोक प्रतिष्ठ चित्र को केन्द्र में रखकर एक विस्तृत शोध-निबंध 'दुनिया इन दिनों' पत्रिका के अगस्त 2018 वें अंक में अपनी लालित्यपूर्ण शैली में लिखा था। मूलत: या कहें संभवत: ललित गद्यकार होकर उक्त गंभीर शोध को जैसा स्वरूप देकर पठनीय और मनोहर साकारता हो उससे यह प्यास भी बढ़ी कि काश! शोध और चित्रकला के संवर्गों के बहाने ही सही, साहित्यिक मुद्दों और प्रश्नों को एक दूसरे के समीप लाकर हमारे एक मुखी सँकरे ज्ञान को बहूमुखी व्यापकता दी जाती। इससे साहित्य और चित्रकला का विधागत महत्व तो बढ़ता ही, दोनों के संयुक्त रस में डुबकी लगाने का आनन्द भी दुगुना हो उठता।

यों उपाध्याय जी मध्यकाल के कवियों और चित्रकारों को लेकर स्वयं तो संतुष्ट ही है, आधुनिक काल में भी वे विशाल हिन्दी-समाज के कतिपय विख्यात कला रसिकों की याद करते हुए रायकृष्ण दास, उनके सुपुत्र आनंदकृष्ण, वासुदेव शरण अग्रवाल, डॉ. रघुवीर सिंह और सुख्यात राम गोपाल विजयवर्गीय का नामाल्लेख करते हैं। उनके अनुसार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास जी मिश्र ने भी अपनी रूचि और उन्मुखता इस संदर्भ में प्रदर्शित की है। इन सबके बीच सर्वश्रेष्ठ भारतीय कला-चिंतक या कहें कला-दार्शनिक आनंद कुमार स्वामी का नाम लेना नहीं भूलते।

ऐसी भास्वर परम्परा को याद करते हुए वे अकादमिक परिसरों में जिस नयी विद्या-चर्या का सपना वे देख रहे हैं, जमाने की आबोहवा को देखते हुए उससे आँख तो नहीं चुराई जा सकती। हमारे अपने समय में हम जिस राष्ट्रीय जीवन-प्रवाह को देख रहे हैं, यद्यपि उसमें पुराने युगों के छंसावशेषों की की उपस्थिति भी कोई कम नहीं है किन्तु नये जीवन-स्वरूप और नये राष्ट्रीय-प्रवाह के ताकतवर सपने भी अपनी संपूर्ण ऊर्जा से सक्रिय हैं। पुराने प्रतिबंध और जकड़ बंदियाँ क्रमश: शिथिल हो रहे हैं और एक व्यापक खुलापन हमारी चेतना का प्रमुख लक्षण बनता जा रहा है। वैसी स्थितियों में ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में जो नैसर्गिक किन्तु अदृश्य सा सगापन है, उस पर भी निगाह स्वभावत: जाना चाहिए।

पश्चिम के एक ख्यात आलोचक और साहित्य-चिन्तक संभवत: सर फिलिप सिउनी ने यह कहा था कि कविता एक बोलते हुए चित्र हैं और चित्र एक मूक कविता। लेकिन जब कभी ये दोनों एकरस हुए हैं। एक नये ही अनुभव-लोक की रचना हुई है। इसे मैंने तब अनुभव किया जब मेरी प्रेरणाओं ने अनुभूतियों की आँखें खोलकर उन्हें कल्पना के आकाश में विहार करने की शक्ति दी। संदर्भ यह है कि मैंने 'भीमबैठका' को जब पहली बार देखा तो उसे फिर फिर देखने की भूख बढ़ती ही गई। मर्ज बढ़ता ही गया ज्यूँ-ज्यूँ दवा की शैली में। इस सिलसिले में जैसे किसी लुका-छिपी करने वाली प्रेमिका ने अपने प्रति मेरा आकर्षण दुगुना-तिगुना बढ़ाना शुरू किया। अंतत: मेरी लंबी कविता, अकस्मात सो भी गोवा विश्वविद्यालय की यात्रा के संदर्भ में फूट पड़ी महाराष्ट्र के अहमद नगर स्टेशन से आगे बढ़ते ही कहाँ ट्रेन की यात्रा, कहाँ ऐतिहासिक अहमदनगर और कहाँ पीछे छूट गई भीम बैठका इनमें पारस्परिक संयोग क्या है, कोई मनोवैज्ञानिक ही शायद बताए पर मेरी डायरी के पन्नों पर साकार होते शब्दों में सिर्फ और सिर्फ भीमबैठका अपने अपूर्व और न भूतो न भविष्यत् के अनुभव की तरह उभर रही थी। कहने को यों शब्द मात्र थे पर 'हृदय आँख' से देखने पर भीम बैठका का दूर से देखा हुआ और निकट से महसूस किया हुआ उसका दिव्य प्रवेश द्वार प्रत्यक्ष दोनों चित्र इस प्रकार हैं -

कई कई बार के अपमानों के बाद
एक स्त्री जैसे उठा लेती है अपना सिर
भीम बैठका उठी हुई दिखाई देती है दूर-से
फेंक कर मारी गई बरछी की तरह
खुमी हुई लगती है अछोर आसमान में
निकट का दृश्य -
यहीं कहीं किसी सख्त चट्टान पर
बैठ
घण्टों निहारा होगा
प्रतिशोध में लहराते द्रौपदी के केशों को
अन्त: गुफाओं का दृश्य - आदि-आदि
मोहन जोदड़ो से भी पहले की यादें हैं
भीम बैठका के पास
इमली और सेमल है
सागौन और महुओं के साथ
इन्हीं की साँवली छायाओं के बीचों बीच
धूप लेटी हुई है
हवा ठहरी हुई बतिया रही है
करील और करौंदों से...

चित्रात्मकता कविता का प्राण भी है और आत्मस्वरूप भी। वैसे अगर हमारे चित्रकार कविता के पास आएँ और उन्हें रंग और रेखा से रूप-मंडित करें तो अबूझ सी बनती जाती कविता बूझ सकने की परिधि में आ जाएगी।

रीतिकालीन नायिका भेदों, अतिसार कलाओं, भाव-मुद्राओं का व्यापक मंथन किया गया मिलता है। आधुनिक चित्रकला और कला-संसार में भी कुछेक हैं जो जब-तब यह करते दिखते हैं। भारत भवन की एक सिरेमिक कलाकार है श्रीमती निर्मला शर्मा जिनके पति स्वयं कवि (स्व.) जितेन्द्र कुमार थे - अपने सिरेमिक सृजन पर कविता उकेरने का काम करती है।

हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों को खूब याद होगा महादेवी वर्मा की महान कृति यामा जिसे कवयित्री ने स्वयं रूप सज्जा दी। आज तो पोस्टर कविताओं की भरमार है जहाँ शब्द और चित्र खजुराहों के मंदिरों की तरह वात्स्यायन के कामसूत्र की यादें दिलाते हैं किन्तु अंतरंग में आध्यात्मिक अनुगूँजों से भरे हैं।

अब व्यावहारिक प्रश्न यह है कि इस पारस्परिक कला-संवाद के अकादमिक और व्यवहारिक रूप कैसे दिया जाय? कैसे एक पाठ्यचर्या के रूप में इसे प्रस्तुत किया जाये? क्या इसके लिए दोनों विद्या-शास्त्रों की अभिज्ञता जरूरी नहीं होगी? होगी। तब यह अध्यवसाय रोजी-रोटी के लिए दर-दर भटकती युवा पीढ़ी की चिन्ता में शामिल भी हो सकेगा?

ये कुछ कठिन व्यावहारिक सवाल है। इनका जवाब आसान भी नहीं होगा किन्तु ऐसे लोग दुर्लभ और ऐसी अध्ययन चर्या असंभव है यह तो कैसे भी कहा नहीं जा सकता।

- प्रख्यात साहित्यकार एवं आलोचक, भोपाल, म.प्र.
मो. 9425030392

कला और साहित्य का अंतर्संबंध : चित्र और काव्य

डॉ. मंजुला चतुर्वेदी

भारतीय चित्रकला और साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि दोनों में परस्पर अनन्य संबंध है। साहित्य में जीवन के विभिन्न बिंब हैं जो श्रव्य हैं और दृश्य कलाओं में वही बिंब चाक्षुष रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। मूल तत्व जो उभयनिष्ठ है वह जीवन की समावेशी अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति के लिए साहित्यकार या कलाकार बिंबों को यथावत लेकर उन्हें संयोजित करता है या उन्हें कल्पना के माध्यम से पुनसृजित कर प्रस्तुत करता है अत:दोनों ही प्रस्तुतियों में गति और लय है जो मस्तिष्क को बोध देती है। इस दृष्टि से साहित्यकार और कलाकार दोनों ही रचना कर्म में एक ही हैं केवल माध्यम भिन्न हैं। यदि सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो साहित्यकार अधिक स्वतंत्र है लेकिन चित्रकार माध्यम की सीमाओं में बंधा है, लेकिन यह सीमित माध्यम ही उसे असीम क्षमता देता है जिससे वह अपने संरचित चित्र में संपूर्ण घटना को काल और स्थान के सहित समेट लेता है और उसे पुन: प्रस्तुत करता है जबकि साहित्य में शब्दों को जब तक लिपिबद्ध न किया जाए वह विलीन हो जाते हैं केवल उनकी अनुगूंज स्मृति में रहती है चित्र जब जब इंद्रिय के संपर्क में आते हैं तब तब मस्तिष्क उस संपूर्ण घटना के तथ्य, आवेग और उसके संपूर्ण प्रभाव से सक्रिय और आवेशित हो जाता है। इसीलिए दृश्य मस्तिष्क पर स्थाई, तीव्र और अधिकतम प्रभाव छोड़ते हैं और हमारा अधिकांश बोध दृश्य बोध के रूप में होता है।

मध्यकाल में भारतीय कलाएं लघु चित्रों के रूप में भी विकसित हुई जिन्हें पूर्ण दरबारी संरक्षण प्राप्त हुआ। तत्कालीन सामाजिक और साहित्यिक परिवेश से वे पल्लवित हुईं। राजाओं की अभिरुचि के अनुसार भी कलाओं के स्वरूप विकसित हुए। विकास की इस यात्रा और परंपरा में काव्य ग्रंथों का विशेष योगदान रहा।

बौद्ध ताड़ पत्रीय पोथी चित्रों(प्रज्ञा पारमिता) के साथ शब्द और चित्र की यात्रा प्रारंभ हुई और चौर पंचाशिका, बाल गोपाल स्तुति, रसमंजरी, पद्मावत, रसिकप्रिया, गीत गोविंद, बारहमासा, राग रागिनी, रामायण, भागवत पुराण, देवी महात्म्य, मुगलकालीन ग्रंथ इत्यादि चित्रित हुए। उदाहरण स्वरूप 16 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि केशव दास द्वारा रचित रसिकप्रिया का चित्रांकन विविध शैलियों में हुआ। रसिकप्रिया सौंदर्य एवं कलात्मकता से ओतप्रोत काव्य है। जिससे अनुभूतिगत प्रक्रिया एवं साधारणीकरण कर कलाकारों ने कृष्ण और राधा के सौंदर्य एवं क्रीड़ाओं को चित्रित किया। मालवा, कांगड़ा, गढ़वाल, कोटा ,बूंदी, मेवाड़ मुगल इत्यादि शैलियों में विविध चित्रण हुए। बूंदी और मेवाड़ शैली में विशेष रूप से काव्य की पंक्तियां भी चित्र के ऊर्ध्व भाग में सहेजी गई हैं।

काव्य की सार्थकता चित्र और चित्र की सार्थकता काव्य से स्पष्ट है। बारहमासा पर आधारित चित्र भी कृष्ण लीला से संबंधित हैं जिन्हें प्रकृति के समयानुसार 12 महीनों में अंकित किया गया है। जयदेव कृत गीत गोविंद में भी कृष्ण नायक और राधिका को नायिका संबोधित कर रचना हुई जिसमें सौंदर्य एवं मानवीय व्यवहारों का अद्भुत वर्णन हुआ और कलाकार ने तन्मयता से उसे चित्रित कियापहाड़ी और राजस्थानी शैलियों में निर्मित चित्र कला और संस्कृति की विशिष्ट धरोहर हैं।

कविता के शब्द चित्रों का विशेष हिस्सा बने और चित्र दोनों कलाओं के मिलन से विशिष्ट सौंदर्य को प्राप्त हुआ। कविता का बोध चित्र से और चित्र का बोध कविता से पहचाना गया जो जनमानस में विकसित होता हुआ अपने अभीष्ट को प्राप्त हुआ। शब्द ध्वनि और चित्र ध्वनि रंगों और अर्थों में ध्वनित हुई और संस्कृति का एक विशेष पक्ष निर्मित हुआ। काव्यात्मक अनुभूति की चेतना दृश्य बिंबों

से बहुत तीव्रगति से हुई।

कला,साहित्य और संस्कृति शब्द स्तर पर स्थूल रूप में भिन्नार्थक शब्द प्रतीत होते हैं परंतु इन शब्दों की अंत: सलिला अनुभूति की प्रवणता की दृष्टि से एक होती है, उस केंद्रीय अनुभूति की अभिव्यंजना को खंडों में विघटित कर नहीं देखा जा सकता। विराटत्व की एक अनुभूति का अभिन्न संगम कला साहित्य और संस्कृति में अंत:स्रोत से निनादित होते हुए प्रतिबिंबित होता है। वस्तुत: सत्य यह है की इन त्रय धाराओं के एकीकृत रूप की स्थापना ही किसी स्थल विशेष या देश विशेष की छवि को अंकित करती हैं। इनके संगुफन से स्थापित लालित्य योजन के संदर्भ में विद्वानों में मत वैभिन्य नहीं हैं। संस्कृति का कला व साहित्य से संबंध अवयव –अवयवी के समान है। साहित्य, कला एवं संस्कृति के माध्यमों में विभिन्नता होते हुए भी ये मानव जीवन को सुसंस्कृत बनाने का प्रयास करते हैं और जीवन को उद्दाम शक्ति तथा रहस्यमय मार्ग से जाने के लिए अद्भुत लोक प्रदान करते हैं।

साहित्य में तथ्य स्पष्ट रहते हैं किंतु कला में ये सूक्ष्म रूप में आकार के साथ संश्लिष्ट रहते हैं। कला साहित्य (काव्य)के विचारों और भावों को दृश्य बिंब प्रदान करती है, विचारों को ध्वनि प्रतीक अर्थात शब्द और रेखा के माध्यम से अधिक स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है। हमारे संकल्प तथा विचार कला और साहित्य में ध्वनित होते हैं,साहित्य और कला का उद्भव केंद्र एक ही है।

सृजन के दो भिन्न आयाम हैं प्रथम दृश्य और द्वितीय श्रव्य । दृश्य सृजन कला की परिधि में आता है और अभिव्यक्ति के माध्यम से आंतरिक अनुभूतियों का उच्छलन साहित्य के रूप में जन्म लेता है। मूलत: सृजना त्मकता का उत्स एक है, अभिव्यक्ति के प्रगटीकरण के रूप दो। अभिव्यक्ति की सर्जना मेधा की विभिन्न परिकल्पनाओं में जुड़कर तर्क की कसौटी पर परंपरा ,आचार विचार और संस्कारों को छूती हुई एक मूल्य की स्थापना करती है तो वही दृष्टि दर्शन के रूप में स्वीकार की जाती है।

इसमें भी सृजनात्मकता मूल रूप में होती है। इस सृजनात्मक बिंदु के आधार पर यही प्रतिस्थापित किया जा सकता है कि एक सर्जनात्मक तथ्य का वही रूप कला में होता है जो साहित्य और संस्कृति में है।

कला में रूपों का निर्माण होता है और वे रूप हमारे जीवन पर आच्छादित रहते हैं। किंतु ये रूप सुंदर और कलात्मक हो तभी कला की सार्थकता है।

साहित्य और कलाएं हमारे चेतन मस्तिष्क से जुड़ी हैं जो यथार्थ से ही प्रेरित होती हैं और कलाकार या लेखक का मस्तिष्क अपनी क्षमता और बौद्धिक दृष्टिकोण के अनुसार ही तथ्यों का विश्लेषण करता है और अपने चिंतन तथा विचार को तदानुरूप समकालीन बिंबों और तकनीक की सहायता से संरचना कर अभिव्यक्त करता है ,अत: यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि साहित्य और कलायें हर युग में समानांतर और हाथ में हाथ लेकर चलती हैं, उनमें कभी भी विभेद नहीं रहा है केवल एन्द्रिक धरातल पर वे अलग हो जाती हैं लेकिन मस्तिष्क के संपर्क में आते ही वे एक ही आवृत्ति और ऊर्जा से संचालित होती हैं और परस्पर सहयोग से विशेष प्रभाव प्रक्षेपित करती हैं। धार्मिक काव्य हो या लौकिक जीवन से संबंधित भाव परक काव्य हो सभी में भावों को तीव्रतर करने के लिए चित्रों का आश्रय लिया गया है जो मानवीय संवेदनाओं को अधिक से अधिकतम संपुष्ट करते हैं और इसी में काव्य और कला के सौंदर्य के समन्वय की सिद्धि होती है।

– प्रख्यात कलाविद तथा पूर्व अध्यक्ष,
ललित कला विभाग, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

चांदी की नमकीन झील में लघुचित्रों का इन्द्रधनुष

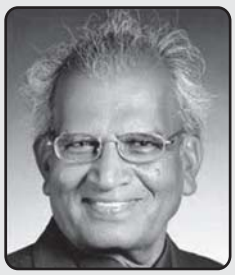

डॉ. महेन्द्र भानावत

राजस्थान की सांभर झील में जन्मे जाये कन्हैयालाल वर्मा के लघुचित्र ऐसे लगते हैं जैसे चांदी की नमकीन झील में लघचित्रों के चीडा–चीडी अपनी इन्द्रधनुषी रंगावलियों की छविमान रोशनियों में चहचहा रहे हैं, यह सब अनायास नहीं है। वर्माजी ने एकबार मुझ से कहा भी, नीलवर्णा देवी परम शक्तिवंता देवी शाकंभरी की ही कृपा रही कि सांभर में यहां के राजा को वरदान दिया कि बिना पीछे दृष्टि डाले सदैव अपनी निगाह को आगे देख के तुम अपने घोड़े पर सवार हो जितनी दूर तक दौड़ लगा सको वहां तक की भूमि चांदी की रूपहली खान में परिवर्तित हो जाएगी।

देवी मां से यह सुनते ही राजा निहाल हो सकपका गया पर दूसरे ही क्षण उसे लगा कि इतनी भूमि जब चांदी की हो जाएगी तो मुझे कौन खुशहाल रहने देगा। मेरी परेशानी तब और अधिक बढ़ जाएगी। राजा ने देवी की इस महत्ती कृपा को शिरोधार्य करते निवेदन किया कि ऐसी स्थिति में इस भूमि का उपभोग कौन करने देगा। देवी ने तब उस झील को नमक के रूप में परिवर्तित कर दिया ताकि उसका वरदान भी प्रतीकात्मक भाव लिए जगजाहिर होता रहे। सांभर झील से जो भी गुजरता है, नमक का फैलाव देख लगता है जैसे पूरी झील में चांदी सी श्वेत स्फटित लहरों वाला विशाल समुद्र सूरज की किरणों में नहाता अनेक रंगों की रोशनाई से सदाबहार बना हुआ है।

वर्माजी के साथ यह दुर्योग ही रहा कि उनके तेरह भाई–बहिन हुए किन्तु अन्त में वे ही अकेले रह गये तब वे अपने धुर बचपन में चूल्हे के पास बैठ कोयला लेकर आंगन में आंकड़–बांकड़ रेखाएं खींचा करते थे। पिताजी उन्हें ऐसा करते देख खुश होते। वे आराइश के शिल्पी थे सो समझते थे कि उनका बेटा उनकी रूचि के रास्ते पर ही अपनी कला की परख दे रहा है। यों वे पूरे गांव तथा आसपास के क्षेत्र में तनसुखजी उस्ता के नाम से प्रसिद्धि लिए थे। फिर उन्होंने वर्माजी के लिए घर की दीवार का एक कोना ही निश्चित कर उन्हें कहा कि इधर–उधर चित्र कोरने की बजाय इस दीवार पर बनाया करना। इस प्रकार वर्माजी को दीवार का वह कोना क्या हाथ लगा, चित्रकला की जैसे एक

अभ्यास पुस्तिका ही हाथ लग गई।

दीवार पाकर वर्माजी को बड़ा मजा आ गया। सोचा चित्र बनाने का असली आनंद अब शुरू होगा। फलतः उन्होंने कोयले की बजाय हिरमिच, रामरज, सिन्दूर, नील, हींगलू, काजल, सीलू, खडिया जैसे देशी रंगों का उपयोग करना शुरू किया। पिताजी ने उन्हें कूची पकड़ाना भी सीखा दिया और साथ-साथ छोटी-बड़ी कलमें भी बनाने का शिक्षण दे दिया।

इसके लिए बकरी पहले से उनके घर में पल रही थी। उसका एक बड़ा प्यारा सा मेमना था। उसकी पूंछ को हल्की गीली कर छोटी कैंची से उसके बाल कतर ठीक से संवारे और चील के पंख की नली में डाल, बांस की एक खपच्ची को गोल सी तराश दे उस नली को उसमें डाल दिया और कहा कि बड़ा ब्रश बनाने के लिए बालों की गुच्छी को सीधे ही खपच्ची से बांध दो।

बतादें, पहले सांभर चीलों के लिए भी जाना जाता था। वर्माजी ने चीलों के झुण्ड, ऊंचे आकाश में उनकी हवाखोरी, सामूहिक जीमण चूंटण के दौरान मिठाइयों पर मारते उनके झपट्टे भी खूब देखे और उनका आघात भी सहा है। देखा यह भी कि किस प्रकार चील आदमी को चकमा देती उसके हाथ से मिठाई का दोना और यहां तक कि पत्तल तक उड़ाकर अपने तीखे पंजों की करारी झपट से व्यक्ति को अध घायल तक करती रफ्फूचक्कर हो जाती है पर अब तो चील सपने की बात हो गई है।

ऐसे और भी संस्कार वर्माजी के चित्रांकन में संगी बने हैं। अन्य गांवों की तरह सांभर में भी कभी ख्याल-तमाशे करने वाले, कभी रामलीला करने वाले, घर-घर स्वांग दिखाने वाले, नटों द्वारा रस्सी पर कमाल करने वाले, सर्कस वाले आकर खासा मनोविनोद करते। वर्माजी मालियों के मंदिर के पास के एक बड़े चौक झरोखे वाले अपने घर में बैठ यह सब देखा करते। इसका उनके मानस पर बड़ा प्रभाव रहता तब वे अपनी कलाकृतियों में भी उसका असर दिखाते। ऐसे लोकरंगी चितरावण कला उन्हें अधिक आकर्षण देती लगती। ऐसे करते-करते वे लघु चित्रण के गंभीर अन्वेषक और अध्येता के रूप में जाने जाने लगे।

07 मार्च 1943 को जन्मे कन्हैयालाल वर्मा ने अपने कला सृजन की आंच को कभी ठंडा नहीं होने दिया। अध्यापन के दौरान तो वे और अधिक सक्रिय रहते ढोलामारू, वीर सतसई, बिहारी सतसई, वेलि किसन रूक्मणी री, रामायण, मेघदूत, जैसे प्रख्यात ग्रंथों तथा लोकजीवन में चर्चित जसमा ओडण, रूपमती बाजबहादुर, आभलदे खींवजी, तेजाजी, पाबूजी से संबंधित आख्यान एवं राग कल्पद्रुम तथा संस्कृत के श्लोकों का उनके आधार पर चित्रण करने की दृष्टि से बड़े मनोयोगपूर्वक अध्ययन करते रंग-रेखाओं के प्रभावी चित्रपट तैयार करते, अपनी स्वतंत्र निज पहचान बनाते रहे और जब-जब जहां-जहां कोई प्रदर्शनी लगती, कोई प्रतियोगिता होती, उसमें गहरी दिलचस्पी दिखाते पूर्ण तैयारी के साथ अपनी भागीदारी सुनिश्चित करते।

पुरुषार्थ जब सबल होता है तो भाग्य प्रबल होकर सोने में सुहागा जड़ता है। वर्माजी के साथ यह सौभाग्य अनेक बार जुड़ता गया। सन् 1974 में पहली बार वे राजस्थान ललित कला अकादमी से पुरस्कृत हुए तो यह सिलसिला जैसे लगातार उन पर सेहरे पर सेहरा चढ़ाते 1975, 1977, 1982 और 1984 तक शिखर मंडता रहा। यह देख प्रदेश के कलाकारों को लगा कि यदि वर्माजी ही भाग लेते रहे तो अन्य चित्रकार तो कभी अकादमी का द्वार ही नहीं देख पायेंगे। अकादमी ने भी तब ये पुरस्कार एक व्यक्ति को तीन बार से अधिक नहीं देने का नियम बना लिया।

ऐसे करते ढोलामारू काव्य के 50 दोहों को लेकर एक-एक दोहे पर एक-एक चित्र बनाते 50 चित्रों की आकर्षक श्रृंखला सजा दी। मेघदूत पर 26 चित्र बनाये। संगीत शास्त्र के अनुसार 3 राग 30 रागनियां मिलाकर 36 राग रागनियों का पूरा सेट तैयार किया। ऐसे ही रामचरित मानस के सुंदरकांड को चित्रों में श्रद्धाभाव से अंकित किया। ऐसे चित्र तैयार कर उनके साथ संबंधित काव्य-पंक्तियां भी लिखदीं। उदाहरणार्थ -

जसु अपजसु देखत नहीं, देखत सांवल गात।
कहा करों, लालच भरे, चपल नेन चलि जात।।
पिय के ध्यान गही-गही. रही वही है नारि।
आपु-आपु ही आरसी, लखि रीझति रिझवारि।।

-(बिहारी सतसई)

सिंधु तीर एक भूधर सुंदर।
कौतुक कूदि चदेड़ ता ऊपर।।
बार-बार रघुबीर संभारी।
तरकेउ पवन तनय बल भारी

- (रामचरित मानस, सुंदरकांड -3)

ऊँ भूभुर्वः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि,
धियो यो नः मचोदयात।।

-(ब्रह्मरूपा)

इस प्रकार कन्हैयालाल वर्मा ने साहित्य में अपनी अमर छाप अंकित कराने वाली शाश्वत कृतियों का आधार लेकर अपनी रंगरेजी तूलिका से एक से बढकर एक शोभित आकृतियों का मंडान कर चित्रपट की तरह रंगमंडल का मुंह बोलता जड़ाव ही मुखर कर दिया।

राजस्थान में प्रचलित ख्याल तमाशों की जो हस्तलिखित तथा छपित पाण्डुलिपियां-पोथियां मिलती हैं उनमें भी रेखाचित्र मिलते हैं। ये चित्र यथा प्रसंग लघु आकार लिए बड़े ही मनोरम तथा आकर्षक होते हैं। ऐसे ही बम्बई के ज्ञानसागर छापाखाने की छपी हुई एक ख्याल-पुस्तिका संवत् 1965 की मेरे पास संरक्षित है।

यह राजा गोपीचंद भरथरी के ख्याल से संबंधित है। ऐसे हस्तलिखित ख्यालों के गुटके भी मेरे देखने में आये हैं। भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय द्वारा मेघदूत पर चित्रांकन हेतु वर्माजी को फैलोशिप भी मिली। उन्होंने अनेक प्रदर्शनियों तथा लघुचित्रण शैली पर आयोजित शिविरों में भाग लेकर अपनी श्रेष्ठ प्रस्तुति दी। उदयपुर स्थित राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं शिक्षण संस्थान में जब वे पाठ्य-पुस्तकों के लिए चित्रांकन हेतु आये तब मेरे से भी उनकी अच्छी भेंट हुई। उसके बाद तो वे प्रत्येक दीवाली पर अपने द्वारा निर्मित बहुत ही मनभावन तथा काव्यग्रंथों के प्रमुख संदर्भों पर आधारित शुभाकांक्षी चित्र मुझे भेजते रहे।

दीपावली अब भी आती है पर अब वर्माजी की मधुर स्मृति ही मुझे बेचैन किये उनके प्रति श्रद्धांजलि का एक दीप जलाकर रह जाती है।

- प्रख्यात लोक साहित्यकार

■

आवरण कथा

भारतीय लघुचित्र तथा संस्कृत व रीतिकालीन काव्य का अंतरावलंबन

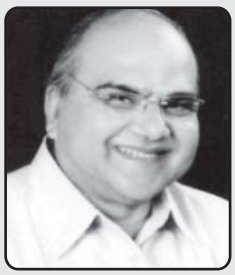

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

शब्द और लेखनी का उत्सव यदि कविता है, स्वर और कंठ का उत्सव यदि गायन है तथा आकाश और तारों का उत्सव यदि आकाशगंगा है तो रंग और रेखा का उत्सव वह रूप है जो सृष्टि के उदय से लेकर आज तक मनाया जा रहा है। जहां एक ओर इसे विभिन्न युग के महान कलाकारों ने भित्तियों से लेकर ताड़पत्रों, भोजपत्रों, लकड़ी के उपादानों तथा क़ाग़ज़ जैसे माध्यमों पर रचा वहीं दूसरी ओर इस रूप को विभिन्न कालखण्डों में, साहित्य की विभिन्न विधाओं में कवियों और गद्यकारों ने अपने-अपने ढंग से अभिव्यक्त किया।

रूप तो वही रहा, गहराई में कोई अंतर विद्यमान नहीं रहा किन्तु सतह पर उसकी अभिव्यक्ति अलग-अलग ढंग से हुई। संवेदना का रूपांतरण हुआ जिसकी परिणति भिन्न अभिव्यक्ति में हुई किन्तु कालांतर में सतह पर हुई ये दो भिन्न अभिव्यक्तियां इतनी दूर होती चली गईं कि इनके अलग-अलग अनुशासन बन गए और फिर एक-दूसरे से अपरिचय की स्थिति भी।

आज का समकालीन परिदृश्य यह है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत जब मध्यकालीन काव्य को पढ़ाया जाता है तो सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, देव, मतिराम तथा पुहकर जैसे कवियों की कृतियों को यथा, सूरसागर, रामचरित मानस, रसिकप्रिया, कविप्रिया,, बिहारी सतसई, अष्टयाम, रसराज और रसबेली आदि के पदों, सवैयों, छन्दों और दोहों का मर्म समझाया जाता है। उनके बिम्ब विधान पर विमर्श होते आए हैं, शोध होती आई है। इसी तरह वाल्मीकि की रामायण, व्यास के महाभारत, कालिदास के मेघदूत और अभिज्ञान शाकुन्तल तथा जयदेव के गीत गोविन्द को संस्कृत साहित्य में पढ़ाया जाता है उन पर शोध होती है। ये कुछ उदाहरण हैं।

यहां यह जिज्ञासा है कि क्या इन काव्यों को पढ़ाते हुए या इनकी आलोचना, समीक्षा तथा इन पर विमर्श करते समय मध्यकाल में विभिन्न चित्र शैलियों में बनाए गए इन लघुचित्रों पर विचार किया गया है? इसलिये कि इनका सीधा सम्बन्ध इन अंकनों से है। अनेक लघुचित्रों पर इन ग्रन्थों की काव्य पंक्तियां लिखी गई हैं। चितेरों ने भी अपनी कल्पना का भरपूर उपयोग किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के कुछ ग्रन्थों में केवल कुछ उल्लेख भर कभी किये गये हैं। गुण दोष के आधार पर कहीं विस्तृत विश्लेषण हुआ हो इसकी मुझे जानकारी नहीं है।

यदि यह नहीं हो पाया अथवा केवल अंशत: हो पाया तो इसका क्या कारण रहा है? क्या इस प्रकार के अंकनों को कहीं ललित कला के अध्ययन का विषय मानकर छोड़ तो नहीं दिया गया अथवा ये विद्वानों के दृष्टिपथ में ही नहीं आ पाए? क्या इन पर विचार न होना कला और साहित्य विशेषकर चित्रांकन और साहित्य के अंतर्संबंधों की उपेक्षा होना नहीं है?

ऐसा भी नहीं है कि इनकी पूर्णत: उपेक्षा ही हुई हो। राय कृष्णदास, उनके सुपुत्र राय आनंदकृष्ण, वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉक्टर रघुवीरसिंह और प्रख्यात कलाकार रामगोपाल विजयवर्गीय जैसे कुछ नाम हैं जिन्होंने इस पक्ष की ओर दृष्टिपात किया है किन्तु इनके अंर्तसंबंधों को लेकर विस्तार से लिखा-पढ़ा गया हो ऐसा विदित नहीं होता। ऐसे और भी नाम हैं लेकिन विस्तार भय से उनका उल्लेख नहीं हो पा रहा है। विजयवर्गीयजी की एक कृति है 'चित्र गीतिका' जिसमें उन्होंने राजस्थान की प्रमुख चित्रशैलियों की विशेषताओं को कविता में बांधा है। हजारीप्रसादजी ने भी विचार किया तथा विद्यानिवासजी ने तो इस विषय पर अनेक व्याख्यान दिये। उन्होंने भारत के प्रमुख संग्रहालयों मे रखे लघुचित्रों को बड़े मनोयोग से देखा। व्यक्तिगत संग्रहों को उनके स्थानों पर जा जा कर देखा। वत्सल निधि के अन्तर्गत वे निरन्तर डॉक्टर आनन्दकुमार स्वामी पर बोले जिन्हें भारतीय लघुचित्रों के अनुशासन को स्थापित करने का श्रेय दिया जाता है। वर्तमान में प्रख्यात ललित निबंधकार डॉक्टर श्यामसुन्दर दुबे ने केशव और बिहारी के काव्य पर लघुचित्रों के प्रकाश में विश्लेषणात्मक कार्य किया है। विशेष रूप से दतिया क़लम के बिहारी सतसई के दोहों पर उनका कार्य है।

मुझे डॉ. नगेन्द्र के द्वारा लिखे गए हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस अंर्तसंबंध को देखने की झलक ज़रूर मिली। अपनी कृति 'देव और उनकी कविता' में उन्होंने 'चित्रण-कला और अभिव्यंजना' शीर्षक से इन अंर्तसंबंधों के बारे में चर्चा की है जिसके कुछ अंश यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

''अनुभूति को आकार देने का सबसे सहज माध्यम है चित्र। क्योंकि आकार मूलत: चित्र-रूप ही तो होता है। अनुभूति निराकार होती है। उसका चित्र तो संभव नहीं। उसको व्यक्त करने के लिए कलाकार या तो अनुभोक्ता की मूर्त चेष्टाओं का अंकन करता है, या फिर अनुभोक्ता की वासना में रंगे हुए अनुभूति के विषय अथवा पात्र के रूप का चित्रण। संस्कृत के रसाचार्य ने इस तथ्य को पूर्ण-रीति से ग्रहण करते हुए पहले को अनुभाव-विधान और दूसरे को आलम्बन-विधान कहा है। देव की अनुभूति एकांत श्रृंगारिक अनुभूति है, अतएव उन्होंने मुख्यत: श्रृंगार के ही आलम्बन और आश्रय की चेष्टाओं के (अनुभावों के) मधुर चित्र अंकित किए हैं।

पहले कुछ पूरे रूप-चित्र लीजिए:-

पीत रंग सारी गोरे अंग मिलि गई 'देव' श्रीफल उरोज आभा आभासै अधिक-सी।
छूटी अलकनि झलकनि जल कननि की, बिना बेदी वंदन बदन-सोभा बिकसी।।
तजि तजि कुंज जेहि उपर मधुप पुंज गुंजरत मंजुरव बोलै बाल पिक-सी।
नैननि हँसई नेकु नीबी उकसाह, हंसि, ससि-मुखी सकुचि, सरोवर ते निकसी।।

इस चित्र में रंगों का प्रयोग नहीं है, इसका सौन्दर्य वांछित अवयवों

के चयन पर आश्रित है। पीत रंग की साड़ी का भींग कर नायिका के गोरे अंगों में लिपट जाना और उन्हीं से मिल जाना, वस्त्र के शरीर से चिपक जाने के कारण श्रीफल जैसे सुडौल उरोजों का विशेष रूप से व्यक्त हो जाना, बिखरी हुई अलकों से जलकणों का झलकना, माथे की बिन्दी और मांग का सिन्दूर धुल जाने पर मुख की सहज शोभा का निखर जाना, नेत्रों में हंसना, अंत में थोड़ा नीवी को उकसाना और संकोच से झुककर धीरे से सरोवर से बाहर आ जाना – ये सभी संकेत अपने में अत्यंत मनोरम होने के अतिरिक्त चित्र की दृष्टि से भी सर्वथा सटीक हैं।

इसमें रूप के तत्वों को बड़ी सूक्ष्म–दृष्टि से पकड़कर एक अविकल सौन्दर्य–चेतना के द्वारा संश्लिष्ट कर दिया गया है जिसके कारण चित्र पूर्ण हो गया है। तीसरी पंक्ति में 'परम्परा के अनुरोध–वश भौंरों के मंडराने का उल्लेख थोड़ा अस्वाभाविक हो गया है, परन्तु इतने संकेतों में यह एक संकेत छिप जाता है। स्वर्गीय लाला भगवानदीन ने 'बोलै बाल पिकसी' पर भी आक्षेप किया है। परन्तु हम समझते हैं यह अधिक अप्रासंगिक नहीं है। इसने चित्र के दृश्य–रूप से मुखरता का एक स्पर्श भी दे दिया है। उपर्युक्त चित्र में हाव का वर्णन होने के कारण, उसके अवयव प्राय: स्थिर ही हैं। नीचे के छंदों में गतिशील चेष्टाओं के द्वारा गतिमय चित्र का अंकन किया गया है:–

पीछे परबीनै-बीनै संग की सहेगी, आगे
भार उर भूषन डगर डारै छोरि-छोरि।
मोरे मुख मोरनि त्यों, चौंकति चकोरनि त्यों,
भौंरनि की भीर भीरु देखै मुख मोरि-मोरि।।
एक कर आली कर ऊपर ही धरे, हरे -
हरे पग धरै देव चलै चित चोरि-चोरि।
दूजे हाथ साथ लै सुनावति वचन, राज -
हंसन चुनावति मुकुत-माल तोरि-तोरि।।

ऐसे चित्रों में मुख्यत: चित्र–सामग्री के चयन में अर्थात् वांछित के ग्रहण और अवांछित के त्याग में ही कलाकार अपना कौशल दिखलाता है। इस दृष्टि से देव को विशेष सफलता वांछित तत्वों के ग्रहण और प्रेरक भाव द्वारा उनको अन्वित करने में ही मिली है। अवांछित का त्याग वे सब जगह सफाई से नहीं कर पाते हैं। बिहारी अवांछित का त्याग बड़ी सफाई से करते हैं, परन्तु उनके चित्रों भावान्विति अपेक्षाकृत क्षीण रहती है। यदि और भी अधिक गति–वेग का चित्र देखना हो तो नीचे की चार पंक्तियां लीजिए:–

भूषननि भूलि पैन्हे उलटे दुकूल 'देव',
खुले भुजमूल प्रतिकूल बिधि बंक मैं।
चूल्हे चढ़े छाँड़े, उफनात दूध भाँड़े,
उन सुत छाँड़े अंक, पति छाँड़े परजंक मैं।।

उपर्युक्त पंक्तियों में हड़बड़ी का अत्यंत सजीव चित्र है।

ये सभी पूरे चित्रों के उदाहरण हैं। इनमें अनेक रेखाओं के द्वारा चित्र के विभिन्न अवयवों को उठाया गया है। परंतु कुछ चित्र एक रेखा को ही विशेष रूप से उभार कर बनाये जाते हैं, और रेखाएं केवल खाके को भरने के लिए होती हैं। चित्र में प्राण इसी उभरी हुई रेखा से आते हैं:

प्यारी सँकेत सिधारी सखी सँग स्याम के काम सँदेसनि के सुख।
सूनौ इतै रँग-भौन चितै चित मौन रही चकि चौकि चहूँ रुख।।
एक ही बार रही जकि ज्योंकि त्यों भौंहनि तानि कै मानि महा दुख।
देव कछू रद बीरी दबी री सु हाथ की हाथ रही मुख की मुख।।

यहां आरंभ में कुछ अतिरिक्त रेखाओं का प्रयोग हुआ है। जैसे, नायिका का रंगभवन को सूना पाकर चारों ओर चकित दृष्टि डालना और चुप हो जाना, भौंहों को तान कर ज्यों का त्यों रह जाना, परन्तु ये केवल ढांचा तैयार करती हैं। चित्र में सजीवता आती है अंतिम रेखा से ही – जिसको स्पष्टत: कवि ने गहरा कर दिया है:– **'देव कछू रद बीरी दबी री सु हाथ की हाथ रही मुख की मुख।'** काव्य में जो कार्य व्यंजना करती है, चित्र में वह प्राय: रेखा द्वारा होता है, इसीलिए जब कभी व्यंजना को सूक्ष्म करना होता है तो कलाकार व्यंजक रेखा को हल्की कर देता है। देव चित्रण के इस रहस्य से भी सहज–रूप से परिचित थे, और स्थान–स्थान पर उन्होंने इसका प्रयोग किया है। रात्रि में रंगभवन का चित्र है। मिलन के लिए आतुर नायक प्यार से नायिका को पान देता है, पर वह हंस कर भौंह मरोड़ लेती है। इस पर ललचा कर नायक बांह पकड़ लेता है, तो नायिका स्पष्ट ही मुंह से मना कर देती है कि सखियां सभी हमसे अवस्था में बड़ी हैं – इस प्रकार ढिठाई करना ठीक नहीं है। बेचारा नायक अब ललचाई आंखों से देख ही सकता है। परंतु नायिका उसे थोड़ा और तंग करना चाहती है। कवि इस अंतिम मधुर चेष्टा का एक हल्की रेखा से चित्र खींच देता है:

पान दियो हँसि प्यार सों प्यारी, बहू लखि त्यो हँसि भौ मरोरी।
बाँह गही ललचाइ लला मुख, नाहीं कही मुसकाइ किसोरी।।
तोरो न लाज जेठानी सखीजन, देव ढिठाई करैं नहिं थोरी।
लाल जितै चितवै तिय पै, तिय त्यों-त्यों चितौति सखीन की ओरी।।

नायक का धीरे–धीरे नायिका की ओर दृष्टि उठाना और नायिका का उसी अनुक्रम से अपनी दृष्टि को सखियों की ओर फेरते जाना, इन दोनों दृष्टियों को मिलाने वाली रेखा कितने हल्के हाथों से खींची गई है।

कहीं–कहीं रेखा भी पूरी नहीं है। केवल एक अवयव को ही उभार कर एक ही अनुभाव के द्वारा चित्र में सजीवता लाई गई है।

ठाड़ी बड़े खन की बरसै बडरी अंखियान बड़े बड़े आंसू।

यहां बड़ी आंखों में बड़े–बड़े आंसू दिखा कर ही चित्र की पूर्ति की गई है।

कुछ भाव चित्रों में छायाकृतियों का प्रयोग होता है। पात्र की किसी भावना विशेष को मूर्त रूप देने के लिए चित्र की पृष्ठि–भूमि में छायाकृतियों का उपयोग किया जाता है। इनका मनोविज्ञान की दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व है क्योंकि मूर्तिमंत भावना को व्यक्त करने के लिए यह अत्यंत सफल एवं रोचक प्रयोग है। देव ने एक स्थान पर इस प्रकार का एक बहुत ही सुंदर छाया–चित्र अंकित किया है:–

रावरे पायन ओट लसै, प्रग गूजरी वार महावर ढारे।
सारी असावरी की झलकैं, छलकै छवि घांघरे घूल घुमारे।
जाओ जु जाओ दुराओ न मोहु सों, देव जू चन्द दुरै न अंध्यारे।
देखौ हो कौनसी छैल छिपाई, तिरीछे हंसै वह पीछे तिहारे।।

नायक को किसी के ध्यान में खोया हुआ देखकर, उसकी वास्तविकता का पता लगाने के लिए नायिका व्यंग्य करती है – 'देखो तुम्हारे पीछे पैरों में महावर लगाए हुए, आसावरी की झलकती हुई चूनर और घूमरदार घांघरा पहने हुए तिरछी होकर वह कौन हंस रही है ? तुम उसे छिपा नहीं सकते – कहीं चन्द्रमा भी अंधेरे में छिप सकता है।' वास्तव में है वहां कोई नहीं, परन्तु नायिका इस चित्र के द्वारा मानो नायक के मन में – अथवा ईर्ष्या के कारण अपने ही मन में घूमती हुई सपत्नी की छायाकृति को बड़ी सफाई से अंकित कर देती है। यह चित्र सचमुच कवि के सूक्ष्म कौशल का परिचायक है।

वर्ण–योजना

रेखाओं का उपयोग चित्र में यदि भाव की व्यंजना के निमित्त होता है, तो रंगों का उसको समृद्ध करने के लिए। रीतिकाल कला की समृद्धि का युग था, अतएव उसकी चित्रशाला में रंगों का प्राचुर्य्य मिलता है। बिहारी और देव दोनों ने अपने चित्रों में वर्ण–योजना का अद्भुत चमत्कार दिखाया है। कहीं छाया–प्रकाश के मिश्रण द्वारा चित्र में चमक उत्पन्न की गई है, कहीं उपयुक्त पृष्ठभूमि देते हुए एक ही रंग को काफी चटकीला कर दिया गया है, और कहीं कहीं अनेक प्रकार के रंगों को सूक्ष्म कौशल से मिलाते हुए उसमें सतरंगी आभा उत्पन्न की गई है। पहले छाया और प्रकाश का चमत्कार देखिए:–

सूझत न गात बीति आयो अधरात, लखि
सोये सब गुरुजन जानिकै बगर के।
छिपि कै छबीली अभिसार को किवार खोले,
खुलिगे सुगन्ध चहूँ चन्दन अगर के।।
देव कहै कुंजनि तैं भौरें पुंज गुंजि आये,
पूछि पूछि पीछे परे पाहरू डगर के।
देवता कि दामिनि मसाल है कि जोति-जाल,
झगरो मचत जगे सिगरे नगर के।।

आधी रात बीत चुकी है, गुरुजन सब सोए हुए हैं, चारों ओर निस्तब्धता छाई है, शरीर तक दिखाई नहीं देता। नायिका चुपके से ज्योंही किवाड़ खोलती है, उसके शरीर की सुगंध सर्वत्र फैल जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप कुंजों से भौंरों के समूह आकर ऊपर मंडराने लगते हैं। पहरेदार चौकन्ने होकर पीछे लग जाते हैं। नगर में एक खलबली सी मच जाती है, कि आखिर यह है कौन – कोई देवी है, या दामिनी पृथ्वी पर उतर आयी है, या मशाल जल रही है, अथवा कोई ज्योति–पुंज है ? इस चित्र में पहले निस्तब्ध आधी रात के घने अंधकार – और भौंरो के समूह द्वारा छाया को गाढ़ा किया गया है, फिर दामिनी, मशाल, ज्योति–जाल आदि से प्रखर प्रकाश की उद्भावना की गई है। निस्तब्ध काली रात में तेजी से आगे बढ़ती हुई मशाल में – अथवा सघन मेघो में चमकती हुई बिजली में जो छाया–प्रकाश का अभाव होता है, प्रस्तुत चित्र में कवि ने उसे ही अत्यंत सफ्लतापूर्वक उत्पन्न किया है।

अब कुछ ऐसे चित्र लीजिए जिनमें एक ही रंग का वैभव है:–

फटिक खिलानि सो सुधार्‌यौ सुधा-मन्दिर,
उदधि दधि कौ सो उफनाय उमगै असंद।
बाहर तै भीतर लौं भीति न दिखाई देत,
छीर कैसे फेन फैली चांदनी फरस बन्द।
तारा-सी तरुनि तामै देव जगमग होति,
मोतिन की ज्योति मिल्यौ मल्लिका कौ मकरंद।
आरसी-से अम्बर मैं आभासी उज्यारी ठाढ़ी,
प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सो लगत चन्द।

पृथ्वी और आकाश में सर्वत्र चांदनी का प्रवाह उमड़ रहा है। उसमें नहाता हुआ, स्फटिक–निर्मित सौध–मन्दिर ऐसा लगता है मानो दधि का समुद्र हो, संगमरमर के फर्श पर मानो दूध की लहरें लहरा रही है। उस फर्श पर तारिकाएं जैसी श्वेत–वसना, गौरांगी तरुणियां खड़ी हैं जिनके शरीर मोती और मल्लिका के आभूषणों से जगमगा रहे हैं। उनके मध्य में है चन्द्रकांता राधिका। उधर आकाश में भी यही दृश्य है – वहां भी चांदनी का समुद्र उमड़ रहा है और उसमें तारिकाओं के समूह से घिरा हुआ चन्द्रमा अद्भुत आभा विकीर्ण कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश ने आरसी का रूप धारण कर लिया है, जिसमें पृथ्वी का यह सम्पूर्ण दृश्य प्रतिबिम्बित हो रहा है। आप देखिए, इस चित्र में चांदी के औज्जवल्य की कितनी प्रखर जगमगाहट है – सारा चित्र जैसे झलझला रहा है। मैं समझता हूं कि चित्र–सामग्री की समद्धि की दृष्टि से समस्त रीतिकाल में देव का स्थान अन्यतम् है – ऐसे उदाहरण उनमें अनेक मिलेंगे जिनमें चांदनी, चांदी, सोना, हीरे–मोती, तरह–तरह के जवाहरात, ज़री के वस्त्राभूषण, अनेक प्रकार के फूल, स्फटिक शिला, जल की फुहार आदि का अनंत वैभव बिखरा हुआ है:–

चाँदनी महल बैठी चाँदनी के कौतुक को,
चाँदनी-सी राधा-छवि चाँदनी विशालरैं।
चंद की कला-सी देव दासी संग फूली फिरैं,
फूल-से दुकूल पैन्हें फूलन की महालरैं।
छूटत फुहारे वे, विमल जल झलकत,
चमकैं चंदोवा मनि मानिक महालरैं।
बीच जरतारन की, हीरन के हारन की,
जगमगी जोतिन की, मोतिन की झालरैं।

उपर्युक्त चित्रों में एकवर्ण की ही आभा होने के कारण वर्ण–योजना अपेक्षाकृत सरल है – परन्तु ऐसे चित्रों में जहां अनेक वर्णों का सूक्ष्म मिश्रण है कवि को ज़्यादा कारीगरी दिखानी पड़ती है। वर्ण–योजना के उदाहरण–स्वरूप ब्रजभाषा के आचार्यों में देव का यह छंद अत्यंत प्रसिद्ध है:–

नीचे को निहारत नगीचे नैन-अधर,
दुबीचे पर्‌यो स्यामारुन आभा अटकन को।
नीलमनि भाग ह्वै बिंध्यौ रहत छ्वै निकट कन को।
देव बिहँसत दुति दंतन जुडाति जोति,
बिमल मुकुत हीरा-लाल गटकन को।
थिरकि थिरकि थिर, आने पर थाने तोरि,
बाने बदलत नट मोती लटकन को।

नीचे को निहारते ही नयन और ओठों की छाया पड़ने से लटकन के मोती की आभा श्यामारुण हो जाती है। कुछ भाग नीलमणि हो जाता है और कुछ

पद्मराग। शरीर की कांति से उसमें पुखराज का आभास होने लगता है और हंसते ही फिर वह विमल मुक्ता हो जाता है। यहां थोड़ा परम्परा का पालन अवश्य है, परन्तु फिर भी श्यामारुण आदि रंगों के स्पर्श अत्यंत मनोरम बन पड़े हैं। नीचे के चित्र में रंगों का मिश्रण इससे भी सूक्ष्म है:-

मांग गुही मोतिन भुअंग ऐसी बेनी, उर उरज उतंग और मतंग गति गौन की।
अंगना अनंग कैसी पहिरे सुरंग सारी, तरल तुरंग दृग चाली मृग दौन की।
रूप की नरंगनि बरंगिनि के अंगनि सें, सोंधे की अरंग लै तरंग उठै पौन की।
सखी संग रंग मैं कुरंग नैनी आवै तौलों कैयो रंगमई भूमि भई रंग भौन की।

नायिका की भुजंग जैसी श्याम वेणी मोतियों से गुंथी हुई है – साड़ी रंगीन है। शरीर से रूप की तरंगे उठ रही हैं, नेत्र कुरंग जैसे हैं। रंग भवन की स्फटिक भूमि पर इन सब के प्रतिबिम्ब पड़कर मिल जाते हैं जिससे नायिका के आते आते ही वह अनेक रंगमयी हो उठती है।

यहां रंग सभी चटकीले हैं। पर कहीं कहीं उनको हल्का करके भी मिलाया गया है:-

प्रात पयोदन ज्यो अरुणाई दिखाई दई तरुणाई प्रबीनै।
अथवा:- हेम की बेलि भई हिमराशि घरीक मै घाम सो जाति घुरी है।

अर्थात् कंचन की बेल जैसी नायिका विरह के कारण हिमराशि-सी हो गई है जो तनिक भी ताप से घड़ी भर में घुली जा रही है। कंचन रंग का फीका पड़ कर हिम जैसा हो जाना और फिर उसका धूल से घुलते जाना – रंगों में कितनी कोमलता है।

'गोरो गोरो सुख आज ओरो सो बिलानी जात।' में रंग का स्पर्श और भी हल्का हो गया है। एक चित्र में कवि ने इससे भी सूक्ष्म कौशल का परिचय दिया है – 'चौगुनो रंग चढ़ौ चिठ में, चुनरी के चुचात लाला के निचोरन।' वर्षा में नायिका की चुनरी भीग गई है – नायक बड़े स्नेह से उसे निचोड़ रहा है। रंग से चुचाती हुई चुनरी को इस प्रकार अपने प्रेमी के हाथों से निचुड़ते देखकर नायिका के हृदय में चौगुना रंग चढ़ जाता है। यहां रंग भरा नहीं गया व्यंजित किया गया है।''

''..... देव ने ''सुजान-विनोद'' और ''सुखसागरतरंग'' में षट्ऋतु तथा बारहमासे के चित्र दिये हैं। उनका चित्रण भी यद्यपि प्रधान रूप से उद्दीपन की दृष्टि से ही हुआ है परन्तु फिर भी कवि के सहज रूप-मोह और सूक्ष्म अन्वीक्षण के कारण कुछ प्रकृति-चित्र वास्तव में बहुत ही सुंदर बन पड़े हैं:-

आस पास पूरन प्रकास के पगार सूझें, बनन अगार डीठ गली है निबर ते
पारावार पारद अपार दसौ दिसि बूडी, बिधु बरम्हण्ढ उतरात बिधि बर ते।
सारद जुन्हाई जन्हु पूरन सरूप धाई, जाई सुधा-सिंधु नभ सेत गिरिवर ते।
उमड़ो परत जोति-मंडल अखंड सुधा, मंडल मही में इन्दु-मंडल बिवर ते।

इस चित्र में कोरे उद्दीपन के निमित्त परम्परा का निर्वाह नहीं है, इसमें स्पष्ट ही प्रकृति के प्रति कवि की भावना उमड़ रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो उसका मन शरद ज्योत्स्ना के इस तरंगायित प्रवाह में उछल उछल कर नहा रहा हो। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति ऐन्द्रिय आनन्द की भावना तो देव के अनेक चित्रों में मिल जाएगी:-

1. **वरन सोपाननि ऊपर रह्यते भू पर को, चारिहू तरफ फहरातीं रस-चादरैं।**
2. **रंगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर के झूकनि-सो।**

एकाध चित्र में कवि ने सूक्ष्म अन्वीक्षण का अपूर्व चमत्कार दिखाया है। सुधा के सरोवर-सी अम्बर उदित ससि मुदित मराल मनु पैरिवे को पैठ्यो है। बेला के बिमल फूल फूलत समूल मानों, गगन ते उडि उडुगण गण बैठ्यो है।

चन्द्रिका-मण्डित आकाश में हाल ही में उदित हुआ चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो कोई हंस सुधा के सरोवर में तैरने के लिए अभी अभी प्रविष्ट हुआ हो। ''पैरिबे को पैठ्यो है'' में हंस की मुद्रा का और उसके द्वारा चन्द्रमा की तत्कालीन छवि का अत्यंत सूक्ष्म-कोमल चित्र अंकित किया गया है जो अंगरेज़ी कवि मिल्टन के एक ऐसे ही प्रसिद्ध चित्र का स्मरण दिलाता है:-

To behold the wandering moon,
x x x
And oft, as if her head she bow'd
Stooping through a fleecy cloud.

अंत में, देव के चित्र-कौशल का विवेचन करते हुए रीतिकाल के प्रतिष्ठित चित्रकार-कवि बिहारी का स्मरण हो आना स्वाभाविक ही है। बिहारी के चित्रों में नक्काशी का प्राधान्य है – उनकी रेखाएं पैनी और रंग जड़े हुए हैं – वे चित्र वस्तु-परक कम हैं। यह स्पष्टत: ही उन पर जयपुर क़लम का प्रभाव है। – जयपुर क़लम का अठारहवीं शताब्दी में काफी प्रचार था – मुग़ल शैली का गहरा प्रभाव होने के कारण इस शैली में भी रूप-रेखा की कड़ाई विशेष रूप से मिलती है। बिहारी का जयपुर दरबार से सीधा संबंध था – अतएव वहां चित्रकला की जिस शैली का संवर्द्धन हो रहा था उसका बिहारी के काव्यचित्रों पर प्रभाव पड़ना सहज स्वाभाविक ही था। देव के चित्रों में रेखाएं हलकी-कोमल, रंग तरल और घुले-मिले हैं – उनका संबंध राजस्थानी-शैली से है जो भारत की अपनी देशी शैली थी और मूलत: भाव-परक होने के कारण जिसमें मार्दव की विशेषता थी। बिहारी और देव के चित्रों की यह तुलना आधुनिक युग में पंत और महादेवी के चित्रों की तुलना का अनायास ही ध्यान दिला देती है।''

छायावादी कवियों ने चित्रांकन व कला के पक्ष पर ध्यान दिया है। जयशंकर प्रसाद ने तो भारतीय कला के संदर्भ में अपने एक विस्तृत निबंध में चर्चा की है तथा महादेवी के रेखाचित्र सुप्रसिद्ध हैं। किन्तु भारतीय चित्रांकन परम्परा व विशेष रूप से लघुचित्र परम्परा के संदर्भ में इस युग में भी साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में समुचित विचार नहीं हो पाया है।

मध्यकाल में रंगों को कविता में अभिव्यक्त करने के छांदिक प्रयोग बहुतायत से हुए। एक उदाहरण दृष्टव्य है जिसमें नृत्यरत कृष्ण को श्वेत परिधान पहनाए गए हैं और परिधानों के साथ उनसे जुड़े जो अन्य उपादान हैं वे भी श्वेत ही चुने गए हैं। इस प्रकार पूरे छंद में श्वेत की ही आभा बिखरी है।

सेंत सेंत पाग बांधे सेंत पांखुरी खोंसे केवड़े की
सेंत खौर चंदन की अधिक छवि छाई है।
बागो सेंत, फेंटा सेंत कटि को दुपट्टा सेंत
फूलन की कलगी सेंत अधिक सुहाई है।।
रूप के कटोरा सेंत, दूध भात हाथ लिए

मोतिन की माल नाभि नीचे लौ उराई है।।
बच्छन को पांखे पच्छ बांधे मोर पंखन को
सो जमना के कच्छन में नृत्यरत कन्हाई है।।

इस प्रकार यह भलीभांति स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन काव्य में बिम्बों तथा रंगों को लेकर कवियों ने विचार किया तथा इन छंदों से यह भी स्पष्ट होता है कि ये कवि चित्रकला तथा काव्यकला के दोनों अनुशासनों में गहरी पैठ रखते थे। अनेक चितेरे तो गढ़वाल क़लम के प्रख्यात चित्रकार मोलाराम की तरह कवि भी थे जिन्होंने काव्य ग्रंथ भी रचे थे।

देव तथा बिहारी के संबंध में डॉ. नगेन्द्र के जिन विचारों को उदृत किया गया है उससे यह स्पष्ट होता है कि देव के तथा बिहारी के काव्य की बिम्बात्मकता के पक्ष पर डॉ. नगेन्द्र ने सूक्ष्मता के साथ विचार किया है तथा रंगों और रेखाओं से काव्य पंक्तियों का साम्य स्थापित करते हुए कविता में चित्र कैसे साकार होता है इसके बारे में गहराई से स्थिति स्पष्ट की है। यहां यह तथ्य भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि डॉ. नगेन्द्र के उक्त विवेचन में कविता में चित्र की उपस्थिति तो स्पष्ट होती है किन्तु इस कविता के आधार पर जो चित्र मध्यकाल में निर्मित हुए उस परम्परा के संबंध में तथा उन चित्रों के संदर्भ में जानकारी नहीं मिलती। लेकिन यह परम्परा भी हिन्दी में बड़ी विरल है। जैसा कि मैंने उल्लेख किया है, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी तथा डॉ. विद्यानिवास मिश्र जैसे विद्वानों ने इस पक्ष पर कुछ विचार किया। प्रख्यात वामपंथी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी कृति 'भारतीय सौन्दर्य बोध और तुलसीदास' में भी भारतीय कला परम्परा पर विचार किया।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने निबंध 'कला के प्रयोजन' में भारतीय कला के प्रकार तथा स्वरूप पर विचार किया है। उनकी कृति 'लालित्य तत्व' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उन्होंने कला को महामाया का चिन्मय विलास कहा। आचार्य द्विवेदीजी ने जितने भी ललित निबंध लिखे उनमें अंतरानुशासन की सौन्दर्यमयी झलक दिखाई देती है। उन्होंने कहा कि कला उन समस्त मानवीय प्रयत्नों का नाम है जो मनुष्य को सुसंस्कृत मनुष्य बनाते आ रहे हैं। कला का प्रयोजन यही है कि वह मनुष्य को मनुष्य बनाए, उसे पशु-सामान्य धरातल से ऊपर उठाए। अपनी इस अवधारणा की पुष्टि में वे प्राचीन भारतीय कलाओं के समूचे परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करते हैं। कविता और चित्र के अंर्तसंबंध को भी उन्होंने 'कलाकार की सिसृक्षा और सर्जन-सीमा' शीर्षक अपने निबंध में स्पष्ट किया है। उन्होंने गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक कविता का संदर्भ देते हुए कहा कि यह कविता झेलम के बंकिम स्रोत पर आधारित है। कवि झेलक के वक्रस्रोत को संध्या की लाल आभा से आच्छादित देख रहा है। उसी समय हंस-जातीय पक्षियों की एक पंक्ति (वलाका-पंक्ति) उड़ती चली आई। पहले तो कवि ने इस मनोरम चित्र को देखा और फिर उसे ज्यों का त्यों आंकने का प्रयास किया। जो-जो बातें उसे ऐसी लगीं कि वे पाठकों को मनोग्राह्य नहीं होंगी उनके लिए उसने उपमानों का सहारा लिया और प्रयत्न किया कि सौन्दर्य जैसा उसे दिख रहा है वैसा ही पाठक को भी दिखाई दे। वे कहते हैं कि कवि अपनी अनुभूति को रुपायित करता है। नये चित्र, नयी ध्वनियां, नये राग, नया दर्शन एक पर एक इस प्रकार आते जाते हैं जैसे कोई चतुर जादुगर एक मूर्ति में से सैकड़ों मूर्तियां निकालकर रख देता है। द्विवेदीजी का यह संकेत कवि या कलाकार की उस मानसिकता को दर्शाता है जिस मानसिकता के कारण कविता या चित्र की रचना होती है।

द्विवेदीजी ने भारतीय भित्तिचित्रों पर भी लिखा। उन्होंने इन चित्रों को बनाने की तकनीक के संबंध में भी जानकारी दी तथा विभिन्न रंगों के मिश्रण से कौन-कौन से रंग बनते हैं इसके बारे में जानकारी दी। उन्होंने नाट्यशास्त्र और विष्णुधर्मोत्तर पुराण को लेकर विस्तार से चर्चा की तथा चित्रगत चमत्कार, चित्रकला की श्रेष्ठता, प्रस्तर लेख, लेखन सामग्री सहित उन सभी अन्य विषयों पर लिखा जो चित्रांकन से संबंधित है। कालिदास के द्वारा रचे गए कलात्मक बिम्बों की उन्होंने विशेष जानकारी दी।

आचार्य द्विवेदी ने हिन्दी में रचे गए काव्यों की समीक्षा करते हुए कवियों की श्रेणी भी निर्धारित की। उनमें से एक श्रेणी उन कवियों की है जिन्होंने चित्रकूट, दृश्यकूट और चित्र काव्यों की रचना की। डॉ. नगेन्द्र की तरह उन्होंने भी रीतिकालीन कवियों के काव्यात्मक बिम्बों का चित्रकला के आधारों पर परीक्षण किया। उदाहरणार्थ उन्होंने मतिराम की कविता की समीक्षा करते हुए लिखा कि ''मतिराम का आधारफलक (कैनवास) बहुत बड़ा नहीं है, पर अपने सीमित क्षेत्र में उन्होंने कमाल की चित्रण-पटुता दिखाई है। इन चित्रों में रंगों की चकाचौंध नहीं है, निपुण कलाकार द्वारा आयोजित कौशलों के आधार पर भिन्न-भिन्न अवयवों के उभार दिखाने का प्रयास भी नहीं है बल्कि चित्र के उस वास्तविक प्राणवायु को जीवंत रूप में प्रकट कर देने का सहज गुण प्राप्त है जिसके चित्रित हो जाने पर बाकी सबकुछ स्वयं सुधर जाते हैं।''

द्विवेदीजी ने भी डॉ. नगेन्द्र की तरह बिहारी और देव के कलात्मक बिम्बों पर विचार किया। वे कहते हैं, ''देव का आधारफलक (कैनवास) अवश्य ही बहुत विस्तृत है। रीतिकाल के कम कवियों में इतना वैविध्य होगा। उनके चित्र भी सब प्रकार से परिपूर्ण हैं परन्तु मजमून संभालने में देव प्राय: चूक जाते हैं। नि:संदेह रेखाओं के सन्निवेश और रंगों की योजना की दृष्टि से देव की तुलना बहुत कम कवियों से की जा सकती है।'' देव की तुलना में वे बिहारी को इस दृष्टि से अधिक सफल मानते हैं कि उन्होंने गृहस्थी के प्रेम पर आधारित मर्मस्पर्शी तथा मादक चित्रों का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया भारतीय सौन्दर्य बोध तथा कला की दृष्टि से डॉ. रामविलास शर्मा की 'भारतीय सौन्दर्य बोध और तुलसीदास' नामक कृति अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके खण्ड चार में उन्होंने कला का इतिहास लिखा है तथा डॉ. आनन्दकुमार स्वामी से लेकर डॉ. मोहिन्दर सिंह रंधावा तक प्राय: सभी भारतीय कला के कला इतिहासकारों की कृतियों का संदर्भ देते हुए उन्होंने अपना मत व्यक्त किया है। इस अध्याय में रामविलासजी ने बड़े विस्तार से भारतीय चित्रकला की यात्रा को समेटा है। मेरी दृष्टि में यह किसी हिन्दी समालोचक के द्वारा किया गया इकलौता और प्रामाणिक प्रयास है। डॉ. मोहिन्दर सिंह रंधावा तथा जॉन कैनेथ गेलब्रेथ की कृति 'इंडियन पेंटिंग्स, द सीन, थीम्स एण्ड लीजेंड' को उदृत करते हुए वे भारतीय इतिहास के साथ-साथ स्थापत्य और चित्रांकन के संबंध में विवरण देते हैं। वे कहते हैं कि जिन्हें राजपूत कला और मुग़ल कला कहा जाता है, वे हिन्दी प्रदेश की जनपदीय कलाओं के

रूप थे। यह एक महत्वपूर्ण वक्तव्य है जिसकी ओर केवल उसी विद्वान का ध्यान जाएगा जिसकी आवाजाही भाषा और समाजशास्त्र के अध्ययन में भी होगी। डॉ. रामविलासजी ने अपने अध्ययन में भारतीय मध्यकालीन चित्रकला के संबंध में यह भी महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया कि चित्रकला का जो विकास उस समय हुआ उसका गहरा संबंध वहां सदियों से चली आती लोक कला से था। उन्होंने यह संकेत भी किया है कि जोधपुर में साहित्य और चित्रकला के उत्कृष्ट संरक्षक वहां के राजा थे। उन्होंने जनपदीय कला की विशेषताओं को विशेष रूप से रेखांकित करते हुए कहा कि राजस्थानी कला की जनपदीय विशेषता इस बात में भी देखी जाती है कि यहां लोगों में रंगों के प्रति बड़ी लालसा है। वे उस काल के चित्रकारों के सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य पर भी विचार करते हैं तथा उन तमाम विषयों, कथाओं और ग्रंथों का विवरण देते हैं जिनके आधार पर मध्यकाल में लघुचित्र बने। वे यह भी कहते हैं कि उस समय संगीत की रागमाला के आधार पर भी चित्र बने। साहित्य और कलाओं के संबंध के बारे में उन्होंने कहा कि साहित्य और कलाओं का गहरा संबंध सामाजिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक परिवेश से होता है। यदि यह परिवेश दूषित हो जाए या नष्ट कर दिया जाए तो साहित्य और कलाओं का ह्रास होता है।

रामविलासजी ने डॉ. हर्मन गोएट्स की कृति 'राजपूत आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर' का भी विशेष रूप से उल्लेख किया तथा उन्होंने लिखा कि गोएट्स ने डॉ. आनंदकुमार स्वामी के इस मत की आलोचना की कि भारतीय कलाओं के अविच्छिन्न प्रवाह पर उन्होंने बहुत ज़ोर दिया था। उन्होंने डॉ. आनंदकुमार स्वामी से लेकर डॉ. प्रतापादित्य पाल व डॉ. सोमप्रकाश वर्मा तक के कला इतिहासकारों की पुस्तकों के अंश उद्‌धृत किए तथा अपना यह निष्कर्ष दिया कि डॉ. आनंदकुमार स्वामी के लेखन से यह तीन बातें उभरकर सामने आती हैं कि चित्रकला का घनिष्ठ संबंध हिन्दी प्रदेश के जनपदों से था। वहां उसका विकास हुआ और उसके बाद वह आगरा और दिल्ली के दरबारों में पहुंची, दूसरी बात, यह कला अत्यंत प्राचीन परम्परा का विकास है और तीसरी बात यह कि पूरे सांस्कृतिक परिवेश का, जिसमें साहित्य भी शामिल है, वह अभिन्न अंग है। डॉ. रामविलासजी ने एक महत्वपूर्ण यह निष्कर्ष भी दिया कि सूरदास और तुलसीदास ने इस लघुचित्र कला का परिचय खूब दिया है। उसमें अंकित संसार आकर्षक है, पर वह सीमित नहीं है। यथार्थ जीवन की विशदता वहां देखी जा सकती है। यह विशदता हिन्दी प्रदेश की नवजागरणकालीन चित्रकला और उससे अधिक वास्तुकला में देखी जा सकती है। डॉ. रामविलास शर्मा ने डॉ. प्रतापादित्य पाल के हवाले से यह लिखा है कि हिन्दी और संस्कृत में जो साहित्य उस समय रचा गया उस पर कृष्ण उपासना का प्रभाव स्पष्ट था इसलिए राजपूत चित्रों में रूमानी प्रेम और आध्यात्मिक प्रतीकवाद साथ-साथ चित्रित हुए।

डॉ. रामविलास शर्मा ने कला इतिहास की समस्याओं पर भी विचार किया है तथा विशेष रूप से डॉ. विंसेंट स्मिथ के ग्रंथ 'ए हिस्ट्री ऑफफाइन आर्ट इन इंडिया एण्ड सीलोन' का संदर्भ दिया। उनका निष्कर्ष यह है कि जैसे भाषा विज्ञान में तुलनात्मक अध्ययन का महत्व है वैसे ही कलाओं के इतिहास में भी तुलनात्मक अध्ययन का महत्व स्वीकार करना चाहिए। उन्होंने ई.बी. हैवेल की कृति 'इंडियन स्कल्पचर एण्ड पेंटिंग' जो विंसेंट स्मिथ की कृति से पहिले की लिखी गई थी उसका भी विवेचन किया है और हैवेल का यह कथन उद्‌धृत करते हुए लिखा, ''सोलहवीं सदी में हिन्दू चित्रकला अब वैसी ताज़गी और सजीवता न दिखा पा रही थी, जैसी अजंता स्कूल में थी।'' फिर वह एक अद्भुत स्थापना प्रस्तुत करते हैं, ''भारतीय काव्य की तरह भारतीय चित्रकला अत्यंत रूपवादी और कर्मकाण्डी - 'इंटेंसली फॉर्मल एण्ड रिचुआलिस्टिक' हो गई थी।'' सूरदास और तुलसीदास के कार्य से अपरिचित व्यक्ति ही ऐसी बात कह सकता था। वे लिखते हैं कि लघुचित्र कला की विशेषताएं कहीं-कहीं तुलसीदास के दोहों, सोरठों आदि में दिखाई देती हैं। आखेट वाले या दरबार के दृश्यों से दूर तुलसीदास ने इस कला का उपयोग रामकथा के वर्णन के लिए किया है। कुछेक शब्दों में वे एक अत्यंत भव्य कल्पना चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। डॉ. शर्मा ने प्रख्यात कलाविद डॉ. स्टेला क्रैमरिश की कृति 'दि आर्ट ऑफइंडिया' का भी उल्लेख किया और कहा कि उनकी दृष्टि में भारत में जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष है और कला उसे प्राप्त करने का साधन है। डॉ. शर्मा ने यह एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष दिया कि डॉ. स्टेला क्रैमरिश की पुस्तक से यह बात स्पष्ट होती है कि जातीय प्रदेशों और जनपदों की पहचान के बिना कलाओं का विवेचन संभव नहीं है।

डॉ. रामविलास शर्मा की यह कृति इन अर्थों में भी बहुत महत्वपूर्ण है कि वे गोस्वामी तुलसीदास के सौन्दर्य बोध का विस्तार से उदाहरणों सहित उल्लेख करते हैं जिनसे गोस्वामी तुलसीदास की बिम्ब रचने की कुशलता ज्ञात होती है और यह स्पष्ट होता है कि गोस्वामी तुलसीदास ने वे बिम्ब रचे जो कहीं कलाकारों की प्रेरणा बने तथा मध्यकाल की भारतीय लघुचित्र परम्परा उनकी इस बिम्ब सृष्टि से समृद्ध हुई। इस संदर्भ में सूरदास के काव्य का भी अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान मध्यकाल की चित्रांकन परम्परा को है जिनके रचे छंद कृष्ण की बाल लीलाओं के चित्रण तत्कालीन चितेरों की प्रेरणा बने।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि डॉ. रामविलास शर्मा ने निश्चय ही मध्यकालीन भारतीय चित्रांकन परम्परा और साहित्य के अंर्तसंबंधों को लेकर विचार किया। काव्य बिम्ब चित्रांकन के आधार बने। उनके विवरण से यह तथ्य भलीभांति स्पष्ट हो जाता है। यह अवश्य है कि डॉ. रामविलास शर्मा ने विस्तार से भारतीय कला के समीक्षकों और इतिहासकारों को उल्लिखित करते हुए अपना मत दिया व विशेष रूप से भारतीय कला यात्रा को अपने कृतित्व में संजोया किन्तु उनके कार्य में उन चित्रांकन शैलियों तथा उनकी परम्पराओं के संबंध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं होती जो मध्यकालीन काव्य के आधार पर बनाए गए चित्रों पर केन्द्रित हैं। संभवत: यह विवेचन इसलिए नहीं किया गया क्योंकि उनका उद्देश्य इस विषय पर केन्द्रित कृति की रचना करना नहीं था। उन्होंने कला इतिहास को लेकर अपना मत व्यक्त किया।

आगे के काल में हिन्दी के समकालीन परिदृश्य में डॉ. विद्यानिवास मिश्र ऐसे मनीषी हैं जिन्होंने भारतीय लघुचित्र कला का बारीक़ी के साथ अध्ययन किया और कला इतिहासकारों के संदर्भ दिए। मेरी कृति 'भारतीय चित्रांकन परम्परा' की जो विस्तृत भूमिका उन्होंने लिखी उससे यह तथ्य भलीभांति स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने लिखा कि, डॉ. आनंदकुमार स्वामी से लेकर डॉ. राय आनंदकृष्ण तथा डॉ. बी.एन. गोस्वामी तक के भारतीय कला-समीक्षकों तथा विंसेंट स्मिथ से लेकर डॉ. एन्ड्रयू टॉप्सफील्ड तथा डॉ. रॉबर्ट

स्कैल्टन जैसे भारतीय कला के वर्तमान पाश्चात्य मनीषियों तक भारतीय चित्रांकन परम्परा की चिंतन यात्रा चली आई है।

इस भूमिका में उन्होंने मेरे द्वारा खोजे गए तथा वर्ष 1765 में निर्मित कान्हेरी शैली के सचित्र गीतगोविन्द के प्रथम सर्ग में वर्णित दशावतार के चित्रों का अंर्तअनुशासिक दृष्टि से विवेचन किया। उन्होंने लिखा, ''दशावतार के चित्र दिए गए हैं। हर चित्र एक कहानी है। कहानी के साथ-साथ क्षण-के-क्षण हैं। अर्थात् हर गति की यात्रा में एक सार्थक क्षण होता है, उसी क्षण को कला पकड़ती है और वह क्षण कला का क्षण अर्थात् उत्सव बन जाता है। (क्षण का एक अर्थ उत्सव भी होता है।)

कान्हेरी शैली के गीतगोविन्द के चित्रों को लेकर उन्होंने काव्य और कला के अनुशासनों के अंर्तसंबंध पर महत्वपूर्ण बात कही। उन्होंने लिखा, ''मैं इतना ही कह सकता हूं कि भारतीय कला मात्र प्रकृति से आख्यानपरक है, वह किसी-न-किसी वाक् स्रोत से चाहे चित्र बनकर निकले, शिल्प बनकर निकले, स्थापत्य बनकर निकले, गीत-नृत्य-वाद्य बनकर निकले, कविता बनकर निकले, आख्यानपरक होने के कारण भारतीय कला में गतिमयता है। जिन चित्रों का संकलन इस पुस्तक में किया गया है, वे सभी स्थिर चित्र हैं। वे सचल चित्रपट वाले चित्र नहीं, लेकिन स्थिर चित्र होते हुए भी सभी गतिमयता से ही संतुलित हैं। आदमी साइकिल चलाता है, साइकिल चलाने से दो पहिए की साइकिल नीचे नहीं गिरती, उसी तरह कविता, चित्र तथा गति को पकड़ती हुई चलती है। वह गति स्थूल भौतिक हो सकती है, मानसिक हो सकती है और चैतस हो सकती है। आप हर चित्र में पाएंगे कि उसके पूर्व में कुछ घटित हुआ है, जिसकी छाप पूरे चित्र पर है। सुख देने वाली घटना है तो वह छाप केवल मानव आकृतियों में ही नहीं दिखाई पड़ती, वह छाप पूरे परिवेश के ऊपर दिखाई पड़ती है। ऐसा लगता है कि यह समझना मुश्किल है कि सबसे अधिक दु:ख ने किस को प्रभावित किया, श्रीकृष्ण या राधा को या प्रकृति को ? पेड़, फूलों, नदी, बादल, चन्द्रमा रात के चित्रों में भारतीय कलामात्र में प्रकृति मनुष्य में ओत-प्रोत है।

कान्हेरी शैली के दशावतार चित्रण में हर दशावतार का वही क्षण आलेखित हुआ है जो घटना विशेष का चरम क्षण है। इस शैली के बुद्धावतार के चित्रण में कलाकार ने जगन्नाथजी को ही अंकित किया है। इसके अभिप्राय पर मैंने सोचना शुरु किया तो मुझे लगा कि बलराम, सुभद्रा और श्रीकृष्ण ने बुद्ध का ही स्थान ले लिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा तो है ही, पर उत्कल देश की विषमता को समतल करने में जगन्नाथजी की अर्चन परम्परा बहुत उत्साहपरक रही है। जो रुपांतर बुद्ध करना चाहते थे, वह रुपांतर जगन्नाथजी ने अनायास पूरा किया। इसलिए बुद्ध के स्थान पर जगन्नाथजी इस विशिष्ट शैली में चित्रित हुए। राधा का चित्रण करते समय जो राधा का चित्र रुपायित हो गया है वह विलक्षण है। राधा निकुंज में सिर लटकाए दाहिनी ओर बैठी हुई हैं और सखी को संबोधित कर रही हैं, ऊपर से माला लटकी हुई है। यह माला देश विभाजन तो करती ही है, काल विभाजन भी करती है।

इसी चित्र में सखी के पीछे तीन-तीन पेड़ हैं, राधा के पीछे दो पेड़ हैं और एक पेड़ के नीचे हरिणी बैठी हुई है, निरीहता की मूर्ति-सी। राधा अपने हृदय में स्थित श्रीकृष्ण को देखती हैं। सखी के हाथ आगे की ओर हैं, लेकिन राधा के हाथ सिमटे हुए हैं। मैंने इसीलिए पहले संकेत किया है कि ये चित्र स्थिर चित्र नहीं है, ये गतिशील चित्र की विजड़ित छवि हैं।''

पंडित विद्यानिवासजी के उक्त निष्कर्षों से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने भारतीय लघुचित्र परम्परा तथा साहित्य को जोड़कर देखने का सार्थक प्रयास किया था। उन्होंने कांगड़ा, गुलेर, मंडी, चम्बा और गढ़वाल की पहाड़ी शैलियों में बनाए गए चित्रों का जहां एक ओर विश्लेषण किया वहीं दूसरी ओर किशनगढ़, कोटा, बूंदी, मेवाड़ तथा नाथद्वारा शैलियों में बनाए गए चित्रों सहित अन्य विभिन्न शैलियों में बनाए गए लघुचित्रों की उन्होंने अपने ढंग से व्याख्या की। ऐसे अनेक प्रसंग मेरी स्मृति में हैं।

कला इतिहास की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो जैसा कि मैंने उल्लेख किया है यह एक पृथक अनुशासन ही है। संक्षेप में इस संबंध में निम्नानुसार जानकारी दी जा रही है।

रीतिकालीन कवियों यथा केशव, बिहारी, मतिराम व देव जैसे कवियों के द्वारा रची गई रचनाओं के आधार पर पहाड़ व राजस्थान की न केवल प्रतिनिधि चित्रशैलियों में अपितु ठिकाणा शैलियों में भी लघुचित्र बने तथा ये ग्रंथ भी सचित्र रूप से तैयार किए गए। मालवा शैली में तो रसिकप्रिया के प्राचीनतम अंकन जो सत्रहवीं सदी के हैं वे उपलब्ध होते हैं। इस तरह के चित्रों के दो वर्ग हैं। एक तो वे जिन पर काव्य पंक्तियां अंकित हैं तथा जिनके आधार पर प्रसंग का अथवा भाव का अभिज्ञान हो जाता है तथा दूसरे अंकन वे हैं जिन पर भले काव्य पंक्तियां अंकित न हों किन्तु अंकन में अंकित दृश्य को देखकर यह सटीक अनुमान लग जाता है कि चित्र किस काव्य के किस प्रसंग के आधार पर निर्मित किया गया है। डॉ. आनन्दकुमार स्वामी ने वर्ष 1916 में जब 'राजपूत पेंटिंग' नामक कृति लिखी तब से भारतीय लघुचित्रों के इस अनुशासन का व्यवस्थित अध्ययन आरंभ हुआ। आज इन काव्य ग्रंथों के आधार पर निर्मित किए गए लघुचित्रों के संबंध में एक अध्ययन शास्त्र भारतीय कला इतिहास का तैयार हो गया है। रसिकप्रिया के कब-कब के सेट्स कहां-कहां के संग्रहालयों में संरक्षित हैं तथा उनकी क्या-क्या विशेषताएं हैं इसको लेकर कला इतिहासकारों ने अत्यंत परिश्रमपूर्वक ग्रंथ तैयार किए हैं। इसी प्रकार के ग्रंथ अन्य रीतिकालीन काव्य ग्रंथों के संबंध में लिखे गए हैं। चित्रशैलियों की विशेषताएं वर्णित की गई हैं तथा इन चित्रों के तकनीकी स्वरूप को लेकर व विश्व के विभिन्न संग्रहालयों में इसी प्रकार के अंकन कहां-कहां उपलब्ध हैं इन्हें लेकर जानकारियां संकलित की गई हैं, केटलॉग बनाए गए हैं, प्रदर्शनियां आयोजित की जाती हैं तथा सोदबीज़ व क्रिस्टीज़ जैसे नीलामघरों में ऐसे लघुचित्रों और सचित्र ग्रंथों की नीलामियां होती हैं तथा करोड़ों रुपयों तक इनकी क़ीमत होती है। देश के विभिन्न संग्रहालयों में ये लघुचित्र संरक्षित हैं। अकेले राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली में लगभग 18000 लघुचित्र संरक्षित हैं जिनका अंर्तअनुशासिक दृष्टि से अध्ययन किया जाना अपेक्षित है। वहां सैकड़ों की संख्या में सचित्र ग्रंथ भी हैं जिनका अध्ययन इस दृष्टि से होना चाहिए। देश के विभिन्न अन्य संग्रहालयों और व्यक्तिगत संग्रहों में ऐसी विपुल सामग्री है जिस पर विचार नहीं किया गया। इन्हें प्रदर्शित भी किया गया है किन्तु यह

विडम्बना ही है कि इन चित्रों के अध्ययन की कोई विशेष चेष्टा हिन्दी और संस्कृत के विद्वानों ने नहीं की है अपितु वे प्राय: इस चित्र संसार से अपरिचित ही हैं।

यहां मैं एक विशेष उदाहरण भी देना चाहता हूं। पेरिस के राष्ट्रीय संग्रहालय जिसे म्यूज़ी ग्यूमे कहा जाता है की भारतीय लघुचित्रों की वरिष्ठ संग्राहक डॉ. अमीना ओकाडा ने एक उपक्रम यह किया कि वे निरंतर दस वर्षों तक विश्व के ग्यारह देशों के बयालीस से अधिक संग्रहालयों में घूमीं तथा इन संग्रहालयों व व्यक्तिगत संग्रहों में रखे हुए रामायण पर आधारित चित्रों और सचित्र ग्रंथों का उन्होंने अध्ययन किया फिर ऐसे दस हज़ार लघुचित्रों व सचित्र ग्रंथों में से उन्होंने लगभग 660 का चयन कर उन्हें अनेक खण्डों में उनकी कलात्मक व साहित्यिक दृष्टि से विवेचना करते हुए फ्रेंच में प्रकाशित किया। हम क्या इस प्रकार की किसी परियोजना की कल्पना कर सकते हैं ?

यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि बहुत दूर नहीं अपितु लगभग दो-तीन शताब्दियों के पूर्व तक ऐसे सचित्र ग्रंथ व लघुचित्र विभिन्न रियासतों के राजाओं ने अपने संरक्षण में तैयार करवाए थे। भारतीय लघुचित्रांकन का इतिहास इनसे भरपूर है। केवल एक उदाहरण ही देना पर्याप्त होगा। मेवाड़ में लघुचित्र बहुत बने। राजकीय संग्रहालय, उदयपुर में जो लघुचित्रों तथा सचित्र ग्रंथों का विशाल संग्रह है उनमें महाराणा जयसिंह (1680-1698 ई.) के समय में प्रभूत लघुचित्र बने जिनकी संख्या लगभग 7350 आंकी गई है। महाराणा जयसिंह के काल में जिन संस्कृत ग्रंथों पर आधारित लघुचित्र बने उनका विवरण निम्नानुसार है -

(1) सारंगतत्व 54 (2) सारंगधर 66 (3) मालती माधव 176 (4) पंचाख्यान 152 (5) सारंगतत्व 136 (6) हरिवंश 677 (7) रघुवंश 150 (8) एकलिंग महात्म्य 93 (9) गजेन्द्र मोक्ष 17 (10) प्रबोध चन्द्रोदय 160 (11) काशी खण्ड 337 (12) सारंगधर 240 (13) गीत गोविन्द 23 (14) भगवद् गीता 717 (15) वृहत कथा 64 (16) महाभारत 3138 । ब्रज भाषा के ग्रंथों पर आधारित लघुचित्र हैं:-

(1) रसिक प्रिया 88 (2) सूरसागर 136 ।

राजस्थानी ग्रंथों पर आधारित लघुचित्र हैं:-

(1) वेली क्रिसन रुकमणी री 95 (2) पृथ्वीराज रासो 628 ।

यह जानना भी रोचक होगा कि मेवाड़ के शासकों में महाराणा जयसिंह के काल के संबंध में यह माना जाता है कि उन्होंने चित्रकला के क्षेत्र में वह सक्रियता नहीं दिखाई जो उनके पूर्ववर्ती शासकों ने दिखाई थी। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मेवाड़ के शासकों ने विभिन्न धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथों के आधार पर कितने चित्र बनवाए होंगे।

यहां यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि रामायण और गीतगोविन्द जैसे काव्यों के आधार पर जो अंकन हुए उनमें अंकनों के ऊपर जो इबारत अंकित की गई वह स्थानीय भाषा की इबारत थी। उदाहरणार्थ गीतगोविन्द की अष्टपदियों के और वाल्मीकि रामायण के प्रसंगों के आधार पर जो मध्यकाल में लघुचित्र मेवाड़ शैली में बने तथा राजा जगतसिंह के समय में विशेष रूप से साहिबदीन और मनोहर जैसे कलाकारों ने जिन्हें बनाया उन पर मेवाड़ी में इबारत लिखी गई। अर्थात् इन ग्रंथों का अनुवाद स्थानीय मेवाड़ी में हुआ तथा फिर इसके आधार पर अंकन किए गए। यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य था। स्वर्गीया डॉ. कपिला वात्स्यायन ने जो गीतगोविन्द पर अपने मोनोग्राफ लिखे उनमें जावर, बूंदी व मेवाड़ी गीतगोविन्द के मोनोग्राफमें प्रकाशित चित्रों पर इन्हीं स्थानीय बोलियों की इबारत अंकित है। ये अंकन राष्ट्रीय संग्रहालय व बनारस कला भवन में संरक्षित हैं। यहां यह तथ्य भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि लोक कलाकारों ने भी अपनी देशज शैली में ऐसे सचित्र ग्रंथ तैयार किए जो धार्मिक और साहित्यिक ग्रंथ थे। उन्होंने गद्य में भी मूल काव्य का अपनी देशज बोली में अनुवाद कर लिया तथा उसे चित्र के ऊपर अथवा पीछे अंकित कर दिया। इस प्रकार के अनेक सचित्र ग्रंथ विभिन्न व्यक्तिगत संग्रहों तथा संग्रहालयों में मौजूद हैं। मधु मालती नामक इसी प्रकार का सचित्र काव्य ग्रंथ श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामऊ में संरक्षित है।

इस प्रकार इन लघुचित्रों का अध्ययन इस दृष्टि से भी नहीं हुआ कि साहित्य का स्थानीयकरण कैसे हुआ, कौन-कौन से कारक उसके लिए उत्तरदायी थे और फिर ऐसे स्थानीय बोलियों वाले काव्य के आधार पर ये लघुचित्र कैसे बनाए गए।

मैं यहां एक और ग्रंथ 'अवतारचरित' का उल्लेख करना चाहता हूं जो झालावाड़ शैली में 19वीं सदी में निर्मित किया गया। यह रामायण के प्रसंगों पर आधारित सचित्र ग्रंथ है। इसे बारहट नरहरिदास ने लिखा था जो गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। इस ग्रंथ का भी परिशीलन इन चित्रों के संदर्भ में नहीं किया गया। अवतारचरित तो एक उदाहरण है। ऐसे ग्रंथों की ओर तथा उन चित्रों की ओर जो इन ग्रंथों के प्रसंगों के आधार पर पृथक से बनाए गए कोई विचार हिन्दी व संस्कृत की परम्परा में प्राय: नहीं के बराबर हुआ है तथा कला समय के इस अंक में विद्वानों ने इस तथ्य की प्राय: पुष्टि भी की है। अपवाद रूप में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जैसे विद्वान वर्तमान में संस्कृत में हैं जिनका ध्यान इस ओर गया है तथा जिन्होंने हाल ही में अपने विस्तृत वक्तव्यों में संस्कृत काव्य में चित्रांकन को लेकर गंभीर विमर्श किया है तथा वेदकाल से लेकर भास और कालिदास सहित अनेक विद्वानों के द्वारा जो अपने ग्रंथों में बिम्ब उपस्थित किए गए हैं उनकी चर्चा की है। इसी प्रकार हिन्दी में विशेष रूप से दतिया क़लम के संदर्भ में व कविप्रिया तथा रसिकप्रिया के प्रसंगों के आधार पर जो चित्र बने उन्हें लेकर डॉ. श्यामसुंदरजी दुबे ने गंभीरतापूर्वक कार्य किया है।

यह अवश्य है कि इस कार्य में इन दोनों अनुशासनों की कुछ चर्चा तो हुई किन्तु अपेक्षित विमर्श नहीं हो पाया। यह भी जानने योग्य तथ्य है कि अमरूक शतक, बालगोपाल स्तुति, गीत गौरी और रतिरहस्य जैसे अल्पज्ञात संस्कृत ग्रन्थों को भी 15वीं-16वीं सदी में चित्रित किया गया है।

यही स्थिति संगीत के क्षेत्र में भी रही लेकिन वहां संगीत समीक्षकों ने अपेक्षाकृत अधिक चर्चा की। नृत्य के अनुशासन की यदि बात हो तो कपिलाजी ने तो अपना शोध कार्य ही लघुचित्रों में नृत्य को लेकर किया। मगर हिन्दी साहित्य में ऐसा कोई विशिष्ट प्रयास परिलक्षित मुझे नहीं हुआ। कुछेक कार्य हो सकते हैं लेकिन उनका कोई वैशिष्ट्य दिखाई नहीं देता।

लेकिन अंग्रेज़ी में जिन कला इतिहासकारों ने इन लघुचित्रों का

विश्लेषण किया उन्होंने इनके यथासम्भव सन्दर्भ दिये। आज भी यदि बिहारी सतसई के दोहे पर आधारित किसी लघुचित्र का विश्लेषण किया जाता है तो चित्र की विशेषताएं बाद में उल्लिखित की जाती हैं, बिहारी के परिचय से लेकर उस दोहे के अर्थ और सन्दर्भ को पहिले स्पष्ट किया जाता है साथ ही यह भी बताया जाता है कि इस प्रसंग पर कब कब किस शैली में कहां कहां चित्र बने और वे अभी कहां रखे हैं और कहां कहां प्रकाशित हुए हैं। जिन हिन्दी या संस्कृत के ग्रन्थों को, उनके अनुवादों को विश्लेषण का आधार बनाया जाता है उनका भी पूर्ण सन्दर्भ दिया जाता है। कला इतिहासकार यह भी प्रयास करते हैं कि वे यह स्पष्ट करें कि तुलनात्मक रूप से भी कोई अन्तर भी किसी स्तर पर है या नहीं?

हम लोग इनके नाम प्राय: नहीं जानते। हम लोग स्टैला क्रेमरिश, बारबरा स्टॉलर मिलर, डब्ल्यू.जी. आर्चर, मोहिंदर सिंह रन्धावा, जगदीश मित्तल, रॉबर्ट स्केल्टन और बी.एन. गोस्वामी जैसे कितने विद्वानों के नाम जानते हैं जिन्होंने इन ग्रन्थों के प्रसंगों पर आधारित चित्रों का अध्ययन करने और इस काव्य को समझ कर इसकी कलात्मक अभिव्यक्ति को कला जगत मे सामने लाने में अपना जीवन लगाया है। इन विद्वानों ने विद्यापति से लेकर बिहारी और केशव सहित उन कवियों के काव्य का अनुवाद भी किया है जिनके नामों का उल्लेख ऊपर किया गया है। यह अवश्य है कि पश्चिम के कला इतिहासकार तथा उनका अनुगमन करने वाले भारतीय कला इतिहासकार उस काव्य के मर्म का स्पर्श प्राय: नहीं कर पाये जो मर्म इस काव्य की आत्मा है। इस प्रकार एक अंतराल दोनों ओर से विद्यमान रहा। एक ओर जहां पाश्चात्य कला इतिहासकार इन लघुचित्रों की तकनीकी व्याख्या तक अधिक सीमित रह गए और काव्य के मर्म का संबंध चित्रांकन से स्थापित नहीं कर पाए वहीं दूसरी ओर हिन्दी और संस्कृत के विद्वान इन लघुचित्रों के अध्ययन से प्राय: विमुख ही रहे और वे केवल इन काव्यों के व्याख्या और इनसे जुड़े हुए विमर्श तक सीमित रह गए। काव्य के मर्म का चित्रांकन से कैसा, कितना और क्यों संबंध रहा है इसके बारे में कार्य नहीं हुआ। यह तथ्य निश्चय ही स्वीकार किया जाना चाहिए। पूर्व में जो विवरण जिन विद्वानों के संदर्भ में दिया गया है निश्चय ही वह अत्यंत महत्वपूर्ण है किन्तु वह अध्ययन और विस्तीर्ण नहीं हुआ और न ही उसकी कोई सधी-बधी परम्परा विकसित हो पाई।

मैंने इस बिन्दु पर प्रख्यात कला इतिहासकार डॉ. रॉबर्ट स्कैल्टन, राय आनंद कृष्ण, श्री जगदीश मित्तल सहित डॉ. एन्ड्रयू टॉप्सफील्ड, डॉ. श्रीधर अंधारे और डॉ. अमित अम्बालाल जैसे कलाविदों से भी चर्चा की। डॉ. अमित अम्बालाल ने अवगत कराया कि पश्चिम के कला इतिहासकार प्राय: अंग्रेज़ी में इन काव्य ग्रंथों के संबंध में जो सामग्री उपलब्ध है केवल उसी का उपयोग अधिकांशत: करते हैं। मैंने हिन्दी के अनेक मनीषियों से, साहित्यकारों से भी चर्चा की तथा इन दोनों अनुशासनों से संबद्ध व्यक्तित्वों से चर्चा करने के बाद यही निष्कर्ष निकला कि इस ओर अपेक्षित कार्य नहीं हुआ तथा ये अंर्तसंबंध दृष्टिपथ से प्राय: छूटे रहे।

यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि इसका क्या औचित्य है ? रीतिकालीन काव्य अब प्रासंगिक नहीं रहा तथा आज के समय में जो प्रश्न उपस्थित हैं वही विचारणीय होने चाहिए। मैं इससे सहमत इसलिए नहीं हूं क्योंकि यह प्रश्न केवल साहित्य या केवल कला से जुड़ा हुआ नहीं है। यहां रीतिकालीन काव्य की प्रासंगिकता के होने या न होने का प्रश्न भी नहीं है। यहां तो यह प्रश्न है कि आज जब अंतरावलंबित अध्ययन की दिशा में इतने महत्वपूर्ण क़दम उठाए जा रहे हैं तो फिर लघुचित्रांकन परम्परा व प्रासंगिक काव्य के अंतरावलंबन की उपेक्षा क्यों की जानी चाहिए ? इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि यह अंतरावलंबन हमारी कला की सबसे बड़ी पहचान है तथा ऐसा कार्य संभवत: विश्व में कहीं नहीं हुआ। यह हमारे इतिहास, कला और संस्कृति की महनीय धरोहर है इसलिए इस ओर यदि पूर्व में अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया तो अब दिया जाना चाहिए तथा यह हिन्दी व संस्कृत तथा भारतीय कला से जुड़े हुए सभी विद्वानों और अध्येताओं का तथा साहित्य व कला के अनुरागियों का सामूहिक दायित्व है।

इस बारे में विस्तार से बात की जा सकती है और होनी चाहिये। सबसे बड़ी आवश्यकता तो भारतीय कला इतिहास के विद्यार्थियों को इन अंर्तसंबंधों से परिचित कराने की है तथा इसके लिए एक पाठ्यक्रम का निर्माण तुरंत किया जाना चाहिए ताकि नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन के समय यह पाठ्यक्रम अस्तित्व में आ सके। मध्य प्रदेश में ही राज्य शासन के संस्कृति विभाग के अंतर्गत राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर में कला केन्द्रित विषयों में चित्रांकन के पाठ्यक्रम हैं। इसी प्रकार भोपाल में अटल बिहारी वाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय है जो हिन्दी को समर्पित है। क्या ये दोनों विश्वविद्यालय परस्पर विमर्श कर ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण नहीं कर सकते ? इसी प्रकार भारत शासन के स्तर पर भी क्या ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण भारत शासन के शिक्षा विभाग के द्वारा नहीं किया जा सकता ? इस प्रकार के अनेक प्रयास कर इस अंतरावलंबन के अध्ययन को केन्द्र में लाया जा सकता है तथा अभी तक इस दृष्टि से जो अध्ययन नहीं किया जा सका वह किया जाकर इस अंतराल की पूर्ति की जा सकती है।

यहां उक्त काव्यों पर आधारित कुछ मनभावन लघुचित्रों की चित्रावली प्रस्तुत है। 'कला समय' इस विमर्श का मंच बने और इस ओर सकारात्मक पहल करने में समर्थ हो मैं इस हेतु आशान्वित हूं।

- लेखक प्रख्यात ललित निबंधकार तथा कलाविद है
पता- 85, इंदिरा गांधी नगर, आर.टी.ओ. कार्यालय के पास, केसरबाग रोड, इंदौर-9
(म.प्र.), मोबाइल- 9425092893

■

लघुचित्रों की चित्रावली

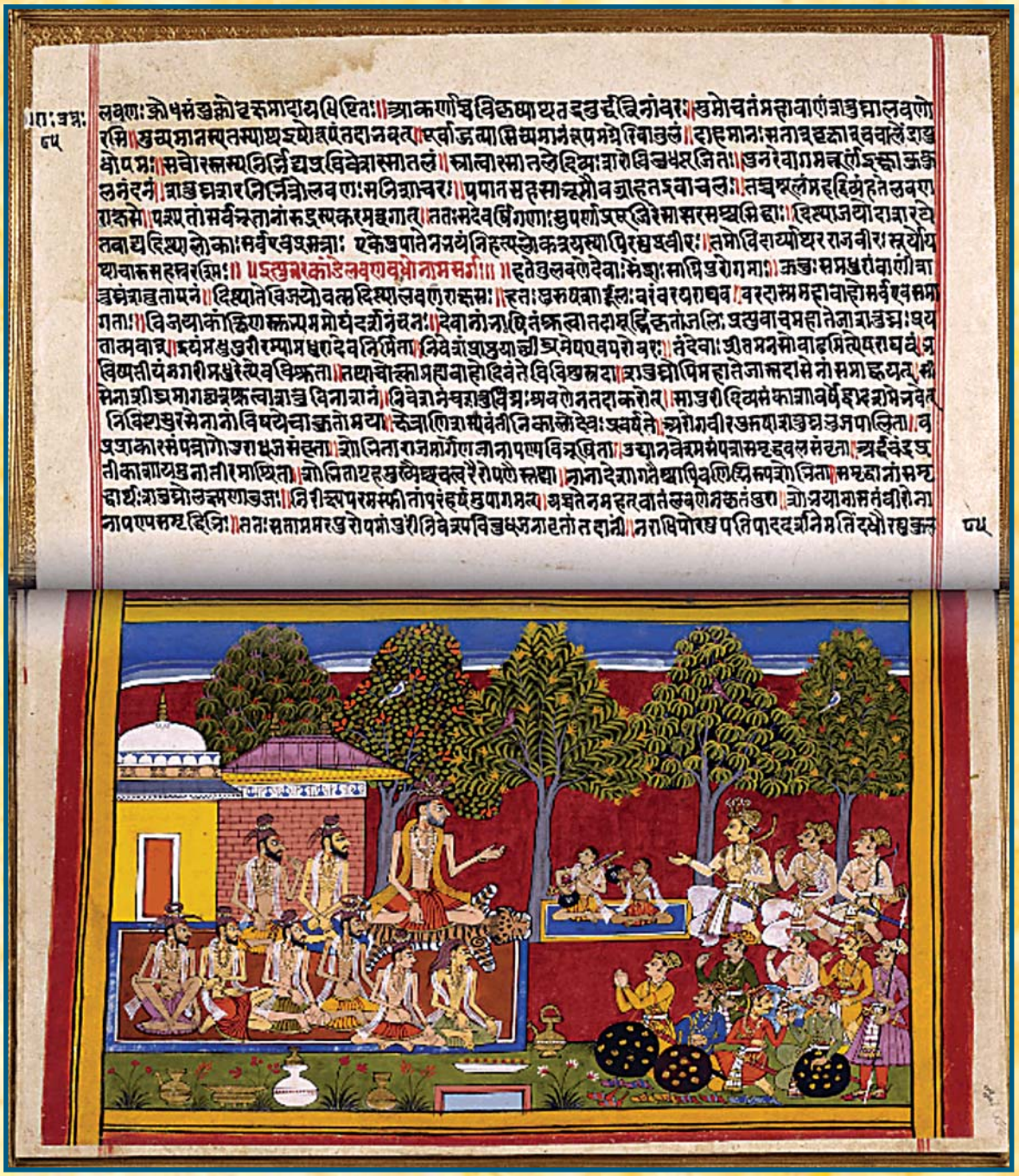

वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड के वर्णन पर आधारित जिसमें शत्रुघ्न वाल्मीकि आश्रम में लव-कुश के मुख से रामकथा सुन रहे हैं। मेवाड़ शैली - अठारहवीं सदी।

वाल्मीकि रामायण के प्रसंग पर आधारित अंकन जिसमें चित्रकूट में भगवान राम, भरत तथा शत्रुघ्न को समझाते हुए। इबारत मेवाड़ी में चित्र के ऊपरी भाग पर अंकित। मेवाड़ शैली - अठारहवीं सदी।

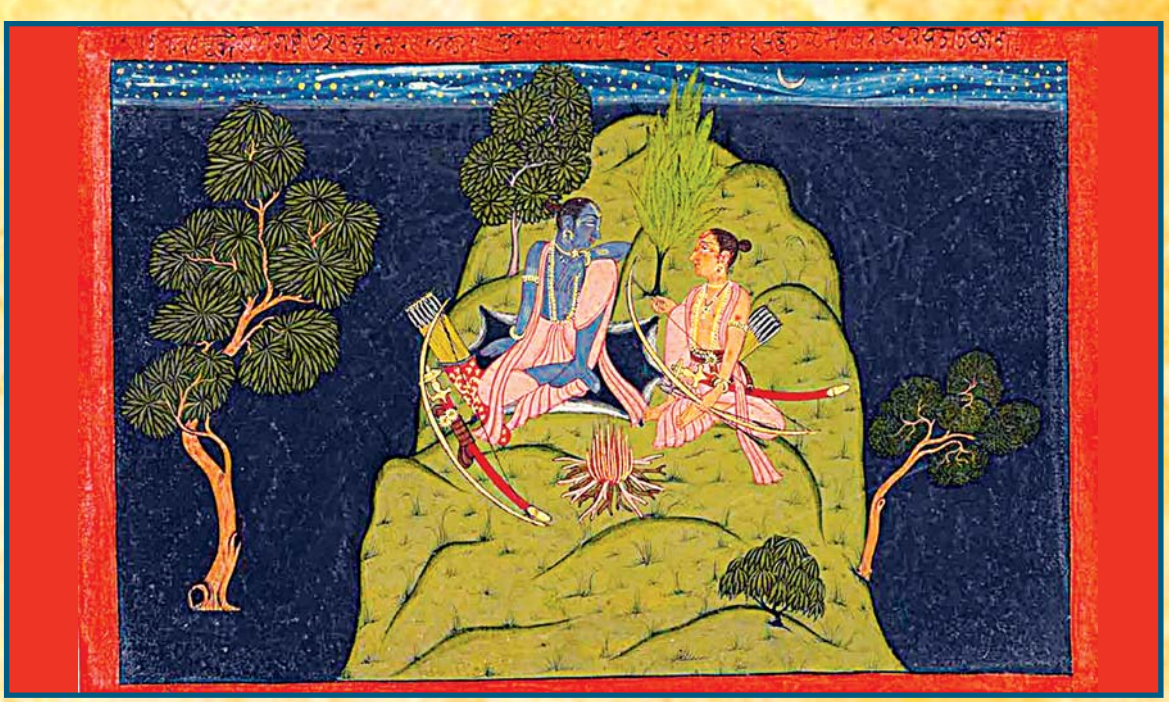

सीता हरण के पश्चात पर्वत पर शोक ग्रस्त बैठे राम व लक्ष्मण - पहाड़ी शैली - अठारहवीं सदी।

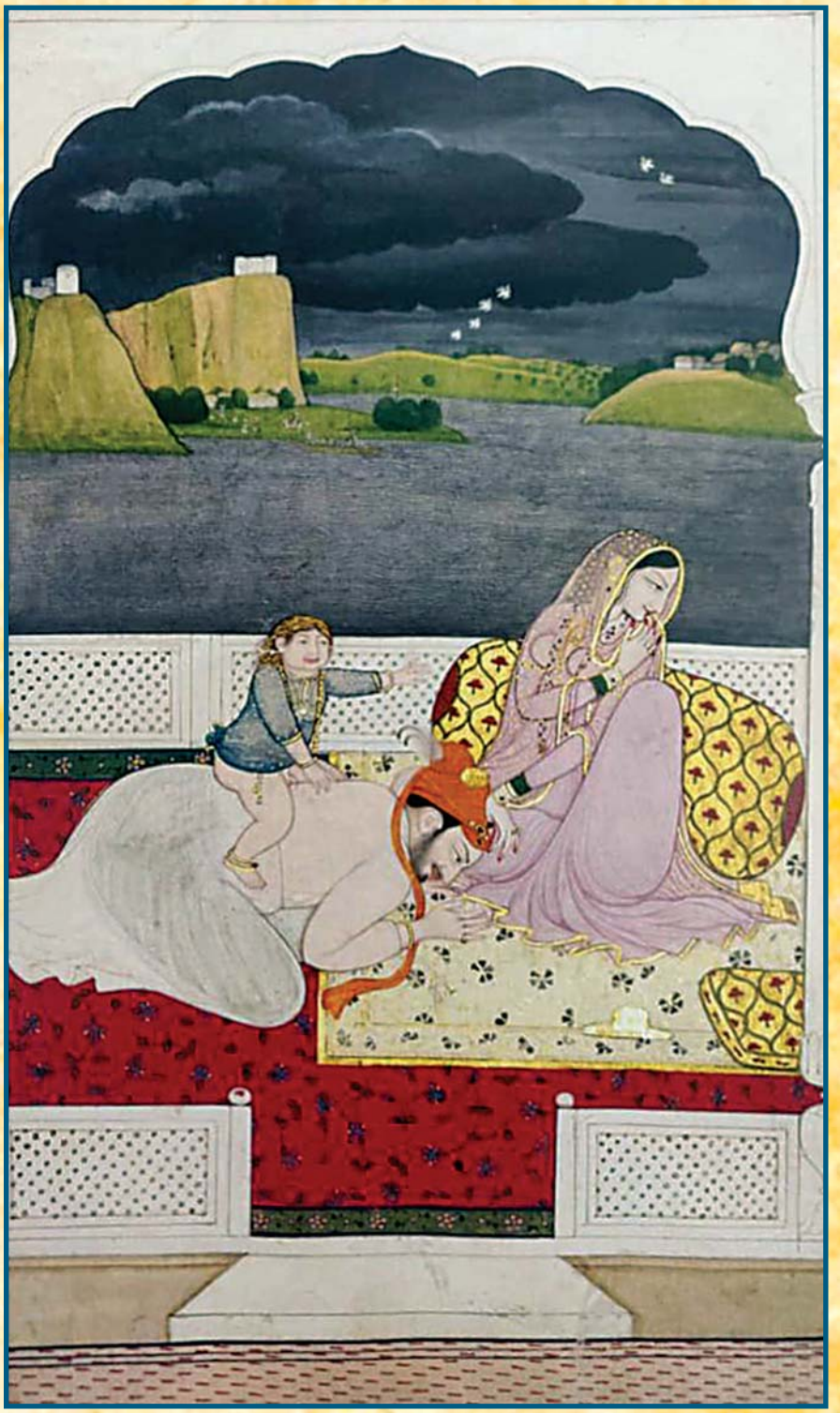

प्राचीन कथा पर आधारित अंकन - कांगड़ा शैली (दातारपुर) - उन्नीसवीं सदी।

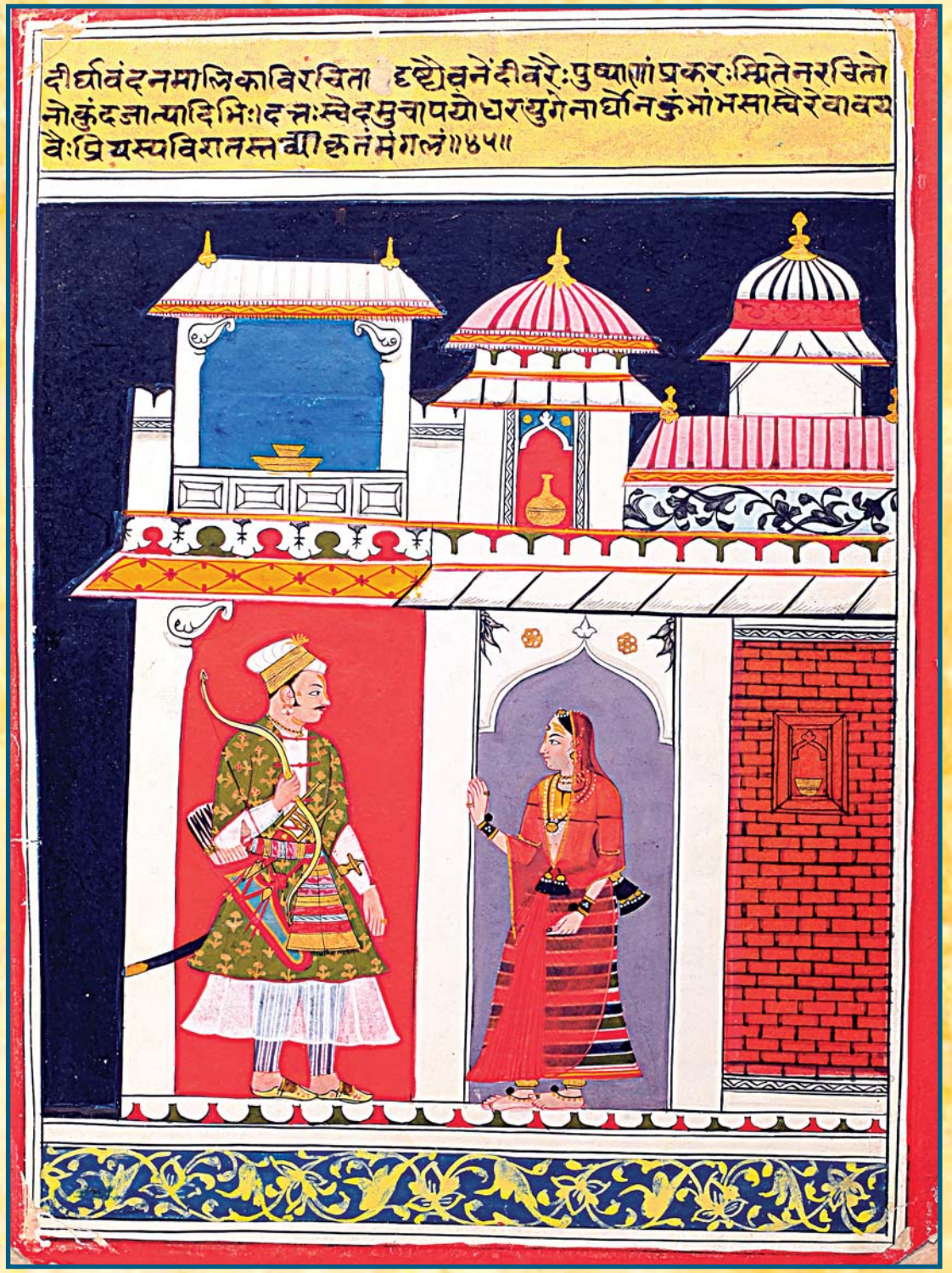

अमरूक शतक के श्लोक पर आधारित अंकन। मालवा शैली - सत्रहवीं सदी।

अमरूक शतक के श्लोक पर आधारित अंकन। मालवा शैली - सत्रहवीं सदी।

बालगोपाल स्तुति के कृष्ण स्वरूप वर्णन पर आधारित चित्र। अपभ्रंश शैली - सोलहवीं सदी।

राजा दुष्यंत व शकुंतला - अभिज्ञान शाकुन्तल पर आधारित अंकन - बाहु - अठारहवीं सदी।

राजा दुष्यंत व शकुंतला - अभिज्ञान शाकुन्तल पर आधारित अंकन - ठाकुर शैली - रामगोपाल विजयवर्गीय।

मीठाराम भागवत का पृष्ठ - लोधी काल - सल्तनत शैली - सोलहवीं सदी।

भागवत पर आधारित अंकन - मालवा शैली - सत्रहवीं सदी - कनोड़िया संग्रह।

भागवत के अंकन के पीछे का पृष्ठ - सत्रहवीं सदी - कनोड़िया संग्रह।

भागवत के विभिन्न प्रसंगों पर आधारित अंकन - दतिया शैली - उन्नीसवीं सदी।

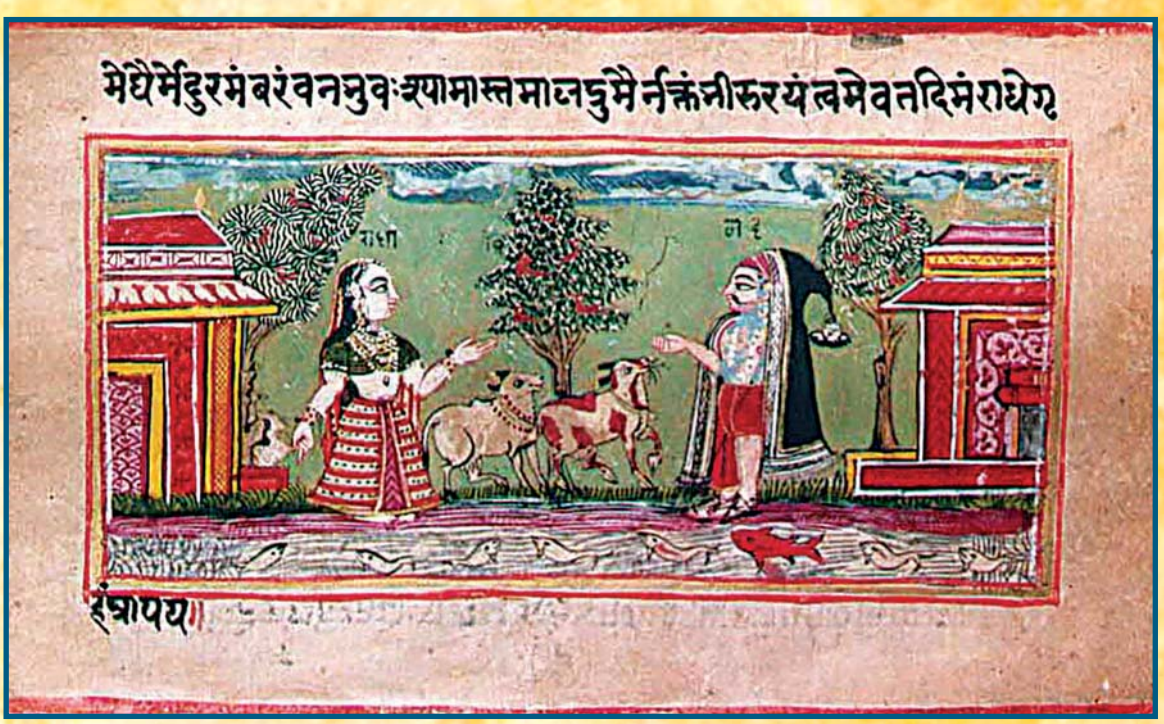

गीतगोविन्द के मंगल श्लोक पर आधारित अंकन - कान्हेरी शैली - अठारहवीं सदी।

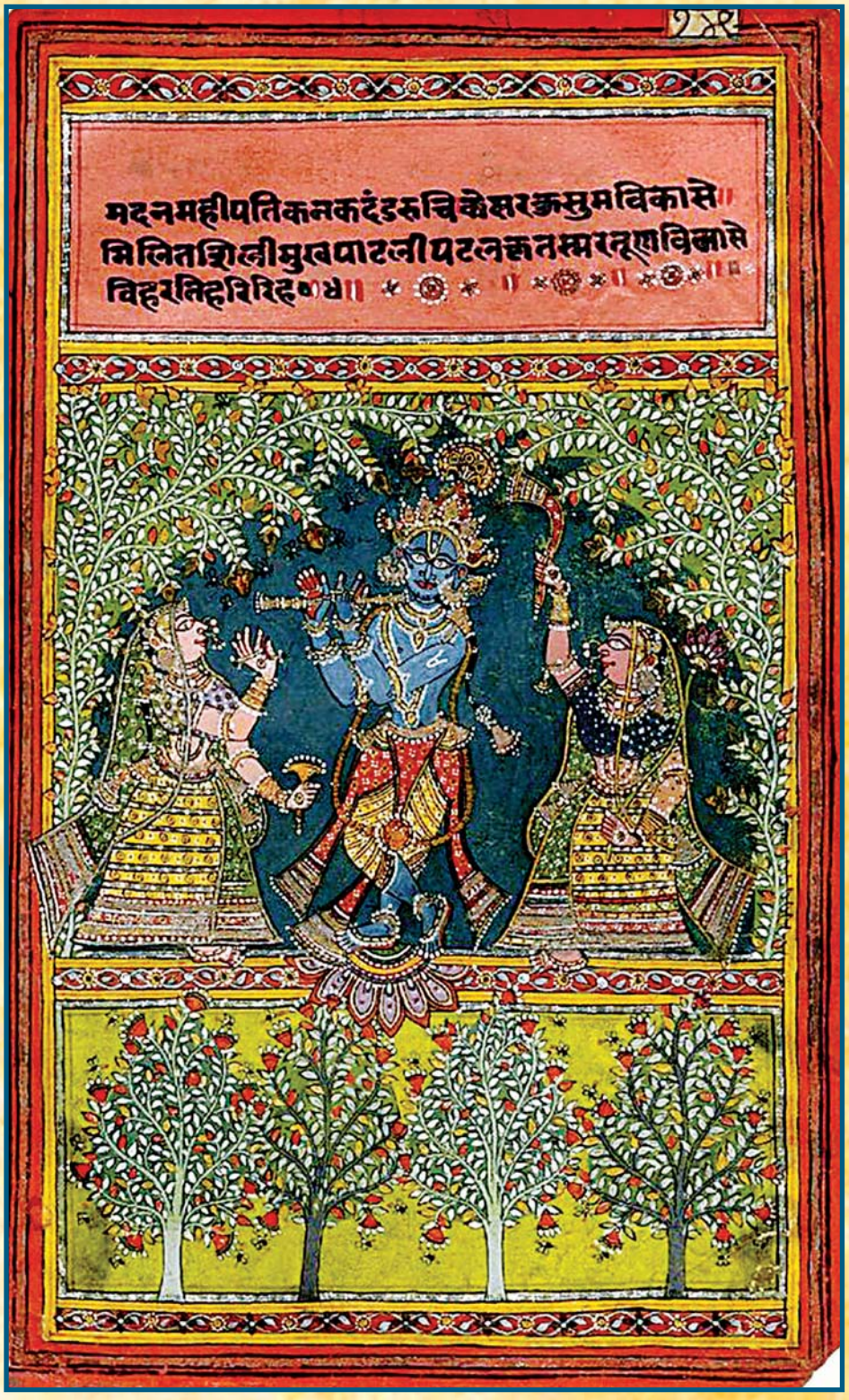

गीतगोविन्द के प्रथम सर्ग पर आधारित अंकन - ओडिशा पटचित्र - अठारहवीं सदी।

गीतगोविन्द के अंतिम सर्ग पर आधारित अंकन - मेवाड़ी में इबारत अंकित - मेवाड़ शैली - अठारहवीं सदी।

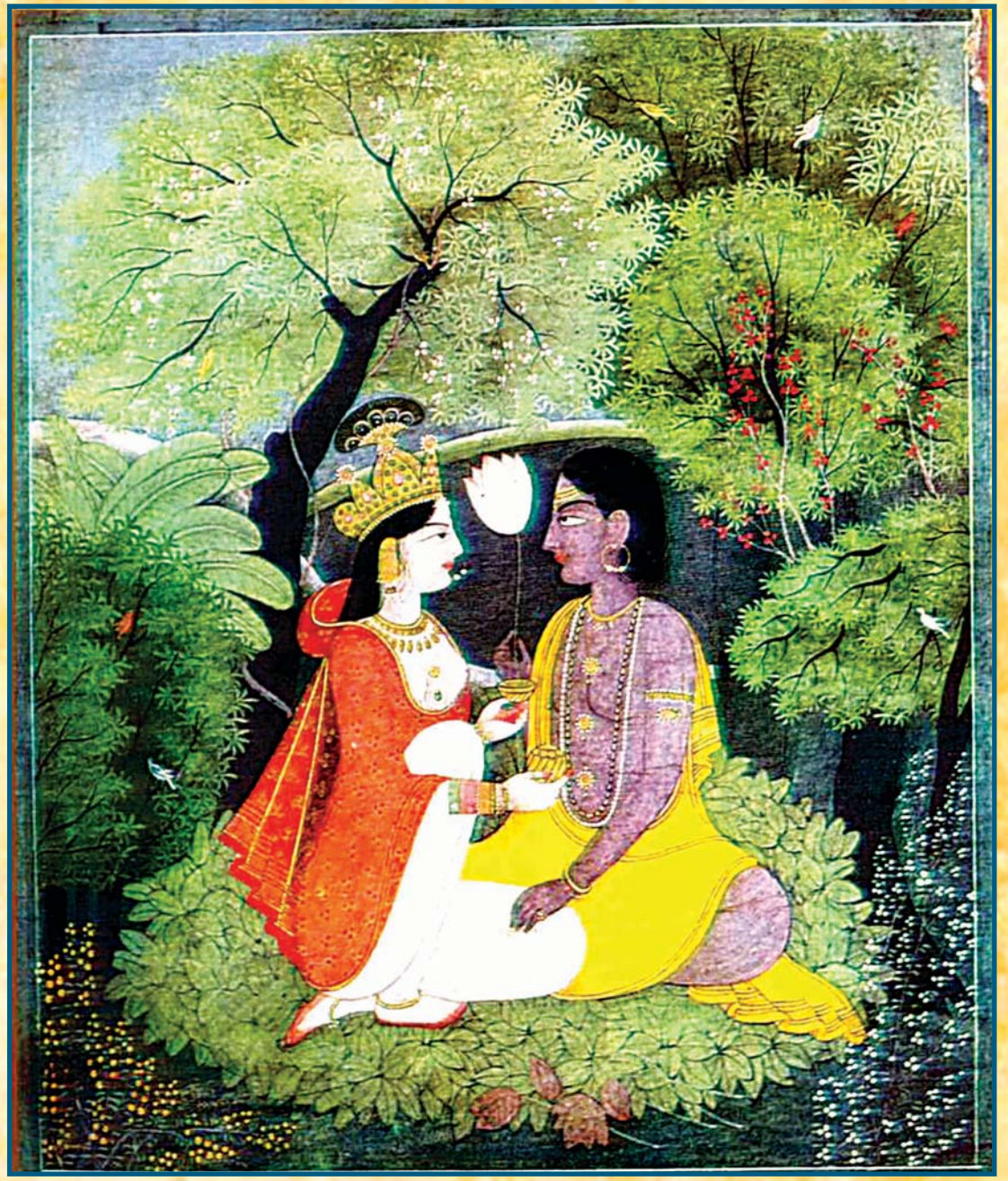

गीतगोविन्द के अंतिम सर्ग पर आधारित अंकन - वास परिवर्तन - कांगड़ा शैली - अठारहवीं सदी।

रसमंजरी के श्लोक पर आधारित अंकन - मध्याधीरा अधीरा नायिका - मेवाड़ शैली - अठारहवीं सदी।

रुकमणी हरण - हर्ष दहेजिया संग्रह - पहाड़ी शैली - अठारहवीं सदी।

सचित्र ग्रंथ रामचरितमानस के अयोध्या काण्ड की चौपाईयों पर आधारित अंकन - जयपुर शैली - उन्नीसवीं सदी।

रामचरितमानस के सुंदर काण्ड पर आधारित अंकन - जयपुर शैली - उन्नीसवीं सदी।

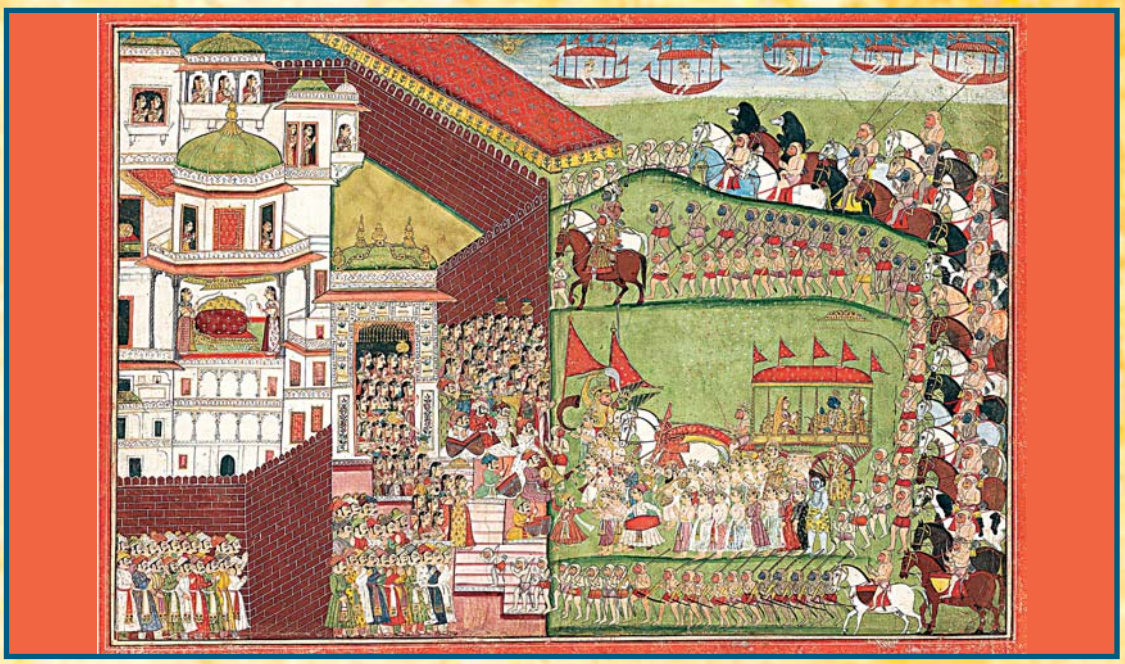

रामचरितमानस के अयोध्या काण्ड के प्रसंग पर आधारित राम का वनगमन - जोधपुर शैली - अठारहवीं सदी।

अहिल्या उद्धार - अवतारचरित - झालावाड़ शैली - उन्नीसवीं सदी।

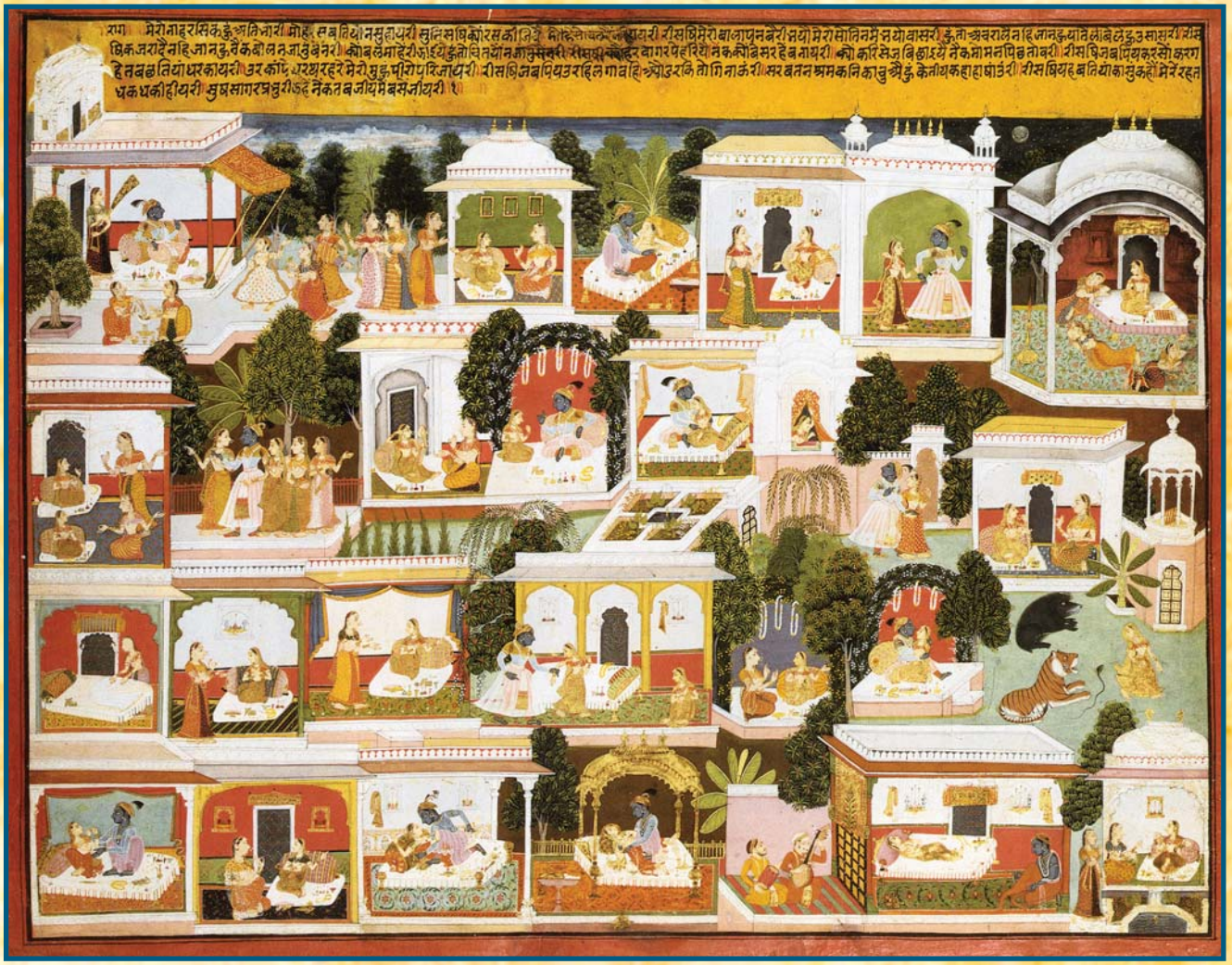

कृष्ण की बाल लीला - सूरसागर के पद पर आधारित अंकन - मेवाड़ शैली - अठारहवीं सदी।

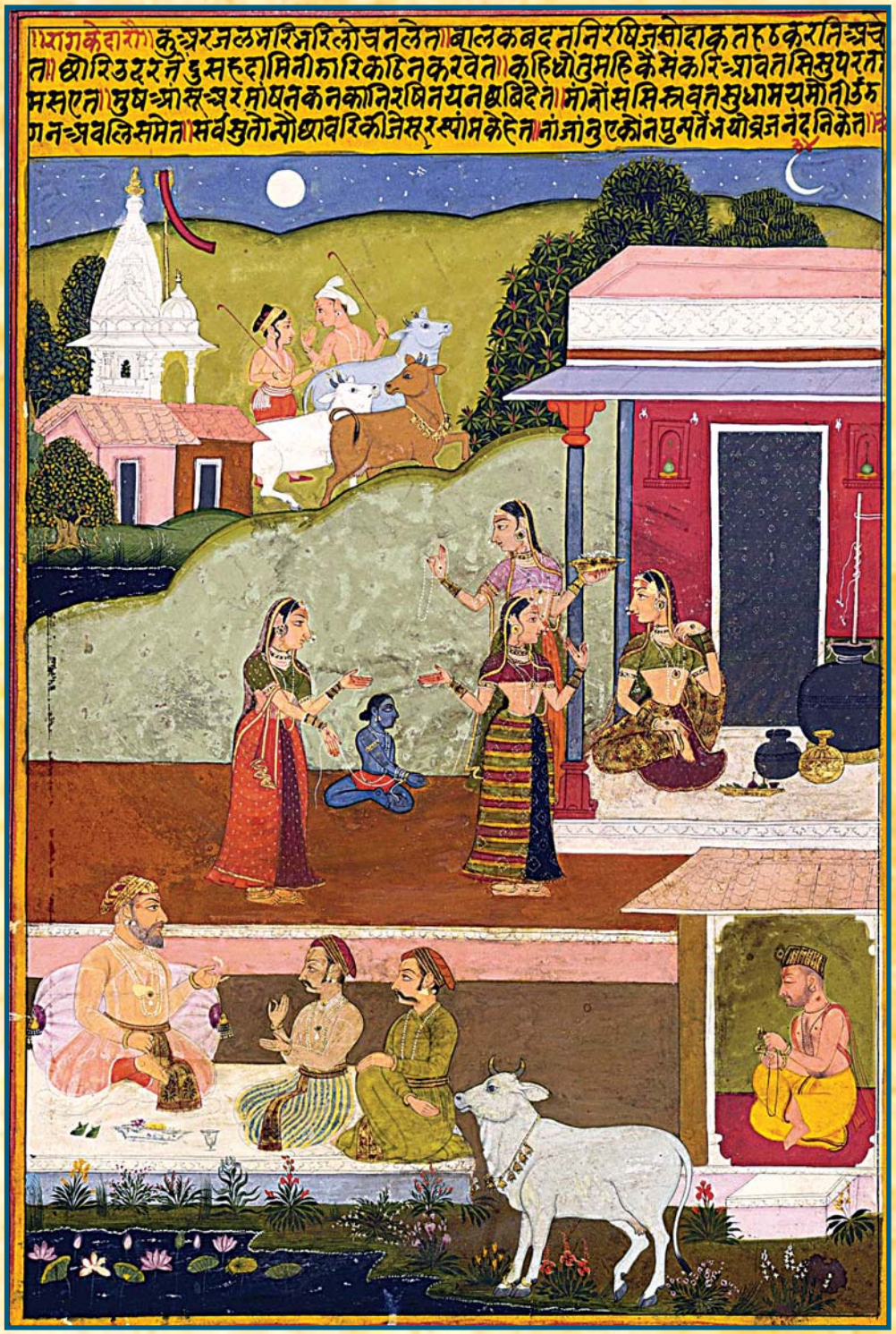

कृष्ण की बाल लीला - सूरसागर के पद पर आधारित अंकन - मेवाड़ शैली - अठारहवीं सदी।

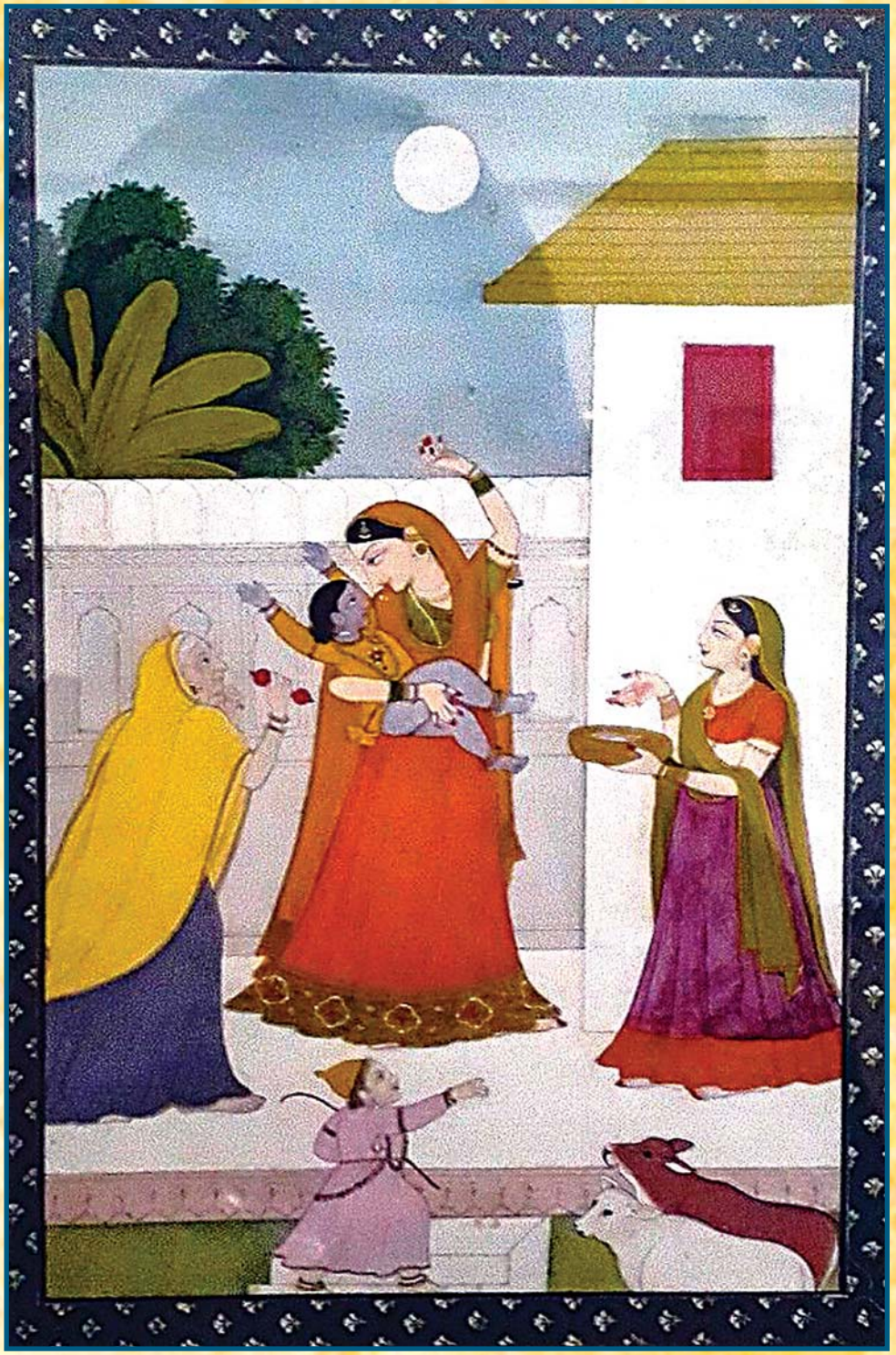

कृष्ण की बाल लीला - सूरसागर के पद पर आधारित अंकन - पहाड़ी शैली - अठारहवीं सदी।

कविप्रिया के दोहे पर आधारित अंकन - मेवाड़ शैली - अठारहवीं सदी, उत्तरार्द्ध।

बारामासा (कविप्रिया) - भादो मास पर आधारित अंकन - बूंदी शैली - अठारहवीं सदी।

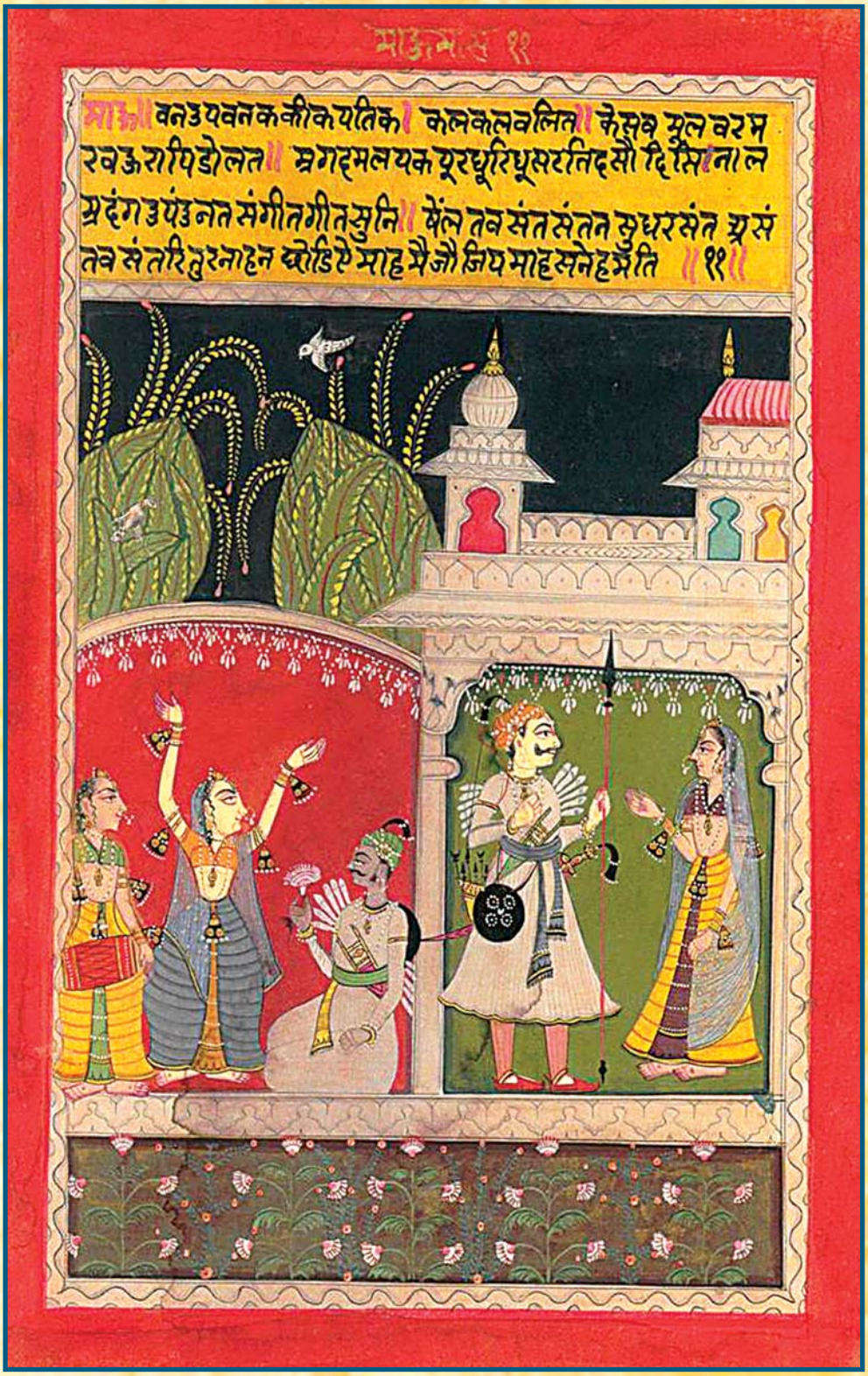

बारामासा (कविप्रिया) - माघ मास पर आधारित अंकन - बुन्देलखण्ड शैली - अठारहवीं सदी।

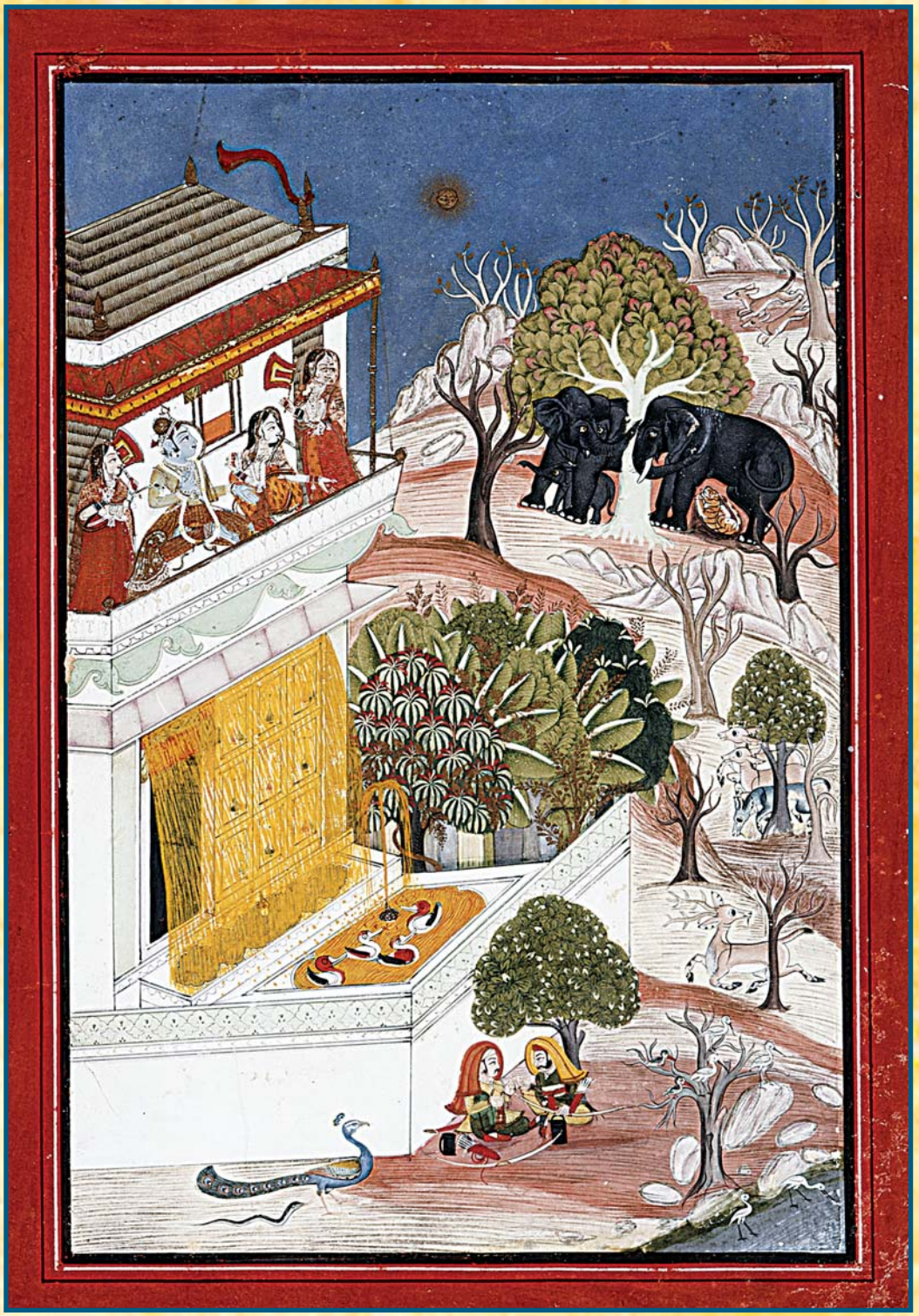

बारामासा (कविप्रिया) - जेठ मास पर आधारित अंकन - उनियारा शैली - अठारहवीं सदी।

रसिकप्रिया के कवित्त पर आधारित अंकन - मालवा शैली - सत्रहवीं सदी।

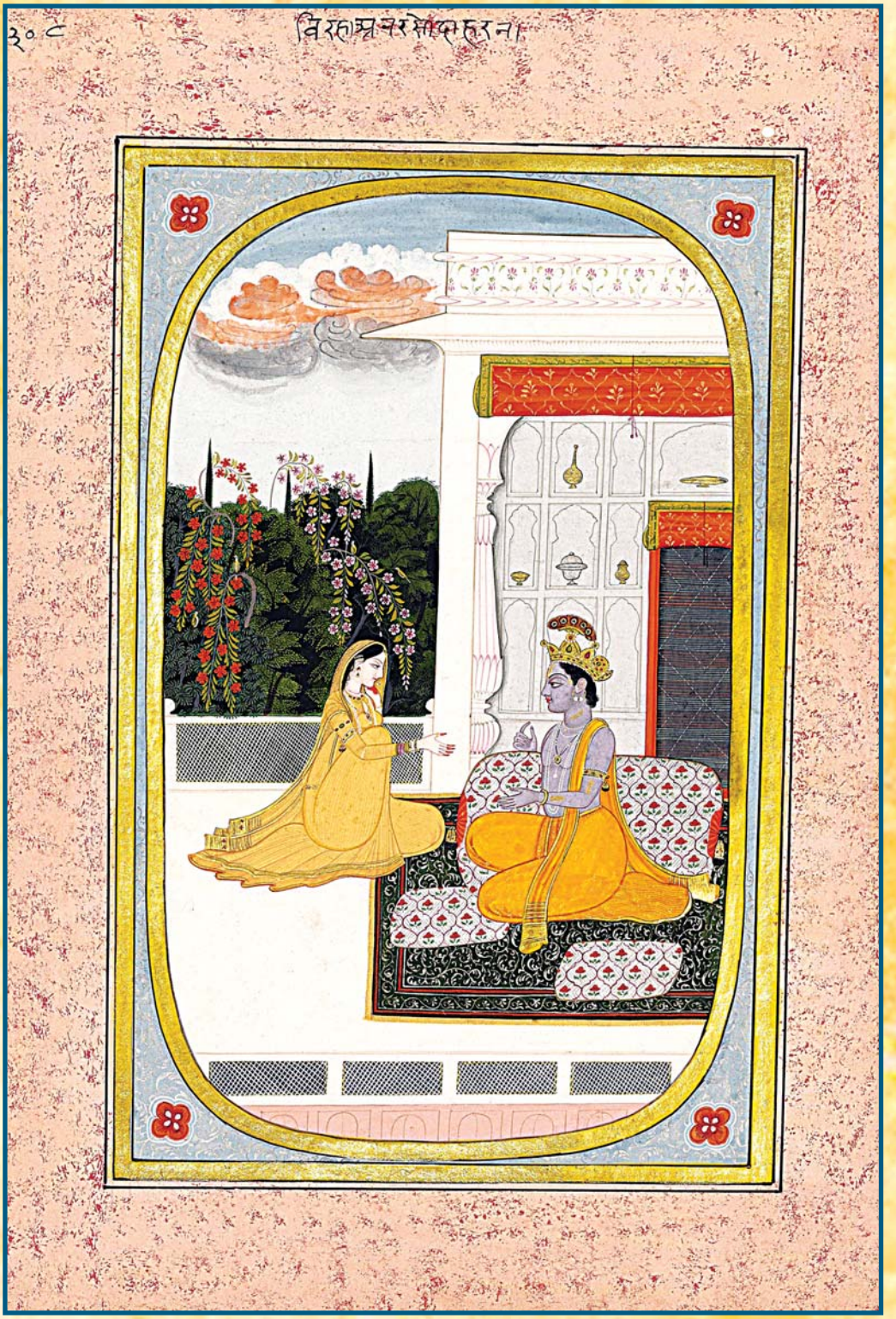

रसिकप्रिया के कवित्त पर आधारित अंकन - कांगड़ा शैली - अठारहवीं सदी।

रसिकप्रिया के कवित्त पर आधारित अंकन - अभिसारिका नायिका - मेवाड़ शैली - अठारहवीं सदी।

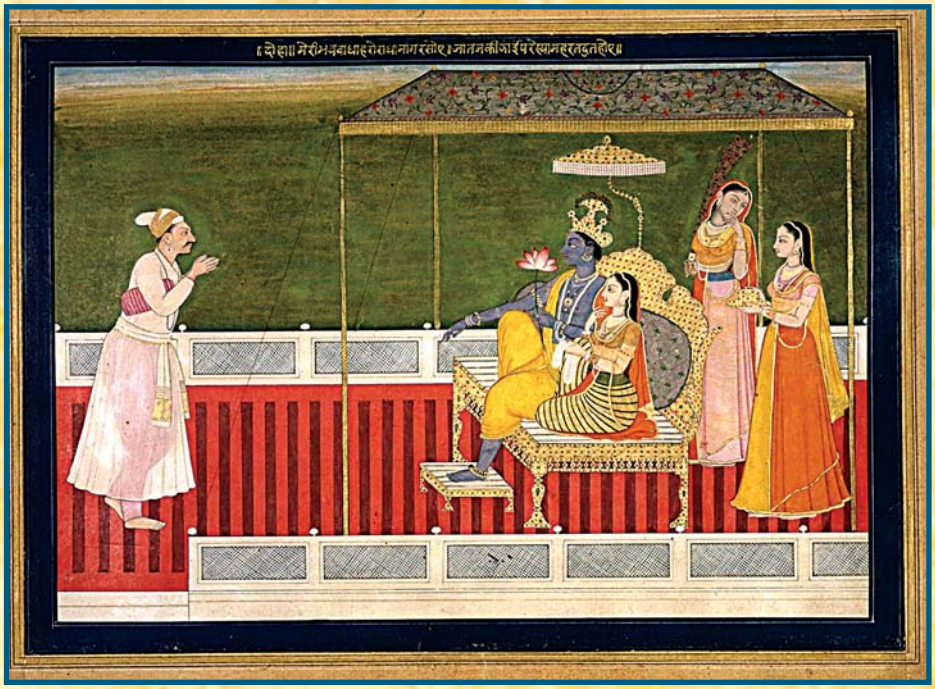

बिहारी सतसई के आरंभ के दोहे पर आधारित अंकन - कांगड़ा शैली - उन्नीसवीं सदी।

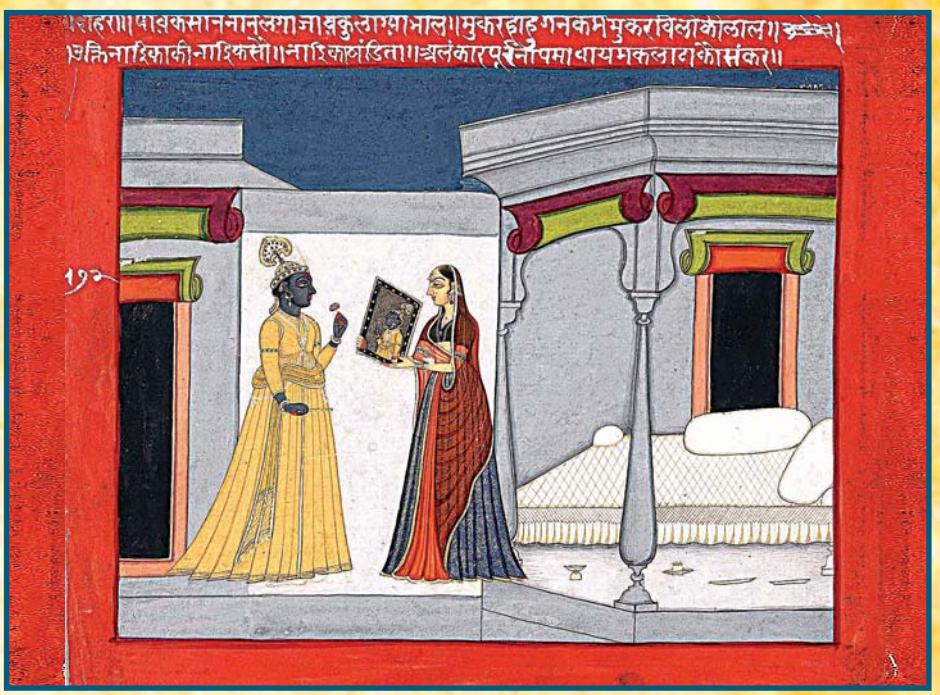

बिहारी सतसई के दोहे पर आधारित अंकन - दतिया शैली - उन्नीसवीं सदी।

बिहारी सतसई के दोहे पर आधारित अंकन - बसोहली शैली - अठारहवीं सदी।

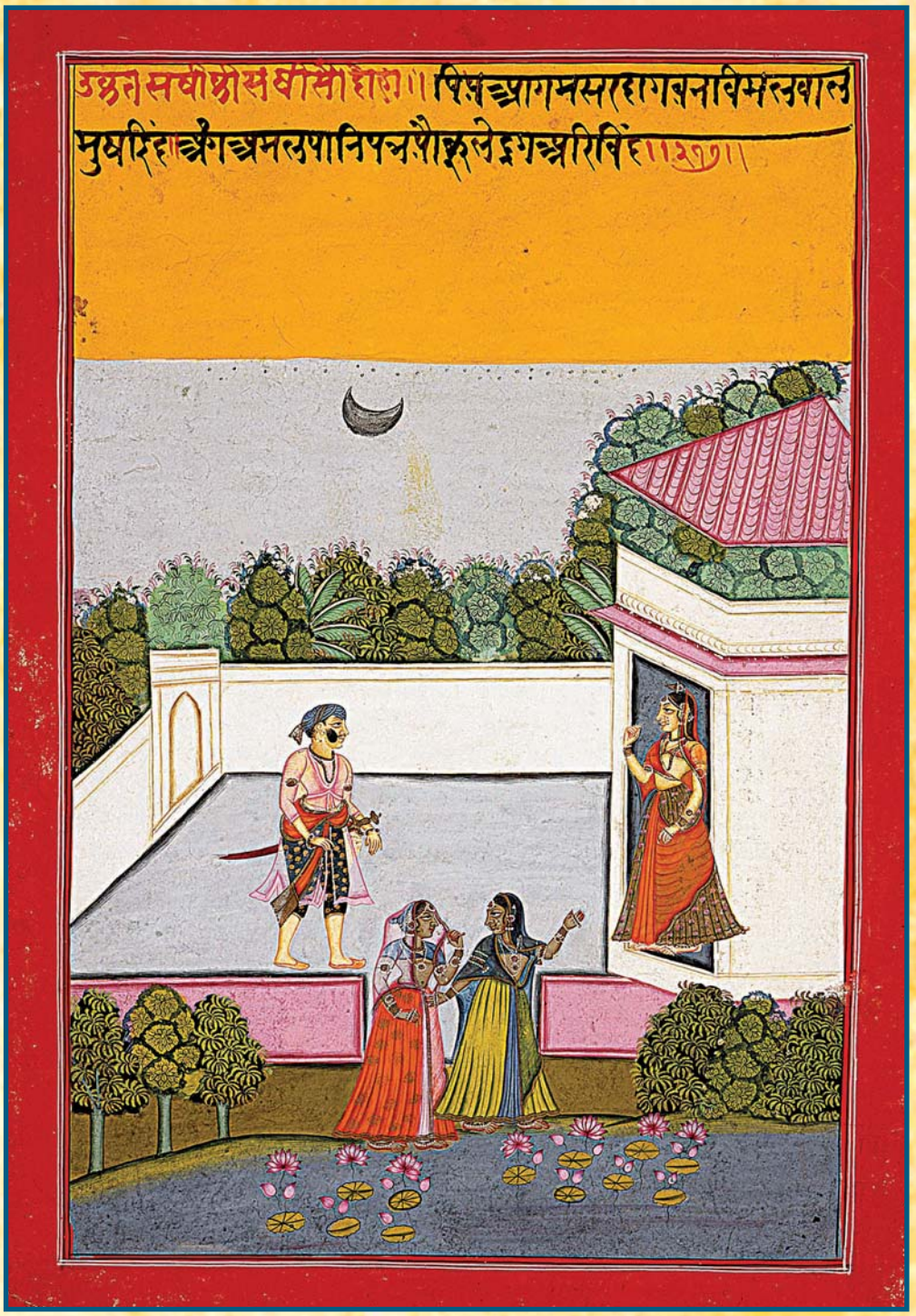

रसराज के दोहे पर आधारित अंकन - दतिया शैली - उन्नीसवीं सदी।

अष्टयाम के दोहे पर आधारित अंकन - दतिया शैली - उन्नीसवीं सदी।

नायिका भेद - अभिसारिका नायिका - पहाड़ी शैली - अठारहवीं सदी।

भाव व्यंजना - कमलमय राधा कृष्ण - कांगड़ा शैली - अठारहवीं सदी।

आलेख

लघुचित्र और साहित्य की परम्परा

डॉ. श्रीकृष्ण जुगनू

मानवमन की रुचि संपन्न कला है चित्रकर्म सामान्यत: इसे सजावटी कला के रूप में परिभाषित किया जाता रहा है। भित्तिचित्रों से लेकर कर्मकांडीय अनुष्ठानों तक रंगों के साथ चौक पूरने की परंपराएं रही हैं। वैदिक काल में यज्ञस्थली पर जहां यज्ञ होता, वहां आसपास की जाने वाली सजावट में चित्रकला की परिकल्पना मिलती है किंतु वह अल्पना का रूप था शैलाश्रयवासी मानव ने इससे पूर्व भित्तियों पर अपनी गतिविधियों का अंकन आरंभ कर दिया था। चित्र मूलत: रंग ही नहीं, रेखाओं के साथ स्वयप प्राप्त करता है। इसीलिए वह रेखांकन भी है तो रंगों का न्यास भी।

प्राचीन काल से ही चित्रों का सृजन शैलाश्रयों में मिलता है और वह भित्तिचित्र का स्वरूप रहा है ग्रंथ या पुस्तक चित्रण तब सामने आया होगा जबकि मानव ने वृक्षों के पल्लवों या छाल को अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति का आधार या माध्यम बनाया। हालांकि मिट्टी की तख्तियां, चमड़ा, कपड़ा आदि भी इसके उपकरण या माध्यम बने होंगे किंतु पत्रों को पुंजित करने और डोरी से बांधकर रखने के कारण उनका नाम ग्रंथ पड़ा। पुस्तक संज्ञा हाथ में रखने के कारण पड़ी है और यह शब्द विदेशी मूल का है जिसका भारतीयकरण 6वीं सदी के आसपास निश्चित रूप से हो गया था। (हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन : वासुदेवशरण अग्रवाल,)

ग्रंथ मूलत: लिखे जाते थे। विभिन्न लिपियों में किसी विषय वस्तु, मंत्र, गद्य या पद्य रूप में चित्रित किए जाते थे। प्राय: ताल पत्र भुर्जपत्र चपड़ा कपड़ा अथवा काष्ठफलक, तख्तियां ग्रंथ रचना के माध्यम रहे हैं। इन्हीं पर चित्रण का कार्य कब और क्यों आरंभ हुआ ? यह विचारणीय है। थेराथेरी गाथा, जिसका समय 400 ईसापूर्व से 300 ईस्वी रहा है, के संदर्भ के आधार पर यह माना जाता है कि तब देवचरित्रों को शृंखलाबद्ध रूप में चित्रित कर उपहार में दिए जाने की परंपरा थी थेरीगाथा में एक प्रसंग राजा बिंबसार (543-416 ईसापूर्व) का आया है, जिन्होंने तथागत बुद्ध की जीवनी के आधार पर चित्रों का सृजन करवाया था और वह चित्रपुंज (चित्राधार, एलबम) अपने मित्र राजा तिस्स को उपहार स्वरूप भेंट किया था।

लघु चित्रण :

ग्रंथों के लिए चित्र नि:संदेह रूप से लघु रूप में ही रहे होंगे। आधार के आकार से कुछ छोटे यह लघु चित्रण की तत्कालीन प्रवृति का बोधक भी है किंतु उस काल का कोई ग्रंथ या पुस्तक वर्तमान में हमें प्राप्त नहीं है। हो सकता है कि ये प्राचीन भारत के पुस्तकालयों में संग्रहित रही हों और आगजनी आदि के कारण नष्ट हो गई हों। भित्तिचित्रों के संदर्भ और साक्ष्य अवश्य पुराणों, शिल्पग्रंथों और शैलाश्रयों, गुहागृहों में प्राप्य है। अनेक गुफाओं में प्राचीन चित्रकला के अवशेष देखे जा सकते हैं। शिल्पादि के ग्रंथों में भित्तिचित्रण के संदर्भ ही अधिक मिलते हैं और लघु चित्रण के संदर्भ कम हैं। केवल चित्रों के भेदादि अवश्य इस संबंध में विचारणीय हैं।

लघुचित्र और लघुचित्रण :

लघु से सामान्य आशय है छोटा, स्वल्प, समास या अल्प प्रमाण है यह संस्कृत शब्द है और विशेषण माना गया है। **'लंघे: कु: नलोपश्च'** के रूप में इसका व्यवहार बताया गया है और इसका आशय कोशकारों ने हलका, जो भारी न हो बताया है। सुभाषितों में आया है **तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि च याचक:**। मेघदूत में बहुत छोटा के अर्थ में तिरस्करणीय भाव भी स्वीकारा गया है- **रिक्त: सर्वो भवति हि लघु: पूर्णता गौरवाय।** रघुवंश, पंचतंत्रादि में तुच्छ, अल्प, न्यून आदि शब्द भी इसके अभिप्राय के बोधक कहे गए हैं। शिशुपालवध में ह्रस्व, संक्षिप्त, सामासिक और मुद्राराक्षस में अधम, निंद्य, तिरस्करणीय का

सूचक कहा गया है। (संस्कृत हिंदी शब्दकोश : वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ 867)

इसी प्रकार चित्र का अर्थ है छवि या तस्वीर। किंतु कोशकारों ने उज्ज्वल, स्पष्ट, चितकबरा, धब्बेदार, शबलीकृत, दिलचस्प, रुचिकर, आश्चर्यजनक, अद्भुत, अजीब, रंग-बिरंगा, वर्ण रंग आदि पर्याय दिए हैं। तस्वीर, चित्रकारी, आलेखन जैसे पर्याय कालिदास के साहित्य में आए हैं- **चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्वयोगा।** (अभिज्ञान शाकुंतलम्, 2, 9) जिसको देखकर आश्चर्य हो, वह रचना चित्र के रूप में स्वीकारी गई है। (संस्कृत हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ 381)

उक्त दोनों ही शब्दों को मिलाकर लघुचित्र शब्द बनता है जिसका सामान्य आशय है छोटी छवि। मध्यकालीन चित्रित पांडुलिपियों में चित्र के लिए प्रकाश जैसा पर्याय भी काम में लिया गया है। मेवाड़ में चित्रित रसिकप्रिया की चित्रित पांडुलिपि में अनेक उपशीर्षकों में प्रकाश से आशय छवि या तस्वीर ही लिया गया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वे चित्र जो छोटे स्वरूप के हों और भित्ति की अपेक्षा जिनका निर्माण ग्रंथादि की विषय वस्तु के स्पष्टीकरण के

लिए किया गया हो, लघुचित्र की संज्ञा को सार्थक करते हैं। लघुचित्र को बनाने का कार्य लघुचित्रण कहा जाता है।

सचित्र ग्रंथ:

सचित्र ग्रंथों के प्राचीनतम प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। ऐसा माना जा सकता है कि ग्रंथों का चित्रण हुआ तो होगा किंतु वे कालावधियों या आगजनी, रखरखाव का उचित प्रबंध न होने से नष्ट हो गए होंगे। इसीलिए लिपिकार या चित्रकार अपने ग्रंथ के अंत में यह प्रतिज्ञावचन लिखता रहा है कि उसने बहुत परिश्रम से ग्रंथ को तैयार किया है, अतएव उस ग्रंथ की तैल से रक्षा की जाए, जलीय आर्द्रता से सुरक्षा की जाए, ठीले बंधनों से बचा जाए, मूर्ख के हाथ में नहीं दिया जाए- **तैलाद्रक्षेत् जलाद्रक्षेत् रक्षेत् शिथिलबंधनात्। मूर्खहस्ते न दातव्यमेवं वदति पुस्तकम्।।**

पाल शैली में चित्रित पोथियां :

सचित्र ग्रंथों के प्रमाण प्राय: बंगाल के पाल राजवंश के काल से प्राप्त होते हैं। तब भारत में बौद्धों के महायान का जोर था। हालांकि पदमपुराण में एक संदर्भ आता है जिसमें उल्लेख है कि केरल के महामात्य की सुपुत्री ने तीर्थों के चित्रों पर बनाई गई एक पुस्तक राजकुमारी हेम गोरांगी को दर्शनार्थ प्रस्तुत की थी। इस पर राजकुमारी के मन में उक्त तीर्थों की यात्रा का विचार जाग गया था। (भारतीय चित्रकला का इतिहास : अविनाशबहादुर वर्मा, पृष्ठ 112) यह संदर्भ 12वीं-13वीं सदी का माना जाता है और तब जैन समुदाय में संघों के तीर्थों की यात्रा की परंपरा बहुत जोर पकड़े हुए थी और उनमें तीर्थ वंदन, चैत्यवंदन जैसी परिपाटियां थीं।

इन पुस्तकों के नाम व परिचय इस प्रकार है-

1. प्रज्ञापारमिता: यह महायानी बौद्धग्रंथ है जिसकी रचना मूलत: संस्कृत में हुई है। साधना के रूप में प्रज्ञापारमिता के अनेक रूपों की चर्चा मिलती है। **यथा आर्यप्रज्ञापारमिता, शुक्लप्रज्ञापारमिता, कनकवर्ण, पीतवर्ण संक्षिप्त, सितप्रज्ञापारमिता, प्रज्ञापारमिता स्तुति आदि**। यह विवरण साधनमाला में भी आया है। इसमें स्वरूपों का जो विवरण है, उसके आधार पर मूर्ति और चित्रों का निर्माण सुगम हुआ लगता है।

2. साधनमाला : यह बौद्ध साधनाओं का प्रतिनिधि ग्रंथ है। इसमें तांत्रिक अनुष्ठानों का विवरण है और इसको समय-समय पर अनेक संपादकों ने संपादित किया है। यह बौद्धो की वज्रयान शाखा का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें बौद्ध मत में स्वीकार्य विभिन्न देवी-देवताओं की साधनाओं और मुद्राओं का विवरण है। इसमें ध्यानी बुद्ध की मान्यताएं भी हैं।

3. पंचशिखा : यह भी बौद्धों की महायान शाखा का ग्रंथ है। इसका पाल शासनकाल में सचित्र लेखन किया गया है।

4. गंडव्यूह : संस्कृत में निबद्ध यह बौद्धग्रंथ है और महायानी संप्रदाय की विविध मान्यताओं पर आधारित है। इसका चीनी भाषा में अनुवाद 420 ईस्वी में हुआ है।

5. करनदेवगुहा : बौद्धधर्म की महायानी शाखा का प्रतिनिधित्व करने वाला विवरण जिसके चित्रों में गुहा शिल्प की स्पष्ट छाया दिखाई देती है।

उपर्युक्त ग्रंथों में साधनमाला को बौद्धों का तंत्र ग्रंथ माना जाता है। मध्यकालीन वास्तु और शिल्प ग्रंथों में इसका बड़ा महत्व रहा है और इसकी गणना अपराजितपृच्छा, निर्वाणकलिका के साथ की जाती है जिनका मूर्तिकला के विकास में अहम योगदान रहा है।

पाल शासनकाल के पोथी चित्र अति लघुकाय हैंइसमें धर्मप्रधान चित्र ही मिलते हैं, विशेषकर बुद्ध के। हालांकि इन चित्रों की लिखाई बहुत निर्बल है तथापि अजंता की शैली का रिक्थ देखा जा सकता है। चेहरे मुख्य रूप से सवाचश्म के मिलते हैं जो तत्कालीन चित्रों की विशेषता भी रहे हैं और चेहरे एक ही कैंडे के बनाए गए हैं। मानवाकृतियों की नाकों को लंबाकार बनाया गया है और वे परले गाल से आगे तक निकाले गए हैं। आंखें बड़ी-बड़ी और पास-पास बनाई गई हैं। बनाई गई आकृतियों में पांवों और हाथों की मुद्राओं में झकड़न उल्लेखनीय है इन चित्रों की कतिपय विशेषताएं इस प्रकार बताई गई हैं -

1. पाल पोथी चित्रण में उकेरी गई आकृतियां अजंता की अभिजातीय परंपरा की प्रतिनिधित्व करने वाली हैं।
2. इन चित्रों में रेखाएं प्रवाहपूर्ण हैं।
3. रेखाओं का प्रयोग इस तरह किया गया है कि वे ओज और गरिमा की परिपूर्णता की द्युति लिए स्पष्ट है।
4. ये चित्र भित्तिचित्रों की परंपरा का अनुसरण करते हैं और भित्तिचित्रों के ही छोटे स्वरूप प्रतीत होते हैं। (भारतीय मूर्तिकला : सी. शिवराममूर्ति, पृष्ठ 74)

रंगादि के आधार पर इन ग्रंथों में मिलने वाले चित्रों में लाल रंग के लिए सिंदूर, हिंगुल व महावर का प्रयोग दिखाई देता है। नीला रंग लाजावर्ती या नील का प्रयोग हुआ है। सफेदी के लिए प्राय: खड़िया का उपयोग किया गया है। काला रंग काजल से प्राप्त किया गया है। इसी प्रकार इन मूल रंगों के साथ ही इनके मिश्रण से तैयार रंगों का प्रयोग भी इनमें देखने में आता है जो गुलाबी, बैंगनी और कपोत वर्ण है। (भारत की चित्रकला : राय कृष्णदास, पृष्ठ 39-40)।

अपभ्रंश शैली के चित्रित ग्रंथ

अपभ्रंश शैली को पूर्व में जैन शैली, गुजराती शैली या पश्चिम भारतीय शैली के नाम से भी जाना गया था किंतु अनेक तर्कों के आधार पर राय कृष्णदास और डॉ. मोतीचंद्र ने अपभ्रंश शैली नाम ही उपयुक्त स्वीकारा है। उनका मत है कि यह शैली अपना निजत्व खो चुकी थी और अजंता जैसी महान शैली के परवर्ती विकृत रूप को अंगीकार कर चुकी थी, इसलिए इसके लिए अपभ्रंश शब्द ही ऐसी संज्ञा है जिसके द्वारा उस समय की विकृति को प्राप्त शैलियों अथवा बदलाव को स्वीकार रही कला प्रवृतियों का अर्थ ध्वनित हो सकता है।

इस शैली में चित्रित प्रमुख ग्रंथों का परिचय इस प्रकार है -

कल्पसूत्र : कल्पसूत्र का जैन धर्म के आगमों में महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें तीर्थंकर के जन्म के समय के शकुन और अंत:पुरों के अलंकरणों का बहुत सुंदर विवरण मिलता है। इस ग्रंथ की अनेक प्रतिलिपियां मिली हैं इसका विशेष रूप से वाचन जैन संतों के प्रत्येक चातुर्मास में होता है और महारानियों के सपनों आदि को प्रत्यक्ष दिखाने का आयोजन होता है। अत: इसका महत्व भी अपेक्षाकृत अधिक रहा है।

राष्ट्रीय संग्रहालय में मौजूद 1417 ईस्वी की कल्पसूत्र प्रति में एक पत्र पर भगवान् महावीर का वैराग्य चित्र समय और कल्पनात्मकता की दृष्टि से बहुत श्लाघनीय व सुंदर बना हुआ हैं। यह प्रारंभिक काल रचना होते हुए भी इसके चित्रों में अनेक परंपरागत विशेषताएं स्पष्टत: विकसित हो गई है, जैसे- नुकीली नासिका, दोहरी ठोड़ी, मुद्राएं तथा काष्ठ पुत्तलिका जैसा रूप इसी प्रकार

सन् 1427 ईस्वी में रचित कल्पसूत्र की एक प्रति लंदन के इंडिया ऑफिस पुस्तकालय में सुरक्षित है यह अत्यन्त सम्पन्न रूप से अलंकृत और सुवर्ण व चांदी मिली स्याही से लिखी गई है। इसमें 46 चित्र हैं और सुल्तानी रंग के प्रभाव से हाशियों पर भी गज और हंस की सज्जा की गई है। इसके अतिरिक्त 1216 ईस्वी के कल्पसूत्र की प्रति जैसलमेर के भंडार में सुरक्षित है।

वसंत विलास : यह मूलत: जन्मपत्री के रूप में चित्रित काव्य ग्रंथ है। इसको चित्रित पट ही अधिक कहना उपयुक्त है किंतु इसमें चूंकि पूरी ही रचना आ जाती है, ऐसे में वह ग्रंथ भी स्वीकार किया जा सकता है। यह 1451 ईस्वी की रचना है और एन. सी. मेहता को 1924 ईस्वी में गुजरात में प्राप्त हुई थी। यह कुंडली आकार में कपड़े पर लिखी गई है। इस पट्टी की लंबाई 436 इंच और चौड़ाई कुल 9.5 इंच की है। इसके बायीं ओर एक इंच चौड़ा हाशिया बनाया गया है और दाहिनी ओर 3/4 इंच चौड़ा हाशिया रखा गया है। यह दृश्यचित्र के नवीन दृष्टिकोण को अंगीकार करने का संकेत देता है इसमें वसंत ऋतु के आगमन और विशेष रूप से फाल्गुन ऋतु का विवरण है। कालिदास की ऋतुसंहार रचना का यह देशज रूप इस अर्थ में है कि इसमें पति-पत्नी का प्रसंग चित्रित है।

बालगोपाल स्तुति : यह वैष्णव धर्म से संबंधित स्तुतिमूलक लघु ग्रंथ है। श्री गांगुली ने 1929 ईस्वी में इस ग्रंथ की जानकारी दी और बताया इसके चित्र पश्चिम भारतीय शैली का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। इस ग्रंथ की प्रतियां बोस्टन संग्रहालय और गुजरात के भोगीलाल संग्रह में विद्यमान हैं। सोलहवीं सदी के बालगोपाल स्तुति ग्रंथ से नवीन चित्रण परंपरा का ज्ञान होता है जो बाद में राजस्थानी चित्रशैली का आधार बनी।

गीत गोविंद : गीत गोविंद की रचना 1148 ईस्वी में बंगाल के सेन शासक लक्ष्मणसेन के शासनकाल में जयदेव नामक कवि ने की और इस पर अनेकानेक चित्र कृतियों का निर्माण हुआ है। इनमें मेवाड़ में चित्रित प्रतिलिपियां महाराणा कुंभा के काल की है। यह 1456 ईस्वी की है और गोगुंदा नामक गांव में चित्रित हुई। यह अपभ्रंश शैली की है और सबसे अधिक प्राचीन मानी जाती है। इसके अब केवल तीन ही चित्र प्राप्य हैं। पावागढ़ के बालशंकर भट्ट अग्निहोत्री, अहमदाबाद स्थित वर्नाक्यूलर सोसायटी और कांकरोली के महाराज ब्रजभूषणलाल गोस्वामी के संग्रह में भी गीतगोविंद की चित्रित प्रतियां हैं जो कालांतर की है। नेशनल म्यूजियम, नई दिल्ली में 16वीं सदी में जावर में चित्रित चित्र और राज प्रासाद संग्रहालय, जयपुर में 17 चित्र सुरक्षित हैं। जावर की मातृका की पुष्पिका में लिखा है = संवत 1650 फागुण शुक्ल सप्तमी, शुक्रवार, ग्राम जाउर मध्ये भक्तजन पठनार्थ जोशी कीरतदास चतरै चर्ची। इस प्रकार यह पांडुलिपि 1596 ईस्वी की है जो कि महाराणा प्रताप का काल था आसाम, बंगाल, ओडिशा आदि में भी अलग-अलग कालों की मातृकाएं मिली हैं किंतु इनमें अपभ्रंश शैली की पांडुलिपि महत्वपूर्ण है जिसकी रचना का श्रेय मेवाड़ को है। यहां 1600 ईस्वी के आसपास और 1640 ईस्वी में भी गीत गोविंद का चित्रण हुआ है किंतु इन शैलियों में अंतर स्पष्ट झलकता है। (आहाड़ संग्रहालय से प्रकाशित गीत गोविंद प्रदर्शनी पत्रक, 18 मई 2011 ई.)

चौर पंचाशिका : यह 11 वीं सदी के कश्मीरी कवि विल्हण की रचना है जिसमें विल्हण ने अपनी प्रेयसी चंपावती के लिए 50 श्लोकों को लिखा है। इस प्रकार यह कवि प्रेमाख्यान है और इस पर एक चित्रित ग्रंथ मेवाड़ में तैयार हुआ जो वर्तमान में अहमदाबाद के एन. सी. मेहता के संग्रह में है।

दुर्गा सप्तशती : यह चित्रित पोथी मार्कण्डेयपुराण में आए देवी माहात्म्य पर आधारित है और यह बड़ौदा के कला समीक्षक मंजुलाल मजूमदार के संग्रह में संरक्षित रही है। हालांकि सप्तशती पर कालांतर में अनेकत्र चित्रण हुआ है। मार्कण्डेयपुराण का भी चित्रण हुआ है।

चित्रित जैन ग्रंथ :

जैन ग्रंथों में कल्पसूत्र और कालकाचार्यकथा ताड़पत्र पर अंकित होने वाले ग्रंथों में मुख्य हैं और उनके आधार पर निर्मित पार्श्वनाथ, नेमिनाथ और ऋषभनाथ तथा अन्य बीस तीर्थंकर-महात्माओं के दृष्टांत चित्र जैन चित्रकला के सर्वाधिक प्राचीन उदाहरण माने जाते हैं। यह चित्रकला भारतीय हस्तलिपि चित्रों की कला कही जाती है और जैन ग्रंथों पर बने चित्रों के फलस्वरूप इस शैली का नाम जैन शैली रखा गया था। इसका आरंभ गुजरात में श्वेतांबर कलम के नाम से माना जाता है(भारतीय चित्रकला : संपादक जयकिशन सादानी, कोलकाता में प्रकाशित पुष्पलता शर्मा का लेख, पृष्ठ 25)।

कालकाचार्य कथा : यह ग्रंथ एक लोकप्रिय जैन ग्रंथ है जिसमें वर्णन आया है कि जैन मुनि कालक ने उज्जयिनी के शासक के दर्प को भंग करने के लिए सीस्तान के शक शासक की सहायता प्राप्त की थी। इस ग्रंथ की अनेक चित्रित प्रतियां प्राप्त होती हैं जो 14वीं-15वीं सदी की हैं और पश्चिमी भारतीय शैली की उदाहरण हैं। एक ताड़पत्रीय प्रतिलिपि 1279 ईस्वी में तैयार हुई जो वर्तमान में पाटण में संग्रहित है। इसमें यक्ष और लक्ष्मीदेवी के चित्र हैं(भारतीय चित्रकला : सी. शिवराममूर्ति, पृष्ठ 89 एवं भारतीय चित्रकला, कोलकाता, पृष्ठ 28)।

सुबाहुकथा : यह चित्रित ग्रंथ 1288 ईस्वी का है। इस समय तक चित्रकला में एक नई विशेषता भी उभरती दिखाई देती है। अब तक एक ही देवी-देवता के चित्र बनाए जाते थे जो कभी अपने सेवकों के साथ अंकित किए जाते थे अथवा अकेले ही बनाए जाते थे। उनकी अपेक्षा अब कहीं-कहीं तीर्थंकरों के जीवनचरितों को भी दृश्यांकित किया जाने लगा था। सुबाहुचरित में 23 चित्र अंकित किए गए हैं और इसमें चट्टानों, वृक्षों और अन्यान्य पशुओं की आकृतियों के उपयोग से दृश्य चित्रों की सर्जना की गई है। इसमें नेमिनाथ के जीवन की घटनाओं को चित्रित किया गया है और सुबाहु मुनि को आकर्षित करने वाली स्त्रियों को विशेष रूप आकर्षक बनाया गया है। तेरहवीं सदी के अंतिम दशकों की संग्रहणी सूत्र की चित्रित पटलियां भी मिली हैं जो वर्तमान में मुनि जिन विजय के संग्रह में संग्रहित बताई गई हैं। (भारतीय चित्रकला, कोलकाता, पृष्ठ 27)।

ज्ञानसूत्र : यह जैन ग्रंथ खंभात स्थित शांतिनाथ मंदिर के ग्रंथ भंडार में विद्यमान है और इसमें केवल दो ही चित्र हैं। यह पांडुलिपि 1172 ईस्वी की आरंभिक प्रति होने से उल्लेखनीय मानी जाती है। इसके एक चित्र में स्थानक सरस्वती की आकर्षक आकृति अंकित है। (भारतीय चित्रकला, कोलकाता पृष्ठ 27)।

अंग सूत्र : इस सूत्र ग्रंथ की तीन मातृकाएं खंभात के शांतिनाथ जैन मंदिर के पोथी भंडार में संग्रहित है।

दशवैकालिक सूत्र लघुवृत्ति : इस ग्रंथ की टीका की एक सचित्र प्रति उक्त शांतिनाथ जैन भंडार, खंभात में सुरक्षित है। यह प्रति 1143 ईस्वी की हैइसमें केवल एक ही चित्र है।

ओघनियुक्तिादि सप्त ग्रंथ : बड़ौदा के पास द्वाणी के ग्रंथ भंडार में संग्रहित सात

ग्रंथों में जिन शासन की सोलह देवियों का चित्रण है जिनमें से 1161 ईस्वी में चित्रित 'ओघनिर्युक्ति वृत्ति' की विद्या देवियां प्रमुख हैं। सरस्वती या श्रुतदेवता, लक्ष्मी या पद्मावती, अंबिका, चकेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, मानवी, ज्वालिनी, माहवी, गांधारी आदि देवियां इनमें प्रमुख हैं ये चित्र कलात्मक दृष्टि से बहुत उत्तम है। कुछ विद्वानों का विचार है कि विद्यादेवियों के चित्र 13वीं सदी उत्तरार्ध के मान्य हैं। ये अभिधान चिंतामणि, जिनसेन के हरिवंश, अनुयोगद्वारसूत्र और मूर्तिकला संबंधी अपराजितपृच्छा, आचार दिनकर, देवतामूर्तिप्रकरण आदि ग्रंथों में भी स्मरित है। (भारतीय पुरातत्व-मुनि जिनविजय अभिनंदन ग्रंथ : संपादक : आरएस डांडेकर, हरिवल्लभ भायाणी आदि, जयपुर, 1971 ई., में प्रकाशित उमाकांत पी. शाह लिखित : जैन आइकनोग्राफी : ए ब्रिफ सर्वे, पृष्ठ 184-218 एवं भारतीय चित्रकला, पृष्ठ 27

महावीर चरित्र : यह ग्रंथ 1237 ईस्वी का है और इसमें बौद्ध भिक्षुओं, राजाओं और श्रीदेवी के चित्र विशेष रूप से दर्शनीय बने हुए हैं। जैसलमेर के शाह ज्ञान भंडार में विद्यमान चौदहवीं सदी के महावीर चरित्र का भी अपना महत्व है। यहां की शारदाशतक प्रकरण वृत्ति भी उल्लेखनीय है।

त्रषष्ठिशलाका पुरुष चरित : मुनि हेमचंद्र कृत इस ग्रंथ का चित्रांकन 1242 ईस्वी का है।

नेमिनाथ चरित : शांतिनाथ जैन भंडार में इस ग्रंथ की जो मातृका है, वह 1241 ईस्वी की है। इसमें चार चित्र बनाए गए हैं जिनमें से एक चित्र पद्म आसन पर विराजित अंबिका देवी का है जो बहुत आकर्षक है। दूसरा चित्र नेमिनाथ का है और वह दरबारी चित्र जैसा बन पड़ा है। इन चित्रों से विदित होता है कि इस अवधि तक जैन ताड़पत्रीय चित्रों की शैली अपनी कुछ अतिशय रीति बद्धताओं के साथ पूर्णरूपेण विकास पा चुकी थी जो आगामी अनेक सदियों तक चलती रहीं(भारतीय चित्रकला, वही, पृष्ठ 27)

कथारत्नसागर : यह कथा सरित्सागर की शैली में रचा गया जैन ग्रंथ है। इसकी चित्रित मातृका में कथा प्रसंगानुसार अनेक चित्र यथास्थल उपलब्ध है। यह 1256 ईस्वी में रचित इस ग्रंथ में पार्श्वनाथ, श्रावकाकें और श्राविकाओं के चित्र बनाए गए हैं। यह ग्रंथ पाटण के संघवीपाड़ा स्थित ग्रंथ भंडार की थाती है।

संग्रहणीय सूत्र : यह मूलत: चित्रित पटलियों के रूप में हैं। इसको तेरहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में चित्रित किया गया है। वर्तमान में अहमदाबाद के एलडी इंस्टीट्यूट के मुनि जिनविजय के संग्रह के अंतर्गत सुरक्षित इसकी एक पांडुलिपि 1583 ईस्वी की है। इसके लिए अंधारे का मत है कि उसके चित्रों में मुगल चित्रकला के प्रमुख गुण पाए गए हैं जिनसे पहले जैन चित्रकार इनसे अनभिज्ञ थे। इसके अतिरिक्त उत्तराध्ययन सूत्र का चित्रण भी उल्लेखनीय है। यह 1591 ईस्वी में मेवाड़ में चित्रित है और बड़ौदा के म्यूजियम की चित्रदीर्घा में संग्रहित है।

श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र चूर्णी : इसका प्राकृत में नाम 'सावग पाडिकम्मण सुत्त चूर्णी है यह श्रावकों के द्वारा नित्य प्रतिक्रमण कर्म के संबंध में लिखा गया ग्रंथ है। इसकी मातृका 1390 ईस्वी की है और बोस्टन के फाइन आर्ट्स के संग्रहालय में विद्यमान है। इसी ग्रंथ की एक प्रतिलिपि आघाटदुर्ग या आहाड़ में 1261 ईस्वी में लिपिकृत हुई है। यह गुहिल नरेश तेजसिंह (1255-1263 ईस्वी) के समय चित्रित हुई है। इसकी पुष्पिका में लिखा है।

पंचतीर्थपट : यह ग्रंथ वर्तमान में अनुपलब्ध है। यह पाटण के शांतिनाथ ग्रंथ भंडार में लंबे समय उपलब्ध था। यह रेशमी कपड़े पर चित्रित पट बताया जाता है और प्राचीन विज्ञप्ति पत्र रूप में हैं। अत: इसका ग्रंथ रूप होना संदिग्ध है। (भारतीय चित्रकला, कोलकाता, पृष्ठ 30)।

ज्ञानार्णवादि अन्य ग्रंथ :

इसके अतिरिक्त अन्य जैन ग्रंथ भी मिलते हैं जिनमें ज्ञानार्णव नामक ग्रंथ दिगंबर जैन संप्रदाय से संबंधित माना गया है। इसकी रचना मेवाड़ के महाराणा मोकल के शासनकाल (1420-1433 ईस्वी) में, 1427 ईस्वी में एकलिंगजी के पास स्थित देवकुलपाटण या देलवाड़ा गांव के नेमिनाथ देवालय में यति चित्रकारों द्वारा की गई। यह दलपतभाई ज्ञानभंडार, अहमदाबाद में सुरक्षित है।

सुपार्श्वनाथ चरित्रम् : यह ग्रंथ सुपासनाथचरियम् के प्राकृत नाम से भी जाना जाता है। इस प्राकृत ग्रंथ के चित्रण का कार्य मेवाड़ में वि. सं. 1479-80 तद्नुसार 1422-23 ईस्वी में हुआ। यह ग्रंथ वर्तमान में पाटण के हेमचंद्र ज्ञान मंदिर में सुरक्षित है जो कि तपागच्छीय जैन भंडार है। इसमें कुल 433 पत्र हैं जिसमें से 37 पृष्ठों पर चित्रों का निर्माण किया गया है।

मुगलकालीन चित्रित ग्रंथ :

सल्तनतकाल के बाद, मुगलकाल चित्रकला की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। यद्यपि बाबर के चित्रकला प्रेम के उदारण मिलते हैं और हुमायूं कालीन चित्रकला गतिविधियों के संबंध में भी विचार मिलते हैं किंतु अकबर पहला मुगल सम्राट था जिसने चित्रकला में विशेष दिलचस्पी दिखाई और मंगोल तथा तिमूरिद कला की परंपरा में ही सही, अनेकानेक पांडुलिपियों का चित्रण करवाया। ये एकाधिक विषयों पर आधारित है और प्राय: फारसी भाषा में लिखी गई तथा उनमें चित्रों की रचना की गई है। अबुल फज़ल ने अकबर के चित्रकला प्रेम के बारे में अनेक स्थलों पर विवरण दिया है।

हम्ज़ानामा : मुगलशैली का प्रारंभिक प्रतिनिधित्व करने वाले हम्ज़ानामा के चित्र बड़े आकार में बनाए गए हैं। यह आकार- 67.5 गुणा 50 सेंटीमीटर है। इसी कारण इन चित्रों के उपयोग आदि को लेकर विद्वान एकराय नहीं हैं आकार के लिहाज से ये चित्र भारत में चित्रित होने वाली पांडुलिपियों में सबसे बड़े माने गए हैं। इसके बाद भी इस शैली में इस आकार के चित्र नहीं मिलते। ये कपड़े पर आरोपित कागज़ पर बनाए गए हैं। डागलेस बैरेट और बेसिल ग्रे का विचार है कि हम्ज़ानामा के चित्रों का आकार तंबुओं को सुसज्जित करने के लिए उपयोगी चित्रपटों की परिपाटी के आसपास है।

रम्ज़नामा : कौरव-पांडवों के वृत्तांत के रूप में प्रसिद्ध महाभारत महाकाव्य का यह फारसी रूपांतरण है। बदायूंनी का मत है कि 1582-83 ईस्वी में जब महाभारत का फारसी में अनुवाद हो गया तब रम्ज़नामा संज्ञा से पोथी चित्रण हुआ इसकी कई प्रतियां तैयार की गईं और कुलीनों को इसकी प्रतियां लेने का शाही आदेश जारी हुआ। (मुंतखाबुत तवारीख : अनुवाद, पृष्ठ 331)।

रामायण : आर्ष रामायण की कथा के आधार पर इस फारसी ग्रंथ का चित्रण हुआ है इसकी प्रतिलिपि सवाई मानसिंह संग्रहालय, जयपुर में सुरक्षित है और यह प्रतिलिपि 1587 ईस्वी की है।

तूतीनामा : यह चित्रित ग्रंथ क्वीवलैंड के म्यूजियम ऑफ आर्ट में संग्रहित है। इसमें उस काल के कुछ चित्रकारों के नाम भी अंकित होने से महत्वपूर्ण मानी गई है। हालांकि कार्ल खंडालेवाला, राय कृष्णदास आदि इस पांडुलिपि को शाही चित्रशाला की देन नहीं मानते किंतु एस. सी. वेल्स, माईलो सी. बीच

आदि विदेशी कला समीक्षक इसे मुगल चित्रशाला ही प्रस्तुति मानते हैं।

ओडिशा के चित्रित ग्रंथ :

ओडिशा में ताड़पत्रों की पोथियां पाल शासनकालीन ग्रंथ चित्रण से प्रेरित हैं जयदेव के 'गीत गोविंद' ने सहज रूप में उल्लासपूर्ण विषय को सरस प्रस्तुतीकरण हेतु उपलब्ध करवाया यह परंपरा यहां 18वीं शताब्दी तक रही। इसमें राधा व श्रीकृष्ण की माधुर्यलीला चित्रण का आधार बनी है। इसके एक चित्र में 'जितबिसशकले मृदुभुज युगले करतल नलिनी दले। मरकत वलयं मधुकर निचयं वितरति हिमशीतले। रमते यमुना पुलिनवने विजयी मुरारिरधुना।' (गीतगोविंद 7, 4) पद का अंकन ओडिशा की शैली का जीवंत प्रतिनिधित्व करता है।

इसी प्रकार रामायण का चित्रण भी ओडिशा शैली में हुआ है। हालांकि उसके जो चित्र मिले हैं, वे अलग-अलग प्रसंगों के हैं किंतु उनमें गीत गोविंद की तरह ही कोणात्मक अंकन और कुछ सीमा तक परवर्ती विजयनगर शैली का प्रभाव ग्रहण किया गया है। ये अभी राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में संरक्षित हैं(भारतीय मूर्तिकला : सी. शिवराममूर्ति, पृष्ठ 75)

कलाओं के संबंध और मालती माधव : एक संक्षिप्त विमर्श

कला के कितने रूप हैं! जब जिस काल में इस पर विचार हुआ, तब तब जो जो रूप प्रचलन में थे, उनको स्वीकारा गया। अनेक बार यह भी माना गया कि कलाएं अनेक रूपों में परस्पर जुड़ी होती हैं। बेटी बेटे वाले आपसी रिश्तेदार की तरह उनका नाता चिरायु होता है। प्रबंध कोश और वस्तु रत्नकोश में जिन कलाओं को सूचीकृत किया गया है, उनको रत्नमाला के टीकाकार महादेव दैवज्ञ **'एतै परस्परा संबद्धाः'** कहा है। ललित विस्तर और हरिवंश के टीकाकार ने भी लिपि से लेकर कलाओं को एक दूसरे से जुड़ा बताया है। यह एक अनुशासन है, आपसी तालमेल है। किसी कला को दूसरी कला द्वारा संजीवनी देने जैसा वृक्ष वल्लरी संबंध है।

कलाओं का संरक्षण और निर्माण विधियों के साथ ही ज्ञानार्जन की परम्परा को बनाए रखने के लिए अभिव्यक्ति आवश्यक है और लेखन तथा चित्रण इसके मुख्य आधार है। चित्रकारों ने कलाओं को ही नहीं,

भाषाबद्ध साहित्यिक कृतियों को भी चित्रित करके न केवल उनकी विषय वस्तु को सजीव किया, बल्कि कृतियों को कालजई भी किया है।

मैं यहां पृथ्वीराज रासो, वेलि किसन रुक्मणि री, एकलिंग माहात्म्य, एकादशी माहात्म्य आदि ग्रंथों के उदाहरण से बात करना चाहता हूं, जिनका चित्रण मेवाड़ चित्र शैली में हुआ है।

ये साहित्यिक और धार्मिक महत्व की कृतियां हैं लेकिन गजशास्त्र और शालीहोत्र तो हाथी और अश्व विद्या के ग्रंथ हैं और उनका चित्रण किसी पशु की पहचान और रुग्ण होने पर उपचार जैसे विषयों का चित्रण किसी रहस्य को उजागर करता लगता हैउनको व्यावहारिक भी बनाता है।

यहां मुझे मालती माधव जैसी संस्कृत की नाट्य कृति भी याद आती है।

मेवाड़ चित्रशैली में 'मालती माधव' का भी चित्रांकन हुआ है। बहुत ही सुंदर चित्र बने हैं। इसके रचनाकार भवभूति 8 वीं सदी में हुए। महान् संस्कृत और संस्कृतिविद् भवभूति के नाटक 'मालती-माधव' की ख्याति उसके लोकोचित प्रेमतत्व के कारण रही है। हालांकि वह उत्तर रामचरित और महावीर चरित नामक नाटकों के मुकाबले कम ही जाना जाता है किंतु उत्तर-मध्यकाल, जिसकी ख्याति रीतिकाल के रूप में भी रही है, ये चित्रकारों के लिए वह रोचक विषय के रूप में सामने रहा।

इसकी सारी विषय वस्तु कवि की कल्पना जन्य है और दस अंकों के विशाल प्रकरण के रूप में है। इसमें मालती और माधव का प्रेम प्रसंग सुंदरतम रूप में वर्णित है, खासकर युवाकाल के उन्मादित रूप का और उसे दर्शकों के सामने ले जाकर रखने का अंदाज इतना रोचक है कि दर्शक सहज ही मान जाते हैं किंतु भवभूति ने धर्म से विरोध करने वाले प्रेम को समाज के लिए सर्वथा हानिकारक बताने का प्रयास किया है।

मेवाड़ की चित्रशाला में साहबदीन के मार्गदर्शन में जिन चित्र श्रृंखलाओं का निर्माण हुआ, उनमें मालती-माधव का अंकन 17वीं सदी में हुआ। राज्य पुरातत्व विभाग के पास इसके 109 चित्र संग्रहित है। ये चित्र मेवाड़ी कलम की जो चाहे विशेषताएं लिए हों किंतु इनके चित्रण में 17वीं सदी में मौजूद नाट्य कला का समझा जा सकता है। उदयपुर के आहाड़ संग्रहालय में इन दिनों मालती माधव के चित्र प्रदर्शित है। इनमें यह संस्कृत नाटक तत्कालीन मेवाड़ी में अनूदित कर देवनागरी में प्रत्येक अक्षर पर शिरोरेखा सहित लिखा गया है।

आठवें चित्र पर लिखा है - तदी नट राजी व्हे बोल्यो- यो राज रो होकम कीजे हे। जीणी हे ज्यो वेष जुगत हे, त्यो वेष तदीज सीषायो। व्रधा वरत जीणी रो नाम कामंदकी। तीणी रो पेलो वेष। सूत्रधार धरे। तीणी री चेली। अवलोकिता। तीणी रो वेष नट धरे(गांठ 36)

उक्त अनूदित पाठ से यह मालूम होता है कि तब नाटक के प्रस्तुति-अंश को वेष कहने की परंपरा थी। गुजरात और मेवाड़ में आज भी खेलों के लिए वेष या वेश ही कहा जाता है। इन चित्रों से नाटक की प्रस्तुति के लिए मंच निर्माण की स्थिति, यवनिका का प्रयोग, एकाधिक रंगों वाली यवनिका को हाथों से पकड़कर तानने और रस्सियों के सहारे गाड़ने-तानने, उसके आगे नट और नटी की प्रस्तुतिया को जाना जा सकता है। पीछे भुंगल, मंजीरे और मर्दल जैसे क्रमशः सुषिर, घन और आघात वाद्यों के वादकों की गतिविधियों और वीआईपी दर्शकों की बैठकी स्थितियों का भी अध्ययन किया जा सकता है।आज के रंग-बिरंगी रोशनी और प्रकाश प्रभाव वाले रंगमंच और सुविधा संपन्न थियेटर के दौर में 17वीं सदी की नाट्यकला की प्रोपर्टी, पोशाकें और प्रस्तुतियों की परंपराओं को देखा जा सकता है। अपने इलाके की नाट्यकला से भी आप मालती माधव के चित्रों की तुलना कर सकते हैं। साहित्य का कला के साथ सम्बन्ध उसको सुधा से सिंचित करता है।

- प्रख्यात संस्कृतिविद व कला इतिहासकार
मो.: 09672872766

■

साक्षात्कार

डॉ. कहानी भानावत द्वारा डॉ. चित्रसेन से हुई बातचीत के प्रमुख अंश

मेवाड़ में सामंतीकाल की आंतरिक सज्जा से लेकर आधुनिक कला-शिक्षा में चित्रांकन कला का प्रभावी स्वरूप रहा

मानव ने जब से अपनी समझ-दृष्टि की आंख खोली तब से ही उसका मन कला-सौंदर्य के प्रति आकर्षित हुआ और वह अपने आसपास के वातायन को सजाने-संवारने में लग गया। बाह्य सज्जा के साथ-साथ शनैः शनैः उसने अपनी आन्तरिक सज्जा में चित्रांकन का सहारा लेते रंगदर्शनजनित मुंह बोलता आईना दिया। आगे जाकर उनकी देखादेख विभिन्न चहुमुखी कलाओं का विकास हुआ। राजस्थान का मेवाड़ प्रदेश इस दृष्टि से विशेष स्मरणीय है। यहां प्राचीनतम शैलचित्रों से लेकर राजा, राणा, महाराणाओं के राजमहलों, जागीरदारों, ठाकुरों की हवेलियों, दरबारियों, श्रेष्ठीवीरों, के निवासगृहों तथा गढ़-गढ़ैयों, छतरियों, देवल मंदिरों, कुंड-बावडियों तथा अखाड़ों तक में लघु चित्रों के झिलमिलाते अंकन सहज ही सबको विस्मय देते लगते हैं। इन्हीं सब रूपांकनों को अपने शोधानुसंधान का विषय बनाकर गहरे पानी पैठनेवाले गंभीर अध्येता डॉ. चित्रसेन से मेरी बातचीत हुई। उनसे पूछे गये कुछ प्रश्नों के उत्तर निम्नांकित हैं।

- **चित्रकला की दृष्टि से आप राजस्थान को किस रूप में वर्णित करते हैं?**

– राजस्थान में विभिन्न रियासतों रजवाड़ों में राजा-महाराजाओं द्वारा संरक्षित एवं संवर्धित भित्ति-चित्रण कला का 17वीं से 19वीं सदी का काल स्वर्णयुग कहा जाता है जब विभिन्न अंचलों में उनके नाम से चित्रकला की विभिन्न शैलियां ही बन पड़ीं। इनमें मेवाड़ी, मारवाड़ी, हाड़ौती, बागड़ी, मेवाती शैली की प्रमुखता रही।

- **मेवाड़ की राजधानी उदयपुर में चित्रकला के विकास की क्या गति-प्रगति रही?**

– सन् 1553 में उदयपुर मेवाड़ की राजधानी बना। अनेक उथल-पुथल तथा मुगलों के आक्रमण होने पर भी चित्रकला का विकास अवरूद्ध नहीं हुआ। 17वीं शताब्दी में तो चित्रकला के साथ-साथ संगीत, मूर्ति, स्थापत्य आदि के साथ साहित्य सृजन में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई। महाराणा राजसिंह के शासनकाल में लघुचित्रों के साथ पोट्रेट चित्र प्रक्रिया का श्रीगणेश होने पर ब्रजभूमि से लाई गई श्रीनाथजी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा के साथ यहां की चित्रांकन परंपरा में नाथद्वारा चित्रशैली का शुभारंभ भी अद्वितीय घटना बनी।

- **यहां की चित्रांकन परंपरा पर बाहरी प्रभाव को आप किस रूप में देखते हैं?**

– बाद में मराठों के आक्रमण होते रहे तब इस कला में बदलाव आया। महाराणा सरदारसिंह तथा स्वरूपसिंह के शासनकाल में यूरोपियन चित्रकार विलियम कारपेंटर तथा एफ.सी. लेविस के आने पर हेमजी गजाधर एवं

ताराचंद जैसे प्रमुख चित्रकारों की चित्रांकन कला पर उनका प्रभाव पड़ा।

- **कोई महाराणा ऐसा भी हुआ जिसने यहां के किसी चित्रकार को बाहर भेजा और बाहर के चित्रकार को यहां आमंत्रित किया?**

– हां, महाराणा फतहसिंह ने चित्रकार कुंदनलाल को लंदन के स्लड कॉलेज तथा बम्बई के जे. जे. स्कूल ऑफ आर्टस् में उच्च कला-शिक्षा के लिए भेजा। सन् 1901 में राजा रवि वर्मा को आमंत्रित कर महाराणा उदयसिंह तथा महाराणा प्रताप के तैलचित्र बनवाये गये। फतहसिंह के बाद अंतिम महाराणा भूपालसिंह का शासनकाल राजनैतिक परिवर्तन लिये रहा। उस समय के मुख्य चित्रकार रघुनाथ, पन्नालाल, छगनलाल, चतुर्भुज तथा नरोत्तम शर्मा पर समकालीन कलाधारा का प्रभाव रहा। राष्ट्रीय स्तर पर भी इनकी पहचान बनी।

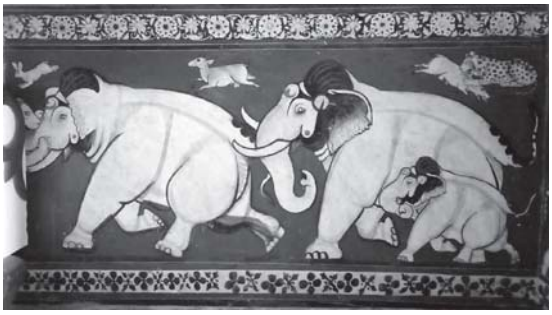

- **आजादी के बाद की चित्र-परंपरा पर जन-प्रभाव को आप कैसे व्याख्यायीत करते हैं?**

– उसका प्रभाव तो नितांत भिन्न रूप लिये है। सामान्यजन ने अपने विविध संस्कारों पर बड़ा विशद प्रभाव ग्रहण किया। खासतौर से विवाह पर प्रत्येक जातिवालों ने अपने घर के मुख्य द्वार पर छडीदार तथा आरती करती मंगल कलश धारिणी महिला के साथ हाथी, घोड़ा तथा ऊंट पर आसीन वर-वधू के प्रतीक रूप में ढोलामारवणी का चित्रण प्रारंभ किया। घरों के भीतर भी कई लोगों द्वारा गणेशजी, लक्ष्मीजी, पतंग उड़ाता, चकरी खेलता बालक, राधा-कृष्णजनित लीला चित्र, घट्टी फेरते ब्याईजी तथा मूसल मारती ब्याणजी के प्रहसन चित्र सर्वाधिक मंडने लगे। बाल जन्म पर विधाता माता तथा मान्यता के अनुसार कहीं चौथ माता, कहीं दीयाड़ी, कहीं दशादेवी, अहोई आदि के व्रतानष्ठानपरक थापा चित्रों की बहार भी मिलती है। इनके अलावा पड़ तथा कावड बनाने वाले चितेरों द्वारा भी चित्रांकन कराने की परंपरा रही है।

- **कला-शिक्षा की दृष्टि से इन चित्रांकनों के पठन-पाठन तथा अध्ययन-अनुसंधान पर भी कोई प्रभाव आपको नजर आता है।**

– चहुंओर बड़ा व्यापक प्रभाव मिलता है जो आश्चर्यकारी ही है। इस संबंधी कुछ संस्थाएं और व्यक्ति हैं जिन्होंने स्थायी महत्व का काम किया है। उदयपुर की भारतीय लोककला मंडल तथा डॉ. महेन्द्र भानावत ने इस क्षेत्र में सर्वप्रथम कार्य किया जिससे औरों को भी प्रेरणा मिली। आज तो पूरे देश में और विदेश में भी अनेक लोग हैं जहां विश्वविद्यालयों में लोककला-चित्रांकनों पर गंभीरता से काम हुआ और हो रहा है। अनेक प्रकाशन भी हुए हैं। उदयपुर के सुखाडिया विवि में ही लोकचित्रांकन के विविध विषयों पर आधा दर्जन छात्र पीएच. डी. की उपाधि ले चुके हैं। पाठ्य-पुस्तकों में भी संदर्भित पाठों के साथ कला-शिक्षण पुस्तिकाओं में इसका प्रभाव बढ़ता जा रहा है। भविष्य बहुत आशावान है।

–वरिष्ठ साहित्यकार, मो.: 09460352480

समवेत

एम. टी. व्यास स्मृति संस्कृति सेवा पुरस्कार एवं द टीचर एण्ड द टॉट पुस्तक का विमोचन

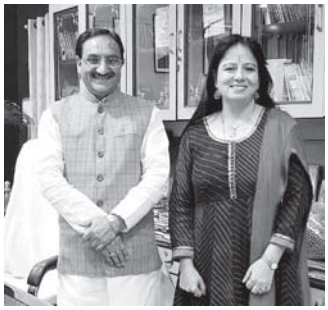

विश्वविख्यात तबला वादिका पंडिता अनुराधा पाल के मार्गदर्शन में पिछले दिनों एक रंगारंग ऑनलाइन कार्यक्रम संपन्न हुआ, जिसमें कला जगत की अनेक स्वनामधन कलाकारों ने भाग लिया। इस अवसर पर उनके नाना एम. टी. व्यास द्वारा लिखित एवं उनकी मां श्रीमती ईला पाल संपादित पुस्तक द टीचर एण्ड द टॉट का लोकार्पण केंद्रीय शिक्षा मंत्री माननीय श्री रमेश पोखरियाल ने किया। इस अवसर पर प्रसिद्ध अभिनेता जैकी श्राफ ने कोटा की गायिका और समाजसेवी आस्था सक्सेना को 'एक लाख ग्यारह हजार एक सौ ग्यारह' रुपये के किसान विकास पत्र एवं सम्मान प्रतीक से नवाजा। माननीय मंत्री महोदय ने- जो स्वयं एक सिद्धहस्त लेखक और विचारक हैं- ने स्व. व्यासजी, स्व. ईला पालजी एवं विदुषी अनुराधा पाल तथा उनके पति श्री श्याम शर्मा को बधाई देते हुए नयी शिक्षा नीति में कलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका पर प्रकाश डाला। इस अवसर पर 100 से अधिक विद्वानों ने द टीचर एण्ड द टॉट बुक को नई शिक्षा नीति, संदर्भ के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण बताया और देश और विदेश के स्कूल व पुस्तकालय में शामिल करने की अपील की उन्होंने पुस्तक मैं वैदिक चिंतन अरविंद घोष, महात्मा गांधी, रविन्द्र नाथ टैगोर आदि के चिंतन के सहित विधार्थियों के समग्र विकास के सूत्र समाहित पाये । यह पुस्तक एमेजॉन डॉट कॉम पर उपलब्ध है।

सभी गणमान्य अतिथि विद्वानों ने विश्व प्रसिद्ध तबला वादिका युनिसेफ एवं बेटी बचाओ अभियान की ब्रांड एम्बेसेडर एवं इस राष्ट्रीय स्तरीय समारोह की आयोजिका पंडिता अनराधा पाल की इस बात के लिये भी प्रशंसा की- कि वे विश्व संकट की इस घड़ी में एक ओर असहाय मध्यवर्गीय संगीतकारों की तरह-तरह से सहायता कर रहीं हैं तो दूसरी ओर बेटियों को आगे बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान दे रहीं हैं। इस अवसर पर आस्था सक्सेना ने विश्वविख्यात तबला वादिका अनुराधा पाल के संगीत निर्देशन में भारत सरकार केंद्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के लिए तैयार एंथेम गीत 'खुद को तू पहचान दे' की लाइव प्रस्तुति दे कर सभी को मंत्रमुग्ध कर दिया। कार्यक्रम का सधा हुआ संचालन लेफ्टिनेंट कर्नल ए शेखर, श्री श्याम शर्मा एवं तबला वादिका अनुराधा पाल ने किया।

रपट – पंडित विजयशंकर मिश्र, दिल्ली
मो.: 09810517945

लोक में अद्वैत -दर्शन की व्यवहारिकता

श्याम सुंदर दुबे

विवाह-पूर्व मेरा उपनयन संस्कार किया जा रहा था। इस संस्कार को लोक बोली में 'बरूआ' कहा जाता है। मुझे दंड-कमंडलधारी बनाया गया। कौपीन पहनाया गया। भिक्षापात्र दिया गया। मैंने भिक्षा प्राप्ति को भिक्षा-पात्र जन-सम्मुख किया और मेरा पात्र भिक्षा से प्राप्त अन्न-द्रव्य से भर गया। अब मेरे महाभिनिष्क्रमण का समय आ गया था। अब मुझे विद्या प्राप्ति के लिये वाराणसी जाना था। मैं स्वतंत्र था सन्यास भी ले सकता था। एक तरह से यह घर-गृहस्थी की माया का त्याग काल था। पुरोहित अपना कर्मकांड पूर्ण करते हुए मुझे उपदिष्ट कर रहे थे। मैं खड़ाऊँ पहनकर कुछ ही डग चल पाया था कि मेरी भाभी ने मुझे पुकारा। वे कह रही थीं कि वे मेरा विवाह अपनी छोटी बहिन के साथ कर देंगी मैं वापस लौट पड़ूँ। मैं नहीं लौटा तो वे मेरे सामने आ गयीं। उन्होंने कहा, 'भगवान न सन्यासियों को मिलता है न योगियों को न व्याकरण रटने वाले बटुकों को भगवान तो सबमें हैं - हम में तुम में, घर-गृहस्थी में समूचे संसार में ही भगवान समाया है - माया मिथ्या नहीं है। तुम लौट चलो। मैं लौट आया। एक नये बोध से परिचालित होकर लौटा। यह बोध था - '**अहं ब्रह्मास्मि**' और '**सर्वं खाल्विदं ब्रह्म**' मेरा लोक जैसे शंकर के अद्वैत को प्रकट कर रहा था।

लोक सदैव प्रकृति पूजक रहा है। प्रकृति ही उसकी पालनहार रही है। आदिम अवस्था से लेकर कृषि-संस्कृति के विकसित परिवेश में लोक ने प्रकृति में ही ईश्वर को अनुभव किया है। वह वृक्षों में ईश्वर का वास मानता है। वह पत्थर-मिट्टी, हवा-पानी में ईश्वर की उपस्थिति को स्वीकार करता है। लोक की परंपराओं में इस तथ्य का प्रकाशन अनेक संस्कार आयोजनों से स्पष्ट होता है। विवाह जैसे संस्कार में मृत्तिका की पूजा, जल की पूजा का विधिविधान है। वायु-स्तवन के रूप में भी लोक ने अपनी स्तुतियों की रचना की है। खुले आँगन में जब वैवाहिक अवसर पर पक्वान्न बनाया जाता है - तब हवा को मनाने के गीत गाये जाते हैं, और उससे प्रार्थना की जाती है कि वह अपनी गति को मंद ही रखे। झंझावाती न बने। जल भरने के गीत मृत्तिका खोदने के गीत देव-आराधना जैसे गीत हैं। लंबे काल तक मृत पूर्वजों को भी देव ही माना जाता रहा है आज भी उन्हें मांगलिक कार्यों में आमंत्रित किया जाता है। वे स्वर्ण की नसैनी से स्वर्ग पर उतर कर हमारे लोक में आते-जाते हैं। यह अभेद दृष्टि अद्वैत की आधार भूमि रही है।

यह एक अलग तथ्य है कि इन सब आयोजनों में अपने परिगत में लोक के मनुष्य ने ईश्वरत्व का या दिव्य चेतना का अनुभव किया, किन्तु वह अपने भीतर की शक्तियों से अनभिज्ञ सा ही था। इसीलिए उसने प्रकृतिजात भयंकरता से मुक्ति के लिए अपने अभिचारों की रचना की थी - एक तरह से यह प्रकृति से ही अपने रक्षक ईश्वर की अवधारणा का प्रस्थान क्रम था। इस स्तर तक मनुष्य अपनी आंतरिक शक्तियों से अधिक परिचित नहीं हो पाया था। जैसे जैसे वह अपनी आंतरिक चेतना के अनुसंधान में सक्रिय हुआ वैसे-वैसे ही उसने अपने भीतर की ईश्वरत्व का अनुभव करना प्रारंभ किया। वेदांत चिंतन उसकी इन अनुभूतियों को प्रत्यक्ष कर रहा था। आदि शंकराचार्य ने इस चिंतन की व्यवहारिकता को अपने अद्वैत दर्शन में स्पष्ट किया। ईश्वर जगत और आत्मा की सत्तायें एक-मेक होकर प्रकट होने लगीं। यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे से लेकर त्वमसि निरंजनः तक यह दर्शन प्रत्यक्ष हुआ। इसका प्रभाव लोक चिंतन में अभिव्यक्त होने लगा और लोक ने इस अद्वैत को स्वीकार कर लिया। ऐसा नहीं है, कि लोक को यह नया प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ था। उसने अपने तरह से भी इस ओर चिंतन मनन किया था। उसने आत्मा की अमरता और उसकी अविरल सत्ता को अपने आदिम स्वप्नों में स्थान देना शुरू कर दिया था। आदिवासी क्षेत्रों में मृतक की आत्मा को वृक्ष पर बैठा मानना या मृतक की आत्मा की उपस्थिति को काष्ठ स्मारकों में स्वीकार करना आत्मा सत्ता के सातत्य का ही उद्घाटक है।

लोक में ईश्वरत्व का अवबोधन तो था ही, भले ही वह नाना नाम और अनेक रूपात्मक आशयों में प्रकट हो रहा था। अद्वैत दर्शन ने आत्मतत्व में ईश्वरत्व के अंश की प्रतिष्ठा को और संपूर्ण सचराचर में ईश्वर को अनुभूति के स्वर पर अनुभवगम्य बनाया। लोक ने ईश्वर की सर्वव्यापकता को मानते हुए उसे आत्मा से अविभक्त मानकर एक तरह से सगुण सत्ता और निराकार सत्ता के एकत्व का प्रतिपादन किया है। एक बुंदेली लोक गीत में इस तरह का रूपक विधान प्राप्त होता है। '**रतन-जतन को पींजरा रे जामे हीरा जड़े अमोल-टँगो कदम की छैयाँ। उड़ जाऐ आकासे जहां अन्न न पानी पंछी करंत किलोल।**' यह शरीर रत्नों का पिंजड़ा है जिसमें आत्मा का पक्षी बैठा है। अनायास ही वह आकाश की निस्सीमता में विलीन हो जाता है, जहां भूख-प्यास का अनुभव नहीं है। उपनिषद के द्वासुपर्णा सयुजा सखाया का यहाँ स्मरण हो आता है। लोक में बूंद और समुद तथा खांड की मूरत के प्रतीक भी इसी आशय को अभिव्यक्त करते हैं। कबीर की लोकवाणी में ''**फूटा कुंभ जल जलहिं समाना यह तथ कथौ ज्ञानी**''। इस ओर संकेत करने वाला पद है - यहां ज्ञानियों के द्वारा कहे गये इस तथ्य पर इसलिए ध्यान देना जरूरी है कि आत्मा के अविनाशी और सततयात्री के गुण के साथ ईश्वरीय अंशी की धारणा का दर्शन ज्ञानमार्ग से लोक तक पहुँचा है।

यहाँ इस तथ्य का उल्लेख करना जरूरी है कि आदि शंकराचार्य की अद्वैत धारणा का लोक पर गहरा प्रभाव प्रत्यक्ष होता है। प्राकृत, पालि, अपभ्रंश और आज की लोक बोलियों में रचे गये अद्वैत स्वर प्रधान लोक गीतों का रचनाक्रम इसी अद्वैत धारणा के प्रभाव का परिणाम है। अधिकतर निर्गुण संतों का निर्वचन इसी धारणा में निहित है। लोक के इस पक्ष को कबीर, दादू, छीपा-पीपा, सिंगाजी, जूड़ीराम जैसे संतों की रचनाओं में पाया जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इस ओर संकेत किया है - वे लिखते हैं, '**हरि व्यापक सर्वत्र समाना।**' ईश्वर का यह व्यापकत्व करूणा का प्रसारक है। इसी भाव के कारण हम परायी पीर का अनुभव करते हैं। परायी पीर का अनुभव जब हम संपूर्ण सचराचर में करने लगते हैं तब करूणा जैसे महाभाव का विस्तार होता है। यही भाव मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अतः अद्वैत दर्शन की लोक व्यवहारिकता में इस परायी पीर को जानने का मंत्र समाया हुआ है।

-श्री चंडीजी वार्ड, हटा, (दमोह) म.प्र., मो. 09977421629

■

तुर्की कवि मेटिन जेन्गिज की कविताएँ

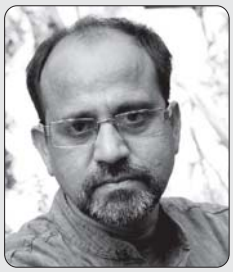

अनुवाद : मणि मोहन

प्रो. मणि मोहन अनुवाद के क्षेत्र में लंबे समय से सक्रिय हैं। अनुवाद के अलावा वे समकालीन हिंदी कविता के समर्थ कवि भी है। अनुवाद के माध्यम से वे हमें विश्व साहित्य की विरासत और हलचल से अवगत कराते रहते हैं।
सम्प्रतिः शा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंज बासौदा में अंग्रेजी के प्राध्यापक। मो.- 09425150346

तुर्की कवि मेटिन जेन्गिज जन्म : 03 मई 1953, ग्योले (तुर्की) अभी तक पन्द्रह कविता संकलन, बीस के करीब आलोचना पुस्तकें तथा अनेक अनुवाद पुस्तकें प्रकाशित अंग्रेजी , जर्मन, फ्रेंच, ग्रीक ,हिब्रू , जापानी, रशियन सहित दुनिया की अनेक भाषाओं में कविताओं तथा आलोचनात्मक आलेखों का अनुवाद।

कभी-कभी

कभी- कभी कोई आता है
रहने लगता है दिल में
मेरी पूरी देह को घेरकर
मुझे सुरक्षित रखने वाला लोहा पिघलने लगता है
ऐसे शब्द बोलता है जिन्हें मैंने कभी नहीं सुने
मुझे अपने ही बारे में बताता है
दूर ले जाता है मुझे बुहारकर
उलट - पुलट कर देता है मेरी दुनिया
सिर्फ इतना भर नहीं समझना चाहता
यह कोई और है या शायद तुम
पर अंत में मुझे समझ मे आ जाता है
मैं खुद ही मुसाफ़िर हूँ अपना ।

प्रेम का वर्णन

जाने कितनी जहाजों को मैंने
इस जगह डूबते देखा है

मुसाफ़िर भूल गए अपने समंदर
और मछलियों से होड़ करते मछुआरे
कितनी यंत्रणाएँ, कितने दुखों के साथ
बदकिस्मत लोग यहां जीते हैं
रक्तपिपासु भूख और प्यास के बीच
थकन से चूर पर किसी बच्चे की तरह खुश ।

मैंने ऐसे दौर देखे हैं
जो रोक देते हैं इच्छाएं
दौर जो बदल देते हैं जिंदगी
बिना ब्रेक वाली गाड़ी में
मैंने कहानियां सुनी हैं जिनकी
हवाएं घण्टियों के खिलाफ झुकी रहीं
मैं कभी नहीं भूल सकता
जैसे कोई संक्रामक बीमारी
और कष्टप्रद जैसे
आसानी से सुना दिया जाने वाला युद्ध ।

परन्तु मैंने नही देखा इन जमीनों पर
प्रेम जैसा कुछ
सड़कों पर फेंक दिए गए हैं लोग
नंगे पाँव
रेंगते, लंगड़ाते।

प्रेम

कुछ है तुम्हारे चेहरे पर,
अचानक साफ होता आसमान
बारिश फिर शुरू हो गई ,
दरख़्तों पर, सड़कों पर
मुझे ग्रीष्म के गुलाब की खुशबू
जैसी लगती है यहाँ
यह तुम्हारे चेहरे के सूर्य पर
कुछ बढ़ती ही जाती है

यहाँ कुछ और भी है , अनचीन्हा
लोग एक फ़रिश्ते के करीब से गुजर रहे हैं
एक नदी को मिल गया है
अपना रास्ता रात से होकर
जो बह रही थी ख़्वाब के
खूबसूरत रंगों के साथ

यह कोई पुराने समय का कुछ रहा होगा
जो अचानक ज़ेहन में आता है और
फिर हम भूल जाते हैं
शायद इसे ही हम प्रेम कहते हैं
एक सिहरन , बहता हुआ गर्म रक्त
तुम्हारी मुस्कान पर।

गीत

मनोज जैन 'मधुर' के गीत

मनोज जैन 'मधुर'

मनोज जैन 'मधुर' नवगीतकार अंग्रेजी साहित्य में स्नातकोत्तर प्रकाशित कृतियाँ एक बूंद हम (नवगीत संग्रह) धूप भरकर मुट्ठियों में (नवगीत संग्रह) अनेक शोध सन्दर्भ नवगीत संकलनों में नवगीत सम्मिलित अनेक सम्मानों से सम्मानित प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का नियमित प्रकाशन । दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से प्रसारण सम्पर्क -106 विट्ठल नगर गुफा मंदिर रोड़ लालघाटी भोपाल 462030 मोबाइल- 09301337806, ईमेल **manojjainmadhur25@gmail.com**

प्रस्तुत नवगीतों की कुछ बातें गौरतलब हैं प्रयोगपरकता, भाषाई सुष्ठुता, अंतर्वस्तु की मार्मिक चुभन और उसका मार्मिक स्पर्श। कहना चाहूँगा कि इनका अभिव्यक्ति कौशल भीड़ में बाँसुरी जैसा है। 'एक बूँद हम' 2011 के लोकार्पणोत्सव में मैंने श्री मनोज जैन 'मधुर' को नवगीत का खिलता गुलाब कहा था जिसे तत्कालीन समाचार पत्रों ने सुर्खियों में छापा गया था। वर्तमान नवगीत परिदृश्य को देखते हुए मैं यही कहना चाहूँगा कि आज युवा पीढ़ी का यह वरिष्ठ नवगीतकार नवगीत की धुन्ध में उगता हुआ सूरज है।

– वीरेन्द्र आस्तिक, मो. 6307291407

तुम मिले तो

खूबसूरत
दिन,पहर,क्षण,
पल,हुआ।
तुम मिले तो
सच कहें
मंगल हुआ।
पुण्य जन्मों का,
फला तो छट गयी
मन की व्यथा।
जिंदगी की पुस्तिका में,
जुड़ गयी
नूतन कथा
ठूँठ-सा था मन
महक, संदल हुआ।
वेद की पावन
ऋचा या,
मैं कहूँ तुम हो शगुन।
मीत! मन की
बाँसुरी पर
छेड़ते तुम प्रेम धुन।
पा, तुम्हें यह
तप्त मन
शीतल हुआ
लाभ-शुभ ने
धर दिए हैं
द्वार पर दोनों चरण।
विश्व की सारी
खुशी आकर करे
अपना वरण।
प्रश्न मुश्किल
जिंदगी
का हल हुआ।

आदमी हम आम

चार दिन की
जिंदगी लिख दी
तुम्हारे नाम।
पी गए हमको
समझ
तुम चार कश सिगरेट।
आदमी
हम आम
ठहरे बस यही है रेट।
इस तरह
दिन बीत जाता
घेर लेती शाम।
चढ़ गए हमको
समझ मजबूत सा पाया।
इस कुटिलता
पर मुकुर मन
खूब हर्षाया।
नियति तो
अपनी रही
आना तुम्हारे काम।
हम रहे प्यादे
कभी
समझे गए असबाब।
काँच की
मानिंद टूटे
छन्न से सब ख़्वाब।
इस तरह
उपभोग तक
होते रहे नीलाम।
पी गए
हमको समझ
दो इंच की बीड़ी।
बढ़ गये
कुछ लोग कन्धों को
बना सीढ़ी।
नामवर होना
हमें था पर रहे बेनाम।

■

कविता

डॉ. भूपेन्द्र हरदेनिया की कविताएँ

डॉ. भूपेन्द्र हरदेनिया

युवा आलोचक, सम्पादक, कवि डॉ. भूपेन्द्र हरदेनिया शास. नेहरू डिग्री कॉलेज, सबलगढ़, जिला मुरैना में हिन्दी के व्याख्याता है। अभी तक इनकी दो आलोचनात्मक पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है - पहली 'आचार्य पूनमचंद तिवारी और उनका महाकाव्य' और दूसरी 'रचना प्रक्रिया विमर्श'। इन्हें म.प्र. विवरणिका के श्रेष्ठ संपादक के रूप में भी जाना जाता है।
मो.: 9893523538

तीसरी बेटी

दो बेटियों के बाद उम्मीद थी,
एक बेटा होने की।
आस थी, कर सकेगा सहयोग,
घर में, सबका
रोशन करेगा वह
चिराग जो होगा
नूर सबकी आंखों का,

पर इत्तफाकन
उम्मीद से सरे हुई तीसरी बेटी
उसका आगमन
उल्लास की जगह रुदन
सिर्फ खामोशी और मातम,

पर कारण क्या रहा
न पाल पाने का या डर समाज का
गरीबी का या असुरक्षा का

दहेज का या सिर्फ अज्ञान का
या सिर्फ और सिर्फ
लड़की होने का,

अब क्या हो
कुछ नहीं,
निर्णय सिर्फ यही
कि अब इसे नहीं रखा जा सकता
पालन-पोषण इसका यहाँ
किया नहीं जा सकता,
मजबूरी है सरकार
इसके आने से घर पर
पड़ेगा अतिरिक्त भार,

अब इसका क्या करना होगा
किसी को गोद दे कर या इसे दान कर
किसी सूनी को गोद भर देना होगा
जानती हो भाग्यवान
यह भी एक पुण्य कर्म होगा,

लेकिन
बेटी की जगह
होता अगर तीसरा बेटा
तो क्या
यह पुण्य कर्म कोई करता
कोई किसी की सूनी कोख भरता
क्या फिर उस लड़के का
दान हो पाता।
खर्चा तो फिर भी बढ़ता
शायद कहीं ज्यादा ही,

फिर लड़कियों का दान क्यूं
यह एक सवाल नहीं
यक्ष प्रश्न है,
जबाव भी सिर्फ
लड़की होने पर ही केन्द्रित है,
इसीलिए दान भी उसी का है
कन्यादान इत्यादि।

सत्य हाशिए पर रहता है

हर व्यक्ति समझदार होता है
कब तक?

जब तक
उसमें झूठ सहन करने की
छल को झेलने की
कपट को पी जाने की
दुराव-छुपाव के साथ
की गई चालाकियों को
समझते हुए भी
नासमझ रहने की
सारे भावों-कुभावों
को हृदय की गुहा में
समाये रखने की
चाटुकारिता की
चारणवृत्ति की
विरुदावली गायन की
दलगत भावना को
बनाये रख
केवल दृष्टा बने रहने की
रहती है समझदारी,

जब सारे भाव
छलकते हैं
कुम्भोच्छलनवत्
अतिरेक होने से,
कहने लगता है
सत्य वह
यथार्थ के साथ
जिसे करता था
नज़रअंदाज कभी,

लोगों को
लगने लगते हैं
विद्रोही स्वर

माना जाने लगता है
अब नहीं रहा
समझदार वह
कई तथाकथितों की
नज़रों में,
सबका होते हुए भी
नहीं रहता किसी का,
उनका भी जिनका कभी था,
आखिर
हाशिए पर
रख दिया जाता है वह
हर जगह
सत्य के साथ।

■

ग़ज़ल

कविता विकास की ग़ज़लें

कविता विकास

कार्यक्षेत्र - कविता संग्रह- लक्ष्य और कहीं कुछ रिक्त है। हृदय तारों का स्पंदन, खामोश, खामोशी और हम, शब्दों की चहलकदमी और सृजक प्रकाशित। हंस, परिकथा, पाखी वागर्थ, गगनांचल, आजकल, मधुमति, हरिगंधा और अन्य सामाजिक पत्रिकाओं में नियमित लेखन।

पता- डी-15, सेक्टर-9, पीओ कोयलानगर, जिला धनबाद

संपर्क : 09431320288

(1)

शाम ढलते ही तेरी याद जो घर आती है
एक ख़ामोशी मेरे दिल में उतर आती है
जिंदगी कब किसे मिलती है मुकम्मल यारो
कुछ न कुछ इसमें कमी सबको नज़र आती है
आँसुओं का ये समंदर है उमड़ पड़ता जब
तेरी यादों की वो तूफ़ानी लहर आती है
खौफ़ वहशत का है इस मुल्क में छाया ऐसा
शब रूमानी न सुहानी - सी सहर आती है
टूट जाती हूँ कभी तो कभी जुड़ जाती हूँ
ज़ीस्त जब लाख झमेले लिये घर आती है
आईने पर है पड़ी धूल ज़माने-भर की
अपनी सूरत भी कहाँ साफ़ नज़र आती है
झूम उठते हैं खुशी से ये शजर पतझड़ के
बदलियों की जो उन्हें नभ से ख़बर आती है

(2)

साँसों का इक हिसाब है जीवन
दाब के साथ ताब है जीवन
इसमें किस्से हैं हँसने - रोने के
अनुभवों की किताब है जीवन
पाने की तिश्नगी नहीं मिटती
सहरा में ज्यों सराब है जीवन
गर हो खुशबू बिखेरना मक़सद
जान लो तब गुलाब है जीवन
मोह इससे कभी नहीं छूटा
यूँ पुरानी शराब है जीवन
कुछ मिले या नहीं मिले कुछ भी
यह मगर लाजवाब है जीवन
सीख लो जीने की कला कविता
फिर न कहना अज़ाब है जीवन

(3)

दूर जीवन से यकीनन तीरगी हो जाएगी
हो खुदा गर साथ मेरे रोशनी हो जाएगी
दर्दे दिल ऐसे न छेड़ा कर पपीहे बावरे
मुद्दतों से सूखी आँखों में नमी हो जाएगी
होगी पर उपकार की तुममें भरी गर भावना
जीते-जी समझो खुदा की बंदगी हो जाएगी
ज़िन्दगी भी ज़िन्दगी है कब रही ये बिन तेरे
अब भी आ जा ज़िन्दगी यह ज़िन्दगी हो जाएगी
सींच कर अपनी मुहब्बत से रखे महफूज़ तो
खिलने को आतुर चमन में हर कली हो जाएगी
लुप्त होते पेड़ कहते हैं कि मत काटो उन्हें
जीने लायक वायु की वरना कमी हो जाएगी

(4)

किसने ये कह दिया उससे मेरा रिश्ता न रहा
ये अलग बात है वो ही मेरा अपना न रहा
रंग उल्फ़त का तेरी ऐसा चढ़ा था मुझ पर
दूर रहकर भी मेरा मन कभी तन्हा न रहा
खौफ़ ए रूसवाई से तो फेर ली तुमने नज़रें
मुझको फिर भी कभी तुमसे गिला -शिकवा न रहा
तेरी सोहबत का असर था या मुहब्बत थी तेरी
जिन्दगी फूल लगी काँटा भी काँटा न रहा
मेरी हर शाम उदासी का सबब है अब तो
खो गयीं खुशियाँ मेरी जब से तू यारा न रहा
तू ही धड़कन था मेरा,तू ही था हसरत दिल की
बिन तेरे जीने का अब कोई बहाना न रहा
मर न जाऊँ कहीं जीने की तमन्ना लेकर
मैं रही सबकी मगर कोई भी मेरा न रहा
फ़िक्र तेरी,तेरा अहसास,तेरी ही बातें
तू खुदा है मेरा,तुझसा कोई प्यारा न रहा

(5)

काम औरों पे टाले गए
पूरा दिन बैठे - ठाले गए
हम हवाले हुए तेरे ही
अब न तन्हा सँभाले गए
देख बेनूर चेहरा मेरा
राज़ खोजे - खँगाले गए
दब गए उनके किस्से कहीं
बस मेरे ही उछाले गए
दर्द, ग़म और तन्हाइयाँ
प्यार के साथ पाले गए

■

कविता

संगीता गुप्ता की कविताएँ

संगीता गुप्ता

कार्यक्षेत्र- स्वतंत्र लेखिका, आकाशवाणी से संबद्ध ,साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रमों का मंच संचालन तथा वनबंधु परिषद व एकल अभियान से जुड़कर वनवासी क्षेत्रों में शिक्षा का प्रचार प्रसार व ग्रामोत्थान।
उपलब्धि -दो काव्य संग्रह प्रकाशित 'संबोधन' (2005) एवं निशिगंधा (2017)
पता- G-9 C, 'कमलायन' कबीर मार्ग बनी पार्क जयपुर -16
सम्पर्क-9001256256

रोशनी

फूंक फूंक पग धरो साथियों
तिमिर से ना डरो साथियों।

भोर का आना तो निश्चित है
प्रतीक्षा,
उजालो की
करो साथियों

पग में कांटे चुभे अनगिनत
उनको गिनने मत बैठो तुम,
मंजिल का मिलना निश्चित है

विश्वास स्वयं पर रखो साथियों

रंगों की हम हैं परिभाषा
हम पर टिकी है सबकी आशा

सूरज नया उगाती हर दिन

किरणें,
विश्वास की
करती साझा।

यह वक्त कभी ना ठहरा है
यह भी निकल ही जाएगा

बस रखना थोड़ा ढाढ़स है
मौसम यह भी बदल ही जाएगा।

प्रश्नों के कटघरे

मुझसे ही क्यों पूछे जाते हैं प्रश्न?
बचपन से आज तक
कदम दर कदम
हर मिनट, हर घंटा ताउम्र
और मैं पल पल का
हिसाब देते देते थक गई हूं
प्रश्नों के कटघरे में हर वक्त
मुझे ही क्यों खड़ा किया गया
त्रेता से कलयुग तक
मेरी अस्मिता पर उठाए प्रश्न
मेरी पाकीज़गी से पूछे सवाल
और मैं ज्वालामुखी के बीच
खड़ी पिघलती रही
जज्ब करती रही लावा
झूठे मान का
घूंट घूंट पीती रही
विष अपमान का
मेरे मन को धकेलते, कुचलते
मानकर एक वस्तु
भोगता रहा यह जग
मैं फिर भी चलती रही लहूलुहान
लिए कांटों से भरे पग
में जीवित रही
मात्र एक वरदान पाकर
सृजन का वरदान
मातृत्व का तृप्त भाव
रेत के शिखर पर बैठाकर मुझे ढोल
पीटे मेरे सशक्तिकरण के
और सबने अपनी उदारता की
वाहवाही लूटी
पर प्रश्न पूछने की कवायद
नहीं छूटी .....
ठंडी लकड़ियों जैसी
मैं फिर भी रही सुलगती
आत्मा मेरी
बार-बार टूटी
मुझे जमीन पर ही क्यों नहीं रहने देते
देवी बनने का कतई शौक नहीं मुझे
इंसान समझ लो बस यही काफी है।

एकांत और अकेलापन

अकेलापन लगे
अभिशाप,
एकांत एक वरदान।
अकेले रहकर जीना मुश्किल,
एकांत शांति का पैगाम।
अकेलापन बाहर का मुकाम,
एकांत भीतर के सफ़र का अंजाम,
भीड़ में रहकर तलाशते हैं खुशियां
और अकेले होते ही
छा जाता अवसाद
एकांत उतर आए जीवन में
तो पूर्णता का हो अहसास
न रहे कोई प्रतिवाद।
एकांत विषय मन का है
जो डराता नहीं
अकेलापन सालता है
डर जिसमें छुपा है कहीं
हम ऋषि मुनि नहीं
सामाजिक प्राणी है,
परिवार रिश्तो को निभाते बखूबी
यही हमारी निशानी है
समाज से कटकर हम रह नहीं सकते
अकेलेपन की छाया में
जी नहीं सकते
हमें सदा किसी के साथ की
चाहत रहती है
जिंदगी तभी तो खुशियों का दामन
थामे आगे बढ़ती है
पर शोर के बीच एकांत में
जाने का अभ्यास अब करना है
अपने भीतर जाकर स्थिर
हो जाने का भी प्रयास करना है।

■

कविता

असंख्य रंगों का धनक है दीपक

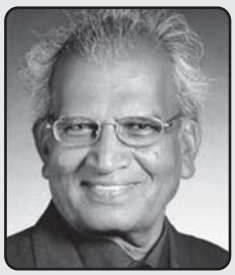

डॉ. महेन्द्र भानावत

मेरा दीपक ज्योति का अक्षय स्त्रोत है
अनन्त-अनन्त किरणों का अक्षर धाम है।
ज्ञान का अखंड अमृत कलश है।
वह अनवरत छलकता रहता है।
उसके प्रकाश में तेज है, चकाचौंध नहीं।
असीम ऊर्जा है, जलन नहीं
वह सर्व लोकों की सर्व दिशाओं को समेटता है।
वह परम शक्ति का अनिंद्य अंश है।

वह कोई रंगरेज नहीं है मगर असंख्य रंगों का धनक है।
उसने कपास को कैसा फूल दिया श्वेत शुभ्र महीन रेशों वाला
वह कतता रहता है बुनता रहता है कपड़ा।
उस कपड़े से कितनी दुनियां ढकती हुई अपनी लाज बचाती है।
उसने गुलाब दिया कैसा सुकोमल बनाठना सा।
उसकी कलियों को देखो।
कितने रूप रस गंध को समेटे है अपने में

अन्तर्जमीन में न जाने कितने खजाने हैं उसकी देखरेख में।
कैसे भेदती है, छेदती है किरण कि सब झिलमिलाने लगते हैं।
कितनी तरह की पंक्तियां होती हैं।
प्रकाश का कौनसा अंश उन्हें पल्लवित करता है।
कैसे-कैसे कितने-कितने प्राणों का आत्मांकुर उन्हें सहेजता है।
नदियों के पेटों से किरणों की डोरें आकाश को नीलांगन देती हैं।
कैसे तनती हैं नक्षत्रों की पतंगें।
प्रकाश कैसे थमता, हवा में झूलता, बर्फ में जमता है।
वे सब सांसें तुमने ही छोड़ रखी हैं
जो मनुष्य को जीवन, धरती को कंपन और समुद्र को उफन देती हैं।

नन्हा सा दीपक अनंत किरणों का सूरज है मेरा
गहन तिमिर में चौराहे पर घर-बाहर डाले डेरा।
दीपक तुम कितने अजूबे गजब करिश्मे वाले हो
तुम्हारे नीचे अंधेरा है।
तुम्हारे तल-अतल में अनन्त वैभव का अखंड साम्राज्य है
विराट भव भूतियों की विभूतियों का वरेण्य वर्चस्व है
कहां तक जाती है तुम्हारी लौ अनन्त-अनन्त आकाश में
उस रहस्य को कैसे कोई जान पाया, छान पाया।
हड़बड़ाती गड़बड़ाती दुनियां में तुम कितने शांत और एकांत हो
कैसी दीवाली करते हो तुम जब सारा अगजग रोशन-रोशन हो जाता है।
कितने शब्द अर्थ और कोश हैं कि तुम बांधे नहीं बंधते हो।
कैसे हो तुम कि जो अंधकार में प्रकाश देते हो
जड़ में चेतन का वास करते हो।
मृत्यु में अमरत्व का सींचन देते हो।

हर हाड़ और पहाड़, झाड़ और झंखाड़ तुमसे चलायमान है।
राम के धनुष में तुमने ही भरा था विजय घोष
कृष्ण के कुरुक्षेत्र में गीता की रश्मि का प्रस्फुटन।
तुमने गूलर को फूल और बोधि को बोधमय बनाया
सबकी आंखों में उजास और पांखों में हवा का बीज दिया।
सबकी तरह तुम भी एक एक हो, अनेक हो, विरल हो, विस्मय हो।
तुम मिटाटी में कितने रौंदे गोंदे और मटियामेट हुए हो।
चाक पर कितनी भमरेटियों में कैसे-कैसे भचेड़े खाये हो।
अग्नि की लपटों में कैसी तपन झेली है तुमने।
जो जितना निखरता है उतना ही खरा होता है।
खरे में कोई खोट नहीं होती

वह अकेला हो चाहे अनंत कोई फर्क नहीं पड़ता।
दीपक तुम कितने नन्हे लघु-लघु और अरूप हो।
मगर तुमने दुनियां को आत्मसात किया है।
कितना घना अंधकार पिया है तुमने
तुम्हीं दे सकते हो इतना प्रकाश, उज्ज्वल उजास।
तुम्हीं हो सकते हो अकूत सामथ्य की संभावनाओं वाले दीपक।
तुम्हीं बिखेर सकते हो इतना हास।
तुम्हीं रचा सकते हो इतना रास।
सबसे दूर सबके आसपास।

-352 श्रीकृष्णपुरा, सेंटपॉल स्कूल के पास उदयपुर-313001,
मो. 9351609040

कविता

हरिवंशराय बच्चन की कविताएँ

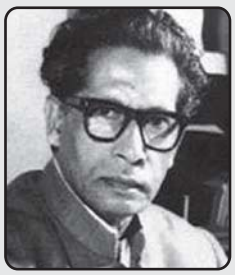

हरिवंशराय बच्चन

ललित कांगड़ा कलम

ललित काँगड़ा कलम कलित के रसिक-सुजान चलानेवालो !
देख तुम्हारी रेखाओं में जो चिकनाहट, चटक, सफाई,
घेर, घुमाव, कसाव, ढलावट लोच, लटक, बल, मोड़, निकाई
सोच नहीं पाता हूँ कितनी सहलाई होगी जीवन की
काया तुमने, भर हाथों में प्यार, कला के नाम निहालो !
ललित काँगड़ा कलम कलित के रसिक-सुजान चलानेवालो !

अपनी मर्मस्पर्शी तूली से तुमने जो रूप निखारे,
वे मेरे नयनों में झूमे, घूमे कितने साँझ-सकारे,
उनकी करता खोज फिरा हूँ कितनी रातों, कितनी राहों
पर ऊँची, नीची पथरीली, तुम बतलाओ, पग के छालो !
ललित काँगड़ा कलम कलित के रसिक-सुजान चलानेवालो !

फलक-रंग ये पलक समाते तो भी भाव-तरंग उठाते.
पर ये पहुँच निकट श्रवणों के यौवन का आख्यान सुनाते;
मेरी पंक्ति पंक्ति में गुंफित हो ऐसा ही एक फसाना,
मैं तुमसे सीखूँ, समझूँ कुछ, मुझको अपने बीच बिठा लो ।
ललित काँगड़ा कलम कलित के रसिक-सुजान चलानेवालो !

जीवन क्या है? और कला क्या? क्या युग का मन मंथन करता
ऐसा वर्त कहाँ जो तीनों को अपनी बाहों में भरता,
मैं इसको अंकित करने में असफल ही होता आया हूँ,
मेरा अथिर, अनिश्चित, कम्पित
हाथ पकड़कर आज सँभालो।
ललित काँगड़ा कलम कलित के
रसिक-सुजान चलाने वालो।

भुवनेश्वर की प्रणय पत्रिका

भवनेश्वर की प्रणय-पत्रिका
लिखने वाली, ओ पाषाणी।
माना मैंने पलक उठाकर देख नहीं मुझको पाओगी,
किन्तु न था विश्वास कि मेरी बोली को भी बिसराओगी,
भोली, अपने निर्माता को ऐसे भूल नहीं जाते हैं;
क्या कहलाओगी फिर मुझसे पूर्व जन्म की पूर्ण कहानी?
भुवनेश्वर की प्रणय-पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी।

जाना था तुम फिर न मिलोगी पर आशा थी लिखकर पाती,
कभी बताओगी, पूछोगी, क्या कहती, क्या सहती छाती;
एक तुम्हारा रूप रात-दिन आँखों में नाचा करता था
बैठ कहीं तुम नीरव रेखा के अन्दर भरती हो वाणी !
भुवनेश्वर की प्रणय-पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

पर न कभी जब पाती आयी तब वह कल्पित रूप तुम्हारा
मैंने मन को दृढ़ करने को एक शिला को काट निखारा
हाथ रुका है, कलम थमा है, रमे हुए हैं दृग चिन्तन में;
कौन हृदय का भाव कि जिनके जोग शब्द की खोज, सयानी?
भुवनेश्वर की प्रणय-पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

क्या न मिलेगा, और अधूरी पाती पूरी हो न सकेगी?
जन्म-जन्म क्या उसको पाने को मेरी आशा तड़पेगी?
काश कलाधर तुम भी होती और प्रतीक्षाकुलता मेरी
एक अटल पत्थर के अन्दर मूर्तिमती करतीं, कल्याणी !
भुवनेश्वर की प्रणय-पत्रिका लिखनेवाली, ओ पाषाणी !

– ललित कला अकादेमी, नई दिल्ली, द्वारा पुस्तक 'कला और कविता' से साभार,
सौजन्य श्री प्रयाग शुक्ल, छायाचित्र : गुगल से साभार ■

पुस्तक समीक्षा

मालवा के भित्ति चित्र : कला की लोक स्मृति

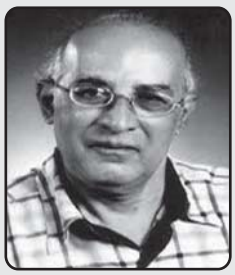

रमेश दवे

'मालवा के भित्ति चित्र' नामक ग्रंथ जितना पठनीय है उतना ही अपनी सौंदर्य काया में दर्शनीय और अवलोकनीय। ललित निबंधकार नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, कलाविद, पुरातत्वविद् और इतिहासविद् तो हैं ही साथ ही उनमें साहित्य-सर्जन की जो अन्तर्निहित प्रतिभा है वह विभिन्न विधाओं में परिलक्षित होती है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, महाराजकुमार डॉ.रघुवरसिंह, रायकृष्णदास, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय एवं अमृतलाल वेगड़ प्रभृति विद्वानों ने ललित एवं सांस्कृतिक निबंधों की जो साहित्यिक सृजना की उस परंपरा में हम आगे भी नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, रमेशचन्द्र शाह, श्यामसुंदर दुबे, श्रीराम परिहार आदि अनेक अध्ययनशील एवं अनुभव परिपक्व नामों की एक श्रृंखला पाते हैं। ललित निबंधों का एक रूप आत्म निबंधों में पाया जाता है। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की विशेषता यह है कि वे निर्जीव की जीवनगाथा रचते हैं, मुमुर्षु का उत्कर्ष रचते हैं, पुरातत्व के तत्व का अन्वेषण करते हैं. लोक स्मृति का पुर्नजागरण करते हैं और कलाओं के भूगर्भ से, केनवास से, भित्तियों से, मंदिरों एवं पुरा अवशेषों से बाहर लाकर हमारे समय में उनकी स्थापना करते हैं। यहां यह भी कहना महत्वपूर्ण है कि ऐसे कलात्मक सृजन से न केवल कलाएँ बल्कि मनुष्य, मनुष्य का सांस्कृतिक वैभव उसकी कला संवेदना और सौंदर्य दृष्टि चिरंजीवी होती है और वे हमारे आदि-गौरव को आधुनिक चेतना से जोड़ती है।

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय के पास एक सुरूचि संपन्न कलादृष्टि है, जिससे वे जो साहित्य रचते है वह सौंदर्य और रस का पर्याय बन जाता है। वे संकलक, संग्राहक और संपादक तो हैं ही साथ ही उनका अध्ययन और क्षेत्र-अनुभव इतना व्यापक एवं वस्तु संवेदी और जीवन-संवेदी है कि वे जिस विषय का स्पर्श करते हैं, वह विषय रससिक्त, ललित और लयमय हो उठता है। चित्रावलियाँ जहाँ जैन पुरा-सांस्कृतिक हो, बौद्ध हो, हिन्दु हो या इस्लामिक उनके वास्तुशिल्प एवं कलात्मक रचना विधान में नर्मदाजी इस प्रकार अवगाहन करते हैं कि उन कृतियों का मौन भी मुखर हो उठता है। यह उनकी भाषा और शब्द विन्यास का सौंदर्य भी है।

विश्व में शायद ही कोई देश हो जिसकी पुरा संपदा न हो और शायद ही कोई ऐसी भाषा हो जिसका साहित्य न हो। विज्ञान/तक्रालॉजी ने नये- नये आविष्कारों से मनुष्य की प्रवृत्तियों पर काफी प्रभाव तो डाला है लेकिन कला, साहित्य, इतिहास और संस्कृति का निषेध नहीं किया। देशभर में हम जहाँ भी जाते हैं। अनेक छोटे-छोटे गाँव तक में कुछ कलाकृतियाँ, चौक, मांडना, भित्ति चित्र, मूर्ति शिल्प आदि मिल जाते हैं। आगर-मालवा मध्यप्रदेश के पास एक नरवल नामक ग्राम में खंडित- अखंडित मूर्तियों का ढेर है और नरवल में एक चौमुखी मूर्ति के खंड है जिसे ब्रह्मा की मूर्ति कहा जाता है। आगर-मालवा जनपद में ही ग्राम बीजा नगरी है। जहाँ जैन मूर्ति शिल्प का ढेर फैला हुआ है। इसका भी नोटिस शोधकर्ताओं द्वारा लिया जाना चाहिए। इन स्थानों पर मैं स्वयं गया हूँ और स्वर्गीय प्रकाशचंद्र सेठी के सत्ताकाल में मैंने उन्हें पत्र लिखकर इस पुरा संपदा के संरक्षण का अनुरोध किया और उन्होंने तुरन्त कार्रवाई कर पुरावेत्ता विशेषज्ञों को भेजा भी था। ऐसे अनेक अज्ञात एकांतवासी पुराकला के स्मृति चिह्न जगह-जगह हो सकते हैं। स्व.वाकणकर ने जिस प्रकार की खोज भीमबैठका में करके आदिमानव के कलाबोध को अनावृत किया उससे देशभर में शैलचित्रों, शैल शिल्पों और पुरातत्वों की खोज का सिलसिला ही चल पड़ा महाबलीपुरम के पर्वतीय शिला एवं भित्ति शिल्प, मंदसौर के हिंग्लाजगढ़का पुरातत्व, उज्जैन, ग्राम कायथा एवं मालवा के अनेक क्षेत्रों का उत्खनन प्रमाण है कि हमारे पूर्वज केवल शिकारी ही नहीं थे, वे कलाकार भी थे। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय जी की पुस्तक 'मालवा के भित्तिचित्र' साक्ष्य हैं इस बात का कि कलाएँ लोकजीवन में किस प्रकार व्याप्त थी! भित्ति चित्र की इसी कला संपदा की चित्रात्मक प्रस्तुति और उपाध्यायजी का आलेखन आश्वस्त करता है कि इतिहास या परंपराएं मृत संज्ञाएं नहीं हैं, वे सदा जीवन प्रवाह रचती रहती हैं। इतिहास और परंपराएं मिटती नहीं वे निरंतर नवीन होती रहती है।

मालवा-निमाड़ से सटी बाघ की गुफाएँ मध्यप्रदेश या मालवा निमाड़ क्षेत्र की अजन्ता कहलाती है। अजन्ता को एक यूरोपीय ने एक पहाड़ी की कगार पर खड़े होकर खोजा था। वर्षों पूर्व एक फिल्म बनी थी जिसमें यह

दर्शाया गया था कि अजन्ता के भित्ति चित्रों को रंग की पूर्ति पहाड़ पर खड़े होकर स्थानीय लोग रस्सी-बाल्टी द्वारा किया करते थे। कितना प्रामाणिक है यह, कह नहीं सकते लेकिन इतना अवश्य है कि अजंता यदि लोक कलाकारों का सृजन है तो उसमें लोक समुदाय का भी योगदान स्थानीय स्तर पर रहा है। मालवा हो या बाघ की गुफाएं, ये भी किसी एकल कलाकार की कृतियां न होकर सामुदायिक कला संयोजन का परिणाम हो सकती है।

नर्मदाजी चूंकि कलाओं में इतिहास या पुरातत्व देखते हैं वैसे ही इतिहास में कलाएँ खोजते और प्रस्तुत करते हैं। वे इस पुस्तक में इसलिए सर्वप्रथम मालवा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। आगे भित्ति चित्र परंपरा का विषद विवरण देते हैं। भित्ति चित्रों की एक परंपरा विवाह उत्सवों के दौरान भी देखी जाती थी और आज भी ग्राम कस्बों में एवं खासकर राजस्थान में देखी जा सकती है। स्थानीय कलाकार अपने वंश परंपरा में दरवाज़ों, बाहरी दीवारों, अंदर के प्रकोष्ठों, आँगनों, देव स्थलों में जो फ्री-हेण्ड ड्राइंग नीले-गहरे रंग से, पीले और लाल या कत्थई रंग से करते हैं और जिस प्रकार हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, पेड़-पौधे एवं पुष्प, ऊँट आदि का सहज चित्रण करते हैं वो आज भी अत्यंत रोचक और दर्शनीय लगता है। मैंने राजस्थान के चुरू, झुनझुनू, नवलगढ़, बीकानेर और जेसलमेर की हवेलियों में ऐसी स्थानीय एवं अस्थायी चित्रावलियाँ देखी हैं, यहाँ तक कि कई जगह राजस्थान का मिनिएचर आर्ट भी दीवारों पर नजर आता है। दीवारों पर बनें यह चित्र स्थानीय नहीं होते, ये बार-बार मिटाए जाकर नये बनाये जाते हैं ताकि उनके रंग-चमक बनी रहे।

जहाँ तक मालवा का प्रश्न है उपाध्याय जी ने बजरंगगढ़, राघौगढ़, नरसिंहगढ़, देवास, उज्जैन, इन्दौर, धार, माण्डव, अमझेरा, रतलाम, बाघ, दशपुर (मंदसौर), भानपुरा, नीमच, पिपलियाराव, जामुनियाराव आदि की सूची दी है एवं मालवा का मूर्तिशिल्प, मालवा की चित्रांकन परंपरा को भी प्रस्तुत किया है। परंपरा में तो हम इतिहास खोज लेते हैं लेकिन जो काम मूर्तिशिल्प में धार के मूर्तिकार फड़के साहब, सुवासरा में मूर्तिशिल्पी यावलकरजी, शुजालपुर में पेंटर मूर्तिकार स्व.हाड़ा, उज्जैन में वाकणकर साहब और उनके शिष्य रामचंद्र भावसार ने किया, वे भी विस्तृत विवरण और विवेचन की मांग करते हैं। इसी प्रकार काष्ठ-शिल्प में कवि नईम ने देवास में काम किया और इंदौर के कलाकार पेंटर, काष्ठ शिल्पी संतोष जड़िया ने किया, वह भी उल्लेखनीय है। यहाँ चूंकि भित्ति चित्र ही विषय है इसलिए कहा जा सकता है कि नर्मदाजी का यह श्रमसाध्य कार्य श्लाघनीय है।

इस पुस्तक का कलात्मक आकल्पन रंगीन चित्र प्लेटों के साथ भारत भवन और संस्कृति विभाग के विख्यात कलाकर्मी हरचंदनसिंह भट्टी ने किया है। मालवा कलम के जो लघुचित्र प्रस्तुत किये गये हैं वे भारत भवन भोपाल एवं वाराणसी से प्राप्त किये गये हैं। पुस्तक का मुख्य कवर इतना आकर्षक है कि लगता है जैसे पुस्तक स्वयं एक भित्ति हो और उस पर कलाकारों की तूलिका और ऊंगलियों ने प्राणी जगत से लेकर मानवीय स्थापत्य तक को जीवत कर दिया है।

पुस्तक के आंतरिक पाँच मुख पृष्ठ पुस्तक में प्रवेश के लिये आमंत्रित करते हैं। ऐसा लगता है जैसे यह भित्ति चित्र हमारी सांस्कृतिक आस्था के प्रतीक है। आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी भोपाल ने संस्कृति परिषद के अन्तर्गत इस पुस्तक का प्रकाशन किया। पुस्तक के संपादक अशोक मिश्र हैं जिनके अनवरत प्रयासों से नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने इस पुस्तक को संभव किया। उपाध्याय जी ने अपने निवेदन में भित्ति चित्रों का यह सौम्य सुंदर भित्ति कथापाठ रचते हुए भीमबैठका और चौथी-पाँचवी सदी में बनी बाघ की गुफाओं का विशेष उल्लेख किया है। और स्व.विष्णु श्रीधर वाकणकर की भीमबैठका खोज को रेखांकित किया है। पुस्तक में लगभग 950 अर्थात एक हजार से कुछ कम ही रंगीन चित्र देकर ऐसा लगता है लेखक और कलाकारों ने मिलकर पुस्तक को एक दर्शनीय आर्ट गैलेरी या कला संग्रहालय बनाकर मालवा के भित्ति चित्र, स्थापत्य, मंदिर, महल, राजा, रानी, त्यौहार, उत्सव, लोक उत्सव, लोकाचार, विवाह, देवी- देवता, पूजा-अर्चना, पशु-पक्षी, वन-उपवन, स्त्री-पुरुष सबके चित्रात्मक सौंदर्य को साकार कर दिया हो। लगभग पौंने चार सौ से अधिक पृष्ठों की यह वर्गाकार पुस्तक उत्कृष्ट आर्ट पेपर पर छपी है और लगभग नब्बे प्रतिशत पृष्ठों पर उपाध्यायजी ने मनोहारी विवरण विवेचन भी किया है। आदिवासी लोककला एवं बोली परिषद का यह प्रकाशन सच पूछा जाए तो एक सांस्कृतिक एवं कलात्मक अनुष्ठान है।

पुस्तक के अध्यायों की चर्चा के बिना यह वीक्षा अधूरी ही लगेगी! मालवा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में लेखक जहाँ भौगोलिक सीमाओं को प्रस्तुत करता है। वहीं अथर्ववेद, पाणिनि, स्कंधपुराण, वात्स्यायन आदि पुराण, जैन ग्रंथ, बिन्दुसार के पुत्र अशोक एवं अशोक के पुत्र महेन्द्र और संगमित्रा, कालकाचार्य, सातवाहन, उज्जयिनी एवं समुद्रगुप्त ऐसे अनेक ऐतिहासिक संदर्भो से मालवा की बौद्धिक और शौर्य कला और अध्यात्म परंपरा का भी विस्तृत चित्र प्रस्तुत करता है। मुगलकाल के हुमायूँ और औरंगजेब, 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, मध्यभारत और ब्रिटिश शासन, गुप्तकाल एवं उस काल के कलारूपों का विवरण जहाँ ज्ञानात्मक है वहीं मालवा के प्रति लेखक की नर्मदीय आत्मीयता भी है।

अगले अध्याय में मालवा की भित्ति चित्र परंपरा का सचित्र आख्यान है। शैल चित्र और प्रथम शैलचित्रों की खोज, शैलचित्रों के मालवा स्थित जिलेवार स्थान, शैलचित्रों का परिदृश्य, पशु-पक्षी, व्यक्ति, धर्म, भित्ति चित्र, भारतीय परिदृश्य, अजन्ता-साम्य बाघ की गुफाएँ एवं मध्यभारत, मध्यदेशीय, पुरातत्व परिवेश एवं चित्र श्रृंखला का जो सचित्र विवरण है वह आकर्षक है। बजरंगगढ़ चंबल क्षेत्र का एक ऐसा स्थल है जहाँ शैल चित्रों का होना एवं मंदिर की कलात्मक निर्मिति होना आश्चर्यजनक है जो उस जनपद के कला वैभव व लोककला का प्रतीक है। नरसिंहगढ़ और श्यामजी मंदिर और राजसी चित्रशैली के म्यूरल्स भी लुभावने हैं। उज्जैन वाले अध्याय में इतिहास, अध्यात्म, शिल्प, भित्ति चित्र, मूर्तिकला, ज्योतिष, उत्खनन परंपरा, तीर्थ महात्म्य, ऐतिहासिक वैभव, मौर्य, गुप्तकाल, इस्लामिक शासन, पुष्यमित्र, विक्रमादित्य और पुरातत्व साक्ष्यों का विवरण उज्जैन के प्रति एक गौरव भाव की अभिव्यक्ति है। सांदीपनि आश्रम एवं मंदिरों का शिल्प वैभव भी पठनीय है। उज्जैन इतिहास समृद्ध तो अवश्य है फिर भी उज्जैन के वर्णन के प्रति लेखक का आत्मीय आग्रह जुड़ा हुआ है। जबकि विदिशा, मंदसौर आदि जनपद अधिक समृद्ध रहे हैं। उज्जैन में भित्ति चित्रों की राजस्थानी अस्थायी उत्पाद शैली के चौक, मांडने चित्र तो हैं लेकिन भीमबैठका या बाघ की तरह नहीं है।

इंदौर का वर्णन दो प्रकार से है - एक तो उसका पुरा एवं मध्यकालीन इतिहास, होल्कर्स एवं अहिल्याबाई का शासन-प्रशासन, भवन शैली और

राजवंश की कला रूचियों का अत्यंत सुंदर चित्र है। जो लेखक के इतिहास ज्ञान का परिचायक है। राजवाड़ा के बाह्य और आंतरिक रूप को देखकर लगता है जैसे वह भित्ति चित्र का स्थापत्य हो। धार और राजा भोज परमार शासक जिले की बाघ गुफाएं आदि का वर्णन और लोकजीवन को लेखक ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है – 'जैसे धारा और माही नदी का जल एक हो गये हों।' माण्डु के लिये तो एक संपूर्ण अध्याय पुरातत्वीय समीक्षा और मध्यकाल के मालव इतिहास के वर्णन सहित आवश्यक हैं।

अमझरा की सुरम्य पर्वत श्रृंखला, भित्ति एवं छतकला का भी सुंदर विवरण है। रतलाम का भी पुरातत्व सैलाना के पास की शैल-मालाओं व घाटीवत क्षेत्र में प्राकृनिक आकृतियां व्याप्त है। बाध तो कला का एक वैभवशाली भण्डार है जिसे लिखने के लिए एक पूरा आलोचनात्मक कला विवेचन ग्रंथ आवश्यक है। बाघ में बाघ राष्ट्रीय पशु को छोड़कर वह सब कुछ है जो मनुष्य-जीवन से जुड़ा है और जो अजन्ता को बाघ में जीवित करता है। दशपुर, पिपल्या राव व भानपुरा, जामुनियाराव में मालवा की चित्रांकन परम्परा आदि का जो सचित्र वर्णन है उसको संपूर्ण ग्रंथ के साथ निहितार्थ देखा जाए तो लगता है कि नर्मदाजी ने मालवा को लिखते समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे लेखक भित्ति-चित्र-समाधि में लीन हो। ऐसा कलात्मक रूपांकन, मुद्रण, संयोजन और संपादन समाधि-प्रज्ञा में विलीन होकर ही अन्त:चक्षु से निहारना लगता है।

पुरातत्व, पूरा आख्यान, पुरा-इतिहास आदि ऐसे विषय हैं जिनमें एक ओर तो प्रकृति का विराट रूप होता है और दूसरी ओर मनुष्य का संस्कृति-बोध एक इतिहासकार तिथिवार घटनाक्रम, राजवंश, उनके उत्थान या पतन, युद्ध, महायुद्ध, तत्कालीन परिवेश, पर्यावरण, शिल्प, कला एवं अन्य समस्त प्रकार के उपलब्ध साक्ष्यों से क्षेत्र-विशेष की सांस्कृतिक एवं लोक-छवि तो प्रस्तुत कर सकता है लेकिन पुरातत्व ऐसा विषय है और अज्ञात-अनाम शैलचित्र ऐसी कथा है जो नाम, तिथि, वर्ष, शासन आदि से जानी न जाकर वैज्ञानिक शोध एवं स्थान की देव-मानव- प्रकृति के स्थापत्य और अस्तित्व से जानी जा सकती है। कार्बन टेस्ट और डी.एन.ए. ने काल-गणना तो कर दी है लेकिन व्यक्ति-कलाकार, निर्माण की निरन्तरता प्रारंभ से अंत तक का पता नहीं लगाया है। इसलिए ये कलाएँ कलाकार के व्यक्तिश: नामों से मुक्त सामाजिक अभियान की तरह हैं। ऐसे ग्रंथ लिखने में लेखक को केवल साक्ष्यों का सपाट एवं सूखा वर्णन नहीं देना होता बल्कि पुरातत्व को भी तत्व या दर्शन से जोड़ना होता है। शैलचित्रों पर म.प्र. के पूर्व मुख्य सचिव स्व.सुशीलचन्द्र वर्मा ने भी बहुन कार्य किया था संभव हो तो उनके शैलचित्रों के जो भी फोटोग्राफ परिवार से उपलब्ध हो सकें, उनकी भी कलात्मक प्रस्तुति की जा सकती है जिसे नर्मदाजी के साथ इतिहास एवं पुरातत्वविद् डॉ.नारायण व्यास को भी सहभागी बनाया जा सकता है।

हमारे देश में कला और विशेषकर चित्रकला, भित्ति चित्र, पेस्टल एवं चारकोल चित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्हें सामान्य कलाकार भी स्थानीय स्तर पर ही करते रहे हैं। मुधबनी, गौंड कला, कच्छ की भुजकला, तो इसके उदाहरण हैं साथ ही मालवा का यह कला-वैभव देखकर लगता है जैसे कलाओं के आकाश में एक नए आलोक का उदय हो रहा हो। डॉ.रामचंद्र भावसार और उनके अनुज डॉ.लक्ष्मीनारायण भावसार ने मालवा के मांडने, चौक और देवीय आभूषणों पर जो शोध किया है और अन्य अनेक लोक-कलाकार ऐसी भित्ति-चित्रावलियाँ रच रहे हैं, उनको नर्मदा प्रसाद जैसे समर्पित कलाविद् के निर्देशन में प्रोत्साहित एवं पोषित किया जाना आवश्यक है। मध्यप्रदेश लोक कला अकादमी में इस ग्रंथ के संपादक से यह तो उम्मीद जगा दी है कि इस प्रकार की कलात्मक कृतियों का प्रकाशन उन क्षेत्रों से भी किया जा सकता है जो अभी अदृश्य हैं या उपेक्षित हैं। वैसे साँची, खजुराहो, विदिशा, ग्यारसपुर, उदयगिरि, उदयपुरा, उदयेश्वर, (बासौदा-बरेठ), हिंगलाजगढ़ आदि पर काम हुआ है लेकिन इस पुस्तक को देखकर यह लगा कि क्वालिटी या गुणवत्ता के नाम पर हम व्यर्थ ही पश्चिम को अपना मॉडल मान बैठे हैं। यदि उपाध्यायजी, हरचन्दन सिंह भट्टी, लोककला परिषद एवं संस्कृति परिषद ऐसे कार्यों को संरक्षण देते रहे, तो मध्यप्रदेश आदिवासियों की कला से लेकर आधुनिक कलाओं के संसार में क्रांति कर सकता है। भारत भवन की स्थापना के पीछे तो उद्देश्य भी यही था कि लोक संस्कृति को इतिहास की कन्दराओं से निकालकर जन-प्रांगण में स्थापित और दृश्य किया जाए।

पुस्तक का चित्रों के साथ जो आलेखन है उसकी भाषाई प्रांजलता वस्तु-विषय प्रस्तुति और आकल्पन की पृष्ठभूमि आदि एक विस्तृत समीक्षा की मांग करते हैं। फिलहाल तो यही कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश में जे.स्वामीनाथन के सान्निध्य में पूर्व संस्कृतिविद् अधिकारी अशोक वाजपेयी से जो कला-साहित्य की परंपरा प्रारंभ की गई थी वह अभी जारी है और अन्य राज्यों के लिए अनुकरणीय भी । पुस्तक का प्रकाशन लोक कला परिषद भोपाल द्वारा किया गया है। एक भारी पुस्तक का भारहीन मूल्य मात्र रूपये 1200/- है। यदि यह निजी प्रकाशकों या विदेशों में छपती तो दस-बारह हज़ार रूपये मूल्य हो सकता था यह समीक्षा अभी तो एक स्थूल सूचनात्मक प्रस्तुति है। क्रिटिकल एनेलेसिस या आलोचनात्मक विश्लेषण एक संपूर्ण संगोष्ठी से ही संभव है। पुस्तक लेखन, सम्पादन, आकलन और प्रस्तुति से जुड़े सभी कलारसिकों को बधाई।

पुस्तक : मालवा के भित्ति चित्र
लेखक : नर्मदा प्रसाद उपाध्याय
संपादक : अशोक मिश्र
प्रकाशक : आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् भोपाल
मूल्य : रू. 1200/-
प्रकाशन वर्ष : 2018

- एस.एच. 19, ब्लॉक 8, सहयाद्रि परिसर, भदभदा रोड, भोपाल
मो.94076-73348

पुस्तक समीक्षा

भेड़ियों ने कहा शुभरात्रि

डॉ. संजीव जैन

मणि मोहन का नवीनतम काव्य संग्रह 'भेड़ियों ने कहा शुभरात्रि' उनके पिछले तेइस चौबीस सालों की कविता की विकास यात्रा का तीसरा चरण है। मणि मोहन लगातार चुप रहकर लिखने वाले कवि हैं। शोर शराबा और प्रसिद्धि की आकांक्षा से दूर एक 'कस्बे का कवि 'शायद' से होते हुए 'भेडियों ने कहा शुभरात्रि' तक आ पहुंचा है। अपने पहले कविता संग्रह 'कस्बे का कवि' में कवि एक सहज भाव-संपदा, कस्बाई जीवन की अनुभूतियों और बहुत छोटी छोटी महत्वाकांक्षाओं में जीवन को पिरोते हुए दिखाई देता है। इन कविताओं में जटिलता और उलझाव नहीं है। यद्यपि यह वह समय था जब कवि जीवन की जटिलताओं में अधिक उलझा हुआ था, परंतु यह जीवन उसका अपना था, जिसे वह चुनौती की तरह चुपचाप बिना किसी तरह के शोर शराबे के जी रहा था। 'शायद' तक आते आते कवि ने जीवन में नयी संभावनाओं की आहट को सुनना आरंभ कर दिया था। इसलिए इन कविताओं में हमें अनुभवों और विचारों की परिपक्वता दिखाई देती है।

आज का समय चौबीस साल पहले के समय जैसा सहज नहीं। जीवन में सुविधाओं ने अधिक जगह घेर ली है। सुविधाओं के साथ साथ खौफ और अनजाने डर ने भी जगह बना ली है। इस खौफ और अनजाने डर का अनुभव कवि समग्र जीवन में करता है और इसीलिए वह 'भेड़ियों के शुभ रात्रि' कहने की आहट को सुन पा रहा है और अपनी कविता में प्रतिध्वनित भी कर रहा है। कस्बा वही है पर अब कस्बे में भेड़ियों की आहट सुनना कवि की जागरूक चेतना और खतरों को भांपने की क्षमता को बताता है। कवि अपने समय और सामयिकता के प्रति कितना सजग है यह उसके तीनों काव्य संग्रहों के अध्ययन से समझा जा सकता है।

मणि मोहन अपने कविता कर्म के प्रति काफी संवेदनशील हैं। उनके तीनों संग्रहों में कविता पर कविता संकलित हैं दूसरी बात यह कि वे कविता की भाषा को लेकर भी कविता में अक्सर टिप्पणी करते हैं। इस संग्रह में एक कविता है 'निर्वस्त्र' यह कविता की भाषा और कवि कर्म दोनों पर एक गहरी चिंतनपूर्ण टिप्पणी है – 'अपने चेहरे/ उतारकर रख दो/ रात की / इस काली चट्टान पर/..कपड़े भी !/ अब घुस जाओ निर्वस्त्र/स्वप्न और अंधकार से भरे/ भाषा के वीहड़ में../ कविता तक पहुंचने का / और कोई रास्ता नहीं/ सिवा इसके/' कवि होने का मतलब है अपनी वर्तमान पहचान को देना। चेहरे उतारकर रखने का यही मतलब है। जब तक लेखक अपनी सतही पहचान को महसूस करता रहेगा वह भाषा के अंतर्य में पैठ नहीं बना सकता। इलियट ने निर्वैयक्तिकरण का सिद्धांत दिया था। यह कविता इसी तरह बात कर रही है। भाषा के वीहड़ में घुसे बिना कविता तक नहीं पहुंचा जा सकता है। भाषा ही जीवन के अंतर्य या सारतत्व तक पहुंचने का माध्यम है। भाषा हमारे चिंतन और विचारों का आधार है तो कवि को भाषा के बीहड़ में उतरना ही होगा। अन्यथा सतही कविता रची जायेगी मणि अपनी कविता की भाषा के प्रति बहुत सचेत हैं।

वे जीवन के आसपास बिखरे अनुभवों को बिम्बों में बदलना जानते हैं। उनके आसपास एक प्राकृतिक संसार है जिसमें छिपकली, गौरैय्या, तोता, गिलहरी, चींटियां और फूल पत्ते और हाशिये पर पड़े लोग हैं। उनकी कविता में यही जीवन जीवंत हो उठता है। पत्नी का पूजाघर और बच्चों की खिलखिलाहट है। रिश्तों का अद्भुत संसार है। सब्जी बेचने वाले और साइकिल रिक्शा चलाने वालों का एक पूरा संसार है। यही वे ही हाशिए पर पड़े लोग हैं जो मणि के काव्य संसार को जीवंत करता है। आत्महत्या करते किसान हैं, बलात्कार की शिकार स्त्रियों की अनसुनी चीखें हैं, बर्बरता है जो सिर्फ देह का मामला नहीं होता। बारिश की बूंदें हैं, चांद है जो अनेक रूपों में बिल्कुल नये संदर्भ में भी सामने आता है जब वे लिखते हैं कि 'दरिंदे बहुत रसूख वाले रहे होंगे। बलात्कार के बाद वे लड़की की लाश को चांद पर फेंक आते।' चांद का इस तरह कविता में आना 'मुक्तिबोध की चांद का मुंह टेड़ा' को अलग तरह से जीवंत करने वाली कविता है।

कविता की भाषा पर ये टिप्पणियां इस रूप में होती हैं जैसे वे यह कहते हुए लगते हैं कि कविता की भाषा आम आदमी और खासतौर पर आम संघर्ष रत स्त्रियों के पास होती है। कविता को कविता बनाने वाली भाषा के बारे में यह कवितांश जो 'एक पागल स्त्री' का है देखिये – 'और हां! उसके पास /इस संसार की/ लुप्त हो चुकी / एक भाषा भी थी।' मणि यह अनुभव करते हैं कि जीवंत भाषा जिसमें कविता लिखी जाने की अपार संभावनाएं हो सकती हैं

वे हाशिये पर पड़े लोगों के पास ही होती है। यही कारण है कि वह भाषा 'हाशिये पर बैठ कर/ मैंने भी लिखी है/ अभी अभी एक कविता/' कहते हैं और वाकई उनकी कविताओं में हाशिये का जीवन जीवंत हो उठा है।

'सिर्फ तिनकों के सहारे/ नहीं बनते घोंसले–/ देखो जरा गौर से/ इस सृष्टि को/ कुछ टूटे हुए पंख भी/ दिख जायेंगे । इधर उधर।' यह एक दार्शनिक कविता के रूप में भी पढ़ी जा सकती है। बहुत ही सटीक बिम्ब चुना है कवि ने सृष्टि के निर्माण के लिए श्रम के समर्पण का। यह एक विशुद्ध श्रम के मूल्य के मार्क्स के सिद्धांत को रूपायित करती कविता है। जो लोग यह मानते हैं कि कच्चा माल (तिनका) हो तो चीजें तो बन ही जाती हैं। यह पूंजीवादी सोच है जो श्रम के मूल्य सिद्धांत को नकारकर उसके शोषण को छिपाती हैं। पर मणि ने बहुत ही धारदार और संवेदनशील तरीके से बात कह दी कि सिर्फ तिनकों से घोंसले नहीं बनते। टूटे हुए पंख श्रमशक्ति के प्रतीक हैं। 'टूटे हुए' को श्रमशक्ति के शोषण के रूप में या निवेश के रूप में पढ़ा जा सकता है। जीवन मानवीय श्रम के लगातार काम करने से चलता है और हमें उसका सम्मान करना चाहिए।

एक कविता है इस संग्रह में खबर 'अचानक मिलती है/ मृत्यु की खबर / और हम चौंक जाते हैं / बेफ्रिक देह पर। जैसे कहीं ऊपर से / आ गिरे / कोई लिजलिजी छिपकली!' मृत्यु की खबर आज कल आम बात हो गई है। पर जब अपने आसपास कोई ऐसी खबर मिलती है तो हम किस तरह चौंकते हैं? यह चौंकना देह पर छिपकली के गिरने जैसा महसूस होता है। इसमें छिपकली का गिरना जितना अचानक होता है मृत्यु की खबर भी ऐसी ही अचानक मिलती है दोनों ही स्थितियों में हम अपने ऊपर एक अजीब सा अनुभव करते हैं। यह बोध कस्बे के कवि को सैकड़ों बार होता है। यह कस्बे का अनुभव है, क्योंकि कस्बे में हर मरने वाला कहीं न कहीं सबसे जुड़ा होता है, और उसकी मृत्यु सबको चौंकाती है भले ही हमारा उससे कोई सीधा सम्बन्ध न हो तब भी। यह मृत्यु बोध कवि को पीड़ित करता है, विचलित करता है।

इस संग्रह में 'हाशिया' शीर्षक से तीन कविताएं हैं। हाशिये पर होने का अनुभव कवि की निजी अनुभूति भी हो सकती है। परंतु हम इन कविताओं में हाशिये पर होने के प्रति कोई हीनताबोध नहीं पाते हैं। बल्कि इसके उल्ट वह हाशिये पर डटे लोगों को आत्मगौरव से युक्त और संघर्षरत प्रस्तुत करता है – 'रोशनी की कथा में / दूर तक पसरा है । अंधियारा / गनीमत है/ कि हाशिये पर ही सही / इस अंधेरे से / लड़ तो रहा है। मिट्टी का एक दीया / 'रोशनी की कथा' अपने व्यापक संदर्भ में संपूर्ण विकास की चमक को रेखांकित करती पंक्ति है। इस ऊपरी चमक और न्योनलाइटों की रोशनी के विकास की कथा में अंधियारे का दूर तक पसरा होना' संपूर्ण विकास यात्रा पर सवाल खड़ा करती है। हम सब इस दूर तक पसरे अंधियारे का अनुभव पूरी शिद्दत से करते हैं और यह लेख लिखे जाने के समय मजदूरों का महाभिनिष्क्रमण इस अंधियारे की सच्चाई को पूरी तरह प्रस्तुत करता है।

इस अंधकार में एक मिट्टी का दीया जो हाशिये पर है मुख्य धारा से जिसे हटा दिया गया है, वह अंतत: लड़ रहा है। यहां एक स्वाभाविक रोशनी का एक कृत्रिम रोशनी से द्वंद्व दिखा कर कवि ने एक आधुनिकता और परंपरा के द्वंद्व को उभारा है।

'हाशिया एक' में वह लिखता है कि 'आओ / सब बैठ जाओ / बहुत जगह है / हाशिये पर/' यह लगातार सिकुड़ते जा रहे आधुनिक संसार के खिलाफ एक हाशिये का प्रगतिशील कदम है। हम आज बड़े बड़े महलनुमा बंगले देखते हैं शहरों में परंतु उनमें अपने मां बाप को भी रहने की जगह नहीं होती है। स्थान बहुत है आधुनिकता में लोगों के पास पर 'स्पेस' नहीं है जगह नहीं है। कवि इस कविता में हाशिये पर बहुत जगह है सब समा सकते हैं यहां अपने भी प्यारे भी यह 'बहुत जगह' का मुहावरा कस्बे का कवि ही कह सकता है।

एक कविता है 'बीमार'। यह कविता बहुत छोटी है। पर बहुत बड़ी है। इसे पढ़कर मुझे एरिक फ्राम की एक पुस्तक 'द सेन सोसायटी' याद आई। इस किताब में अमेरिकी समाज का मनोविज्ञान अध्ययन है। इसमें यह बताया गया है कि पूरा सेन समाज बीमार है। इस पूरी किताब का सारांश मणि की 'बीमार' कविता में सघनीकृत होकर आ गया है। कविता कुछ ऐसी है – 'एक बूढी स्त्री ने / जब अपनी दवा की पर्ची के साथ/ अपने बेटे की तरफ / एक मुडा तुडा नोट भी बढ़ाया / तो अहसास हुआ / कि ये दुनिया / वाकई बीमार है।' दर असल आधुनिकता ने हमें 'बीमार समाज' समाज में बदल दिया है। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य और सत्य है। देखने में समृद्धि के कंगूरे बहुत दिखाई देते हैं पर मानसिक रूप से पूरा समाज अंदर ही अंदर सड़ चुका है। इस सड़ांध को कवि गहरे तक अनुभव करता है। नगरीय जीवन में यह सड़ांध और अधिक बदबूदार होती जा रही है।

कवि राजनीतिक रूप से सजग और समृद्ध है। हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था कितनी अलोकतांत्रिक है इसे हम समय समय पर महसूस करते हैं और आज के माहौल में मजदूरों की भूख और लोकतांत्रिक व्यवस्था का खोखलापन हम देख रहे हैं। कवि की यह पंक्तियां – इस लोकतंत्र के तमाशे में / भूख अभी भी / पहले पायदान पर हैं। एक तीखी प्रतिक्रिया के रूप में सामने आती है। लोकतंत्र कितना अलोकतांत्रिक है यह हमें इन पंक्तियों में दिखाई देती हैं।

आज के समय के प्रति कवि की आलोचनात्मक चेतना कितनी तीखी है इसके लिए उनकी कविता 'वातानुकूलित कोच' को पढ़ा जाना चाहिए। वातानुकूलित कोच सुविधाओं का प्रतीक है। एक बंद जगह जहां न प्राकृतिक हवा है न स्वाभाविक जीवन है। इस बंद कारागृह को कवि 'एक सामूहिक कब्रगाह की तरह महसूस करता है – कि एक सामूहिक कब्र में / लेटा हूं मैं / उन लोगों के साथ / जो मारे गये / सिर्फ अपनी खामोशी की वजह से / यह बहुत सटीक आलोचना है आधुनिक जीवन की जहां प्रतिरोध गायब होता जा रहा है, बोलना असभ्यता माना जाता है। चुपचाप रहना। चुपचाप सहन करना और मर जाना ही जहां संस्कृति हो वहां एक सजग कवि कब्र में सोया हुआ ही महसूस करेगा।

मणि की कविताएं जीवन की अकृत्रिम भाषा और सहज अनुभवों से उपजी हैं। उनके बिम्ब, प्रतीक और दृश्य सभी कुछ इतने परिचित और सहज संवेद्य होते हैं कि ऐसा लगता ही नहीं की हम एक जटिल और कृत्रिम समय के कवि को पढ़ रहे हैं।

पुस्तक : भेड़ियों ने कहा शुभरात्रि लेखक : मणि मोहन, प्रकाशक : बोधि जन संस्करण, मूल्य : रू. 150/–

– समीक्षक, उच्च शिक्षा विभाग मध्यप्रदेश में हिंदी के प्राध्यापक हैं।

■

भेटवार्ता

सुप्रसिद्ध गायिका मालविका भट्टाचार्य से पं. विजय शंकर मिश्र की भेंटवार्ता

कोरोना काल में सबसे ज्यादा प्रभावित मध्यवर्गीय संगीतकार हुए हैं -मालविका भट्टाचार्य

न केवल देश की बल्कि एक तरह से संगीत की भी राजधानी है दिल्ली। और, इसी दिल्ली के पड़ोस में है साहिबाबाद- जहां रहती हैं देश की सुप्रसिद्ध गायिका मालविका भट्टाचार्य पिछले 15 वर्षों में मालविका भट्टाचार्य से मिलने और उनके भावपूर्ण, प्रभावशाली गायन से भावविभोर होने के कई अवसर मुझे मिले। मैंने उनसे कहा भी कि आपसे एकबार बातचीत करनी है। उन्होंने सहर्ष सहमति भी व्यक्त की... इस बीच उनकी और मेरी भेंट भी होती रही, वार्ता भी होती रही, लेकिन भेंट वार्ता नहीं हो पाई। अंततः वह भेंटवार्ता पिछले दिनों संपन्न हो पाई।

मालविका बताती हैं कि उनके पिता असम के डिगबोई में कार्यरत थे। मालविका का मन शुरु से ही संगीत में रमता था। वे हंसकर कहती हैं- 'बंगाली परिवारों में यूं भी संगीत के प्रति एक प्रेम और आकर्षण का भाव रहता है। मेरी मां भी शौकिया तौर पर गाया करती थीं। अतः जब उन्होंने मेरा रुझान संगीत के प्रति देखा तो मुझे धीरे-धीरे सिखाने लगी... उस समय मैं जो भी गीत सुनती थी, उसी को गाने लगती थी। अतः उनमें गलतियां भी होती थीं। मां उन्हें भी ठीक करती थीं। शिक्षा का क्रम इसी तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहा। बाद में जब मेरे माता-पिता ने देखा कि मैं संगीत में कुछ ज्यादा ही रुचि ले रहीं हूं.... जिस समय मेरी सहेलियां तरह-तरह के खेल-खिलौनों में व्यस्त रहती थीं उस समय मैं संगीत का रियाज कर रही होती थीं। तब, मेरी उम्र सिर्फ छह-सात वर्ष की थी, लेकिन... संगीत के प्रति मैं पूरी तरह गंभीर थी अतः मेरे माता-पिता ने मुझे शहर के सबसे अच्छे अध्यापक श्री दुर्गेश ब्रह्मचारी की शिष्यता में सौंप दिया। अतः मेरी संगीत शिक्षा विधिवत् चलने लगी साथ-साथ पढ़ाई भी चल रही थी। पहले स्कूल और फिर बाद में कॉलेज के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी मैं भाग लेने लगी, जिनमें मिलनेवाले पुरस्कारों से मेरा उत्साह और बढ़ता रहा। धीरे-धीरे मैंने पढ़ाई और संगीत दोनों में अच्छे अंकों से स्नातक की परीक्षायें उतीर्ण की।'

इसके बाद मालविका का विवाह हो गया। वे कहती हैं- 'यह मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है कि मेरे पति कल्याण भट्टाचार्य न केवल मुझसे बल्कि मेरे संगीत से भी बहुत प्यार करते हैं। अपने ससुराल में आकर मुझे ऐसा लगा जैसे मैं अपने ही एक घर से दूसरे घर में आ गई हूं मुझे अपने माता-पिता से अधिक स्नेह अपने सास-ससुर से मिला।' फिर, अचानक बात बदलते हुए मुझसे कहती हैं- 'इस बात के तो आप भी गवाह हैं कि मेरे ससुरजी जब तक जीवित रहे, मेरे साथ मंच पर तानपूरा लेकर बैठते रहे। ऐसा सौभाग्य भला कितनी भारतीय महिलाओं को मिलता है आप ही बताइये? हमारे भारतीय समाज में तो महिलाओं को करुणा, प्रेम और त्याग का प्रतीक बनाकर उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी सारी खुशियां, सारे शौक, सारे अरमानों को त्याग दें। विवाहोपरांत कितनी ही विख्यात महिला कलाकारों को अपने घर-परिवार की खुशियों के लिये अपनी खुशियों की बलि देनी पड़ी है। इससे तो आप भी भली भांति परिचित हैं और संगीत जगत् भी। इसलिये मैं अपने पति और ससुराल पक्ष के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना अपना धर्म समझती हूं।'

मालविका भट्टाचार्य वार्ता को दूसरी दिशा में मोड़ते हुए कहती हैं-

संगीत में सीखने का सिलसिला सदा चलता रहता है। मैं ने भी साहिबाबाद आने के बाद सीखने का क्रम जारी रखा, और विदुषी विमला गुप्ता, उस्ताद सरफराज हुसैन खां, पं. बसंत ठकार तथा विदुषी सुमित्रा गुहा का आशीर्वाद तथा मार्गदर्शन प्राप्त करती रही...

मैं पूछता हूं- 'आप जब सीखती थीं तब, और आज जब- दर्जनों लोगों को आप गायन की उच्चस्तरीय शिक्षा दे रहीं है- तब- की स्थिति में आप क्या अंतर अनुभव करती हैं?' उत्तर में मालविका हंस पड़ती हैं- मेरी बात बिल्कुल अलग थी और अलग है। मुझे गाना अच्छा लगता था इसलिये मैं ने गाना सीखा और गाना अच्छा लगता है इसलिये गाती हूं। उस समय मेरा कोई ऐसा सपना या उद्देश्य नहीं ही था कि मुझे मंच पर या टी. वी. शोज में गाना है। बल्कि तब तक तो असम में टेलीविजन पहुंचा भी नहीं था और रियालिटी शो का सिलसिला तो सोच में भी नहीं था किसी के। लेकिन, आज के बच्चे

निरुद्देश्य कुछ भी नहीं करना चाहते हैं। हमने हमेशा कर्म को प्रधानता दी फल की चिंता कभी भी नहीं की। जबकि, आज के जागरुक बच्चे पहले फल की चिंता करते हैं और फिर कोशिश करते हैं कि कर्म जितना कम करना पड़े उतना ही अच्छा है। यपि इनके पास प्रतिभा बहुत है। लेकिन, धैर्य नहीं है। टिककर कोई काम नहीं करना चाहते हैं। मालविका भट्टाचार्य भारत सरकार की नई शिक्षा नीति से उत्साहित हैं। वे चाहती हैं कि बच्चों को शुरु से ही किसी-न-किसी कला, खेल और योग की शिक्षा दी जानी चाहिये। यह जरुरी नहीं है कि हर बच्चा आगे चलकर कलाकार या खिलाड़ी बने- लेकिन अगर उसके अंदर कला के गुण मौजूद हैं, स्पोर्ट्समैन है- तो वह जिंदगी की सारी कठिनाइयों का डटकर न केवल मुकाबला कर पायेगा वरन् विजयश्री भी हासिल करेगा।' मालविक कहती हैं- 'कोरोना काल में सबसे ज्यादा प्रभावित मध्यमवर्गीय संगीतकार हुए हैं। उनके ट्यूशन्स और कार्यक्रम बंद हो गये। जिन प्राईवेट स्कूलो में वे काम करते थे वहां से अधिकतर को निकाल दिया गया है उनके लिये किसी प्रकार के राहत की कहीं से कोई खबर नहीं आ रही है कुछ छिटपुट संगीतकार जरुर अपने स्तर पर अपने सीमित संसाधनों से उनकी सहायता कर रहें हैं। किंतु यह सहायता ऊंट के मुंह में जीरे जैसी है। लेकिन, इन सबके बावजूद अनेक संगीतकार लगभग रोज अपने फेसबुक लाईव कार्यक्रमों की मदद से लोगों का स्वस्थ मनोरंजन कर रहें हैं बिना किसी मानदेय के। आप ही बताइये कि आज जब पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था चरमरा गईं है, तब भी बिना किसी आर्थिक लाभ के संगीतकारों के अलावा भला और कौन लोग काम कर रहें हैं?'

शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत और सुगम संगीत तीनों में समान अधिकार से गानेवाली मालविका की एक बड़ी विशेषता भाषा और उच्चारण की शुद्धता भी है। असम में पली-बढ़ी और पढ़ी तथा बांग्लाभाषी होने के बावजूद ये न केवल हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं बल्कि उर्दू का उच्चारण भी बिल्कुल सही करती हैं इसलिये, इनके गायन का दायरा भी बहुत बड़ा है। खयाल, तराना, ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती, झूला, होली, गीत, गज़ल और भजन आदि के साथ-साथ रवींद्र संगीत, नजरुल गीत और असमिया गीतों का भावपूर्ण गायन करती हैं मालविका।

देश के अनेक भागों में आयोजित कई प्रतिष्ठित कार्यक्रमों में अपनी प्रभावशाली प्रस्तुतियां दे चुकीं मालविका ने संगीत अलंकार की परीक्षा में जहां

पूरे देश में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया था, वहीं संगीत संध्या (गौतम बुद्ध नगर) द्वारा उन्हें सर्वश्रेष्ठ गायिका का तो 'सम' (दिल्ली) द्वारा संगीत रत्न का सम्मान मिल चुका है। वे कहती हैं- 'संगीत संध्या, राग रंजनी और संकल्प आदि के कार्यक्रमों में गाना मुझे बहुत अच्छा लगता है। क्योंकि, वहां का माहौल बड़ा ही आत्मीय रहता है इसी तरह 'सम' द्वारा दिल्ली, मेरठ, कानपुर और बनारस आदि में आयोजित संगीत समारोहो में गाना जहां सम्मानजनक लगता है वहीं गाने से पहले एक घबड़ाहट भी होती है। क्योंकि सम के कार्यक्रमों में हर बार नये और स्थानीय संगतकारों के साथ प्रस्तुतियां देनी पड़ती हैं, और श्रोताओं-दर्शकों के रुप में भी कई महान् संगीतकार उपस्थित होते हैं। सप्तसुर (कोलकाता) और सप्तक (अहमदाबाद) में भी सुधी श्रोताओं, दर्शकों की उपस्थिति में गाकर मुझे बहुत खुशी हुई।

मेरे यह पूछने पर कि- आप महिला संगीतकारों से कुछ कहना चाहेंगी?

मालविका भट्टाचार्य कहती हैं- 'हर सफल महिला के पीछे एक-न-एक पुरुष अवश्य होता है।' और उनकी प्रेमिल निगाहें उनके पति कल्याण भट्टाचार्या पर टिक जाती हैं।

- पंडित विजयशंकर मिश्र
'शंकरा' 705 - डी/21 सी, वार्ड न. 3, महरौली, नई दिल्ली -110030
दूरभाष-09810517945, ई-मूल anhad.sam@gmail.com

■

कविता

बृज श्रीवास्तव

त्यौहार

चलो, नहीं करना मुझे फोन
ज़रूरी भी नहीं है देना औपचारिक
सी शुभकामनाएँ
जब यादों में कौंध ही जाऊँ मैं
तो बस इतना कर देना
एक क्षण को भला सोचना मेरे लिए
मुझे यहाँ एक तरंग मिल जाएगी
मैं भी छोड़ दूंगा एक तरंग इसी तरह
हो जाएगा त्यौहार।

-233, हरीपुरा, विदिशा (म.प्र.)

पं. सज्जन लाल ब्रह्मभट्ट 'रसरंग' की सुयोग्य शिष्या: डॉ. दीप्ति गेड़ाम परमार

गुरू शिष्य परम्परा की होनहार सुयोग्य शिष्या अपने गुरू प्रो. पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट के सानिध्य में रहकर देश-भर में गुरू का नाम रोशन किया। डॉ. दीप्ति गेड़ाम परमार का जन्म संगीत की ऐतिहासिक नगरी ग्वालियर में 4 अगस्त 1985 को हुआ। डॉ. दीप्ति ने संगीत की प्रारंभिक शिक्षा आपके पिता श्री प्रकाश गेड़ाम एवं श्रीमती इंद्रा गेड़ाम द्वारा उम्र के 4 वर्ष से आरंभ हुई। वर्तमान में ख्याल-गायन के विभिन्न अंगों के निर्वाह में कुशलता प्राप्त कलाकारग्वालियर घराने की गायकी में विशेषत: दक्ष कलाकार के रूप में देश के विभिन्न संगीत समारोहों में उल्लेखनीय प्रदर्शन कर रही हैं ग्वालियर घराने के सुप्रसिद्ध गायक पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट रसरंग से ख्याल-गायकी एवं ठुमरी, टप्पा, दादरा, चतुरंग, त्रिवट आदि का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हैं।

गायन की उच्चस्तरीय शिक्षा :

पं.सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट रसरंग के मार्गदर्शन में बरकतउल्ला विश्वविद्यालय भोपाल से संगीत विषय में 'मध्यप्रदेश के धुपद-गायक, उनकी शिष्य-परंपरा एवं ख्याल-शैली में योगदान' में पीएच. डी. उपाधि प्राप्त की। भोपाल में पं. सज्जनलाल ब्रह्मभट्ट रसरंग के सान्निध्य में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन में एम. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। ग्वालियर में डॉ.प्रभाकर गोहदकर से शास्त्रीय गायन का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया एवं उनके सान्निध्य में कोविद परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। भोपाल में उस्ताद सरवत हुसैन एवं ग्वालियर में श्रीमती नीलिमा शर्मा से सुगम संगीत की तालीम हासिल की।

विशेष उपलब्धियाँ :

अखिल भारतीय आकाशवाणी एवं दूरदर्शन की 'बी हाई' ग्रेडेड कलाकार। सुर सिंगार संसद मुंबई द्वारा आयोजित 'कल के कलाकार सम्मेलन 2009' में सुरमणि उपाधि प्राप्त की। सन् 2007 में आयोजित 12वाँ राष्ट्रीय युवा महोत्सव पुणे में शास्त्रीय संगीत (हिन्दुस्तानी गायन) में स्वर्ण पदक प्राप्त किया। संस्कृति - स्त्रोत एवं प्रशिक्षण केन्द्र, नई दिल्ली द्वारा हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन हेतु सांस्कृतिक प्रतिमा खोज छात्रवृत्ति वर्ष 1997 से वर्ष 2005 तक प्राप्त की। लता मंगेश्कर अलंकरण समारोह, राज्य स्तरीय, सुगम संगीत प्रतियोगिता इन्दौर में आयोजित वर्ष 2002,16 से 25 आयु वर्ग में प्रथम पुरस्कार प्राप्त। 'कला सम्मान' - वर्ष 2002 में महिला दिवस पर भारतीय स्टेट बैंक ऑफ इन्दौर द्वारा प्राप्त। सप्तक फाईन आर्ट्स सोसायटी मध्यप्रदेश उर्दू अकादमी भोपाल शास्त्रीय गायन प्रतियोगिता वर्ष 1997 में प्रथम पुरस्कार तथा वर्ष 1998 में गीत-भजन, गजल एवं शास्त्रीय गायन में प्रथम पुरस्कार प्राप्त, यादें 2011. भारतीय स्टेट बैंक केन्द्रीय कार्यालय मुंबई द्वारा आयोजित राष्ट्रीय स्तर शास्त्रीय गायन प्रतियोगिता वर्ष 1997 में बैंगलोर में प्रथम पुरस्कार प्राप्त।

विशेष प्रस्तुतियाँ :

ग्वालियर घराने की गायकी में विशेषत: दक्ष कलाकार के रूप में देश के विभिन्न संगीत समारोहों में शिरकत की। 'काकली संगीत सम्मेलन' काकली संगीत संस्था भोपाल, 2020. 'पं. वासुदेव मिश्रा संगीत समारोह' सीहोर - संगीतिका संगीत महाविद्यालय सीहोर, 2019. 'उत्तराधिकार' मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय भोपाल 2018. 'गुरू पूर्णिमा संगीत महोत्सव'- शासकीय संगीत महाविद्यालय मंदसौर 2017. 'फागुन आयो रे' संगीत समारोह भोपाल, कला समूह भोपाल, 2017. 'संगीत उत्सव' रामकृष्ण आश्रम मिशन भोपाल, 2017. 'संगीत समारोह' - वार्षिकोत्सव 2016, काकली संगीत महाविद्यालय भोपाल, 2017. 'सुर वाणी' - होराईजन श्रृंखला, आई.सी.सी.आर. भोपाल, 2015. 'कल हमारा है' - मधुकली संस्था, भोपाल, 2014. 'आरंभ' - भारत भवन, भोपाल, 2014. 'संगीत निशा' - साईना कॉलेज, कटनी, 2014. 'गायकी के रंग' - सप्तक फाइन आर्ट्स सोसायटी भोपाल, 2013. 'ज़रा उम्रे-रफ़ता को आवाज़ देना'- सप्तक फाइन आर्ट्स सोसायटी, भोपाल, 2013. 'मल्हार उत्सव', शुजालपुर, 2012. 'एक शाम जाने वालों के नाम'- सप्तक फाइन आर्ट्स सोसायटी, भोपाल, 2012. 'बसन्त उत्सव', शुजालपुर, 2012. 'स्वामी हरिदास संगीत सम्मेलन', मुंबई, 2011. 'तानसेन रसिक श्रृंखला'- उस्ताद अलाउद्दीन खाँ संगीत एवं कला अकादमी, भोपाल, 2011. 'शिवरात्रि पर्व' - नित्यानंद महाराज घोघरा आश्रम, पांढुरना, 2011. 'काकली संगीत समारोह', काकली संगीत संस्था भोपाल. 'संगीत श्रद्धांजलि', भुसावल, 2009, कल के कलाकार सम्मेलन, मुंबई, 2009 मानस संगीत समा, भोपाल, 2008, सप्तक फाईन आर्ट्स सोसायटी, भोपाल, 2007 - 31वाँ पुण्य स्मरण समारोह - पं. गंगाप्रसाद ललित कला न्यास, विदिशा, 2009. पं. एस. एन. रातनजतकर जन्म शताब्दी समारोह, ग्वालियर, 2001 , रजत जयंती समारोह रविन्द्र संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर में। पं. बालासाहेब पूछवाले जी की बंदिशों की प्रस्तुति, 1998 केन्द्रीय विद्यालय संगठन, स्थापना दिवस समारोह - जोधपुर 1995, बैंगलौर 1997 & Special Awardee. , अभिरूचि राग अनुराग, ग्वालियर, 1997 और बहुत कुछ।

-बी.एम. 76, नेहरू नगर, भोपाल, मो.: 09630071166

अनुरोध : उत्तराधिकार के तहत गुरू-शिष्य परम्परा में साधनारत विभिन्न शैलियों के सृजनधर्मी युवा कलाकारों को समर्पित स्तंभ से जुड़ें...
- संपादक

आयोजन

लोक-संस्कृति पर केन्द्रित चौथी दत्तोपंत ठेंगड़ी राष्ट्रीय व्याख्यान माला 2020 सम्पन्न

प्रख्यात राष्ट्र-चिंतक, सेवाव्रती एवं संगठन शिल्पी दत्तोपंत ठेंगड़ी जी के जन्म शताब्दी वर्ष (2019-2020) के उपलक्ष्य में ऑनलाइन तीन दिवसीय व्याख्यान माला 09 से 11 नवम्बर 2020 सम्पन्न हुई। लोक-संस्कृति पर केन्द्रित व्याख्यान माला के अंतर्गत चार सत्रों में विद्वान, अध्येता साहित्यकारों ने अपने विचार रखे।

1. शुभारम्भ सत्र : 'लोक साहित्य के मूल तत्व'

वक्ता - डॉ. राजेन्द्र रंजन चतुर्वेदी प्रसिद्ध लोक विज्ञानी-हिसार

उन्होंने कहा कि लोक संस्कृति मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों का नियमन करती है। इस प्रकार वह मनुष्य को सामाजिक बनाती है और समाज का व्यवस्थापन्न करती है। लोक संस्कृति संस्कार की पाठशाला है और इसका संचालन कोई राजा नहीं करता। इस पाठशाला का संचालन लोक जीवन के द्वारा ही होता है। लोक संस्कृति संस्कार को पोषित करती है। लोक संस्कृति ने ही दमन, नियमन और उन्नयन की प्रक्रिया बनाईऔर उसी से समाज बना नहीं तो जंगल सभ्यता चलती रहती। लोक संस्कृति ने मूल प्रवृत्तियों का नियमन किया। आज बाजारवादी संस्कृति लोक संस्कृति पर हावी हो रही है बस एक ही परम प्रयोजन है। लोक संस्कृत संस्कृति पर आक्रमण हो रहा है। लोक संस्कृति वाचिक परम्परा का हिस्सा रही है लेकिन? लिखित अक्षर की परम्परा भी। हमारे यहाँ रही है जिसमें हमने वेद और धार्मिक पुस्तकों को ईश्वर वाणी के रूप में स्वीकार किया है।

डॉ. चतुर्वेदी ने कहा कि लोककर्ता शास्त्री लोक संस्कृति को 5 बिंदु के आधार पर बताते हैं। उसमें आचार प्रणाली, विचार प्रणाली, अभिव्यक्ति प्रणाली, सौंदर्य एवं जीतना और विश्वास प्रणाली। पाश्चात्य संस्कृति के दृष्टिकोण से लोक संस्कृति जीवन शैली और विश्वबोध दो ही बिंदुओं पर केंद्रित है। भारत में लोक संस्कृति के अध्यक्षों ने लोक संस्कृति को अनेक बिंदुओं के आधार पर विभाजित किया है जिसमें उन्होंने वन्य संस्कृति पशुपालन संस्कृति नगर ग्राम संस्कृति का आधार पर पहाड़ नदी संस्कृति जनपद के आधार पर लोक संस्कृति को विभाजित किया है। लोक संस्कृति में संस्कृति अभी समाहित है जो इतिहास में समा गई। उसके तत्व भी हमको लोक संस्कृति में मिलते हैं जिससे नाग पंचमी पर नाग देवता की पूजा आदि।

संस्थान के अध्यक्ष श्री अशोक पांडे ने आभार किया। उन्होंने कहा कि श्री चतुर्वेदी के व्याख्यान में नित्य और अनित्य दोनों का सम्मिश्रण था। संस्थान के निदेशक संचालनकर्ता डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा जी ने कहा कि लोक संस्कृति ही संस्कृति को सहेज कर रखती है और इसी से हमारी सनातन सभ्यता संरक्षित है। आज भी यह जीवंत है।

2. विशेष सत्र - एक: 'राष्ट्रीय अस्मिता और लोक साहित्य'

वक्ता - डॉ. विद्या बिन्दु सिंह, प्रसिद्ध साहित्यकार, लखनऊ

डॉ. विद्या बिन्दु सिंह ने कहा कि भाषा हमारी अस्मिता है, जिस देश को संस्कृति के प्रति गौरव बोध नहीं, उसकी पहचान खत्म हो जाती है। उन्होंने कहा कि लोक साहित्य संवादहीनता को तोड़ता है और समाज को कुरीतियों से बचाने की चिंता करता है। राष्ट्रीय अस्मिता और लोक-साहित्य विषय पर अपने उद्बोधन में कहा कि लोक संस्कृति के संरक्षण के लिए आज प्रतिरोध की आवश्कता है। लोकगीतों ने जनता के दर्द को व्यक्त किया है। श्रीमती बिंदु सिंह ने कहा कि लोकगीत, लोक धुनें समाप्त हो रही हैं लोक धुनों में एक तरह का लचीलापन है, उनमें माटी की सुगंध भी है। लोकगीत हमारे मेलों यात्राओं से जुड़े हुए हैं। लोकोक्तियां, मुहावरों में वेदों उपनिषदों का सारतत्व है। उन्हें संरक्षण की आवश्यकता है। इनका न सिर्फ संरक्षण करें बल्कि जीवन व्यवहार में भी उतारें।

संस्थान के निदेशक डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा ने प्रस्तावना में कहा कि दत्तोपंत ठेंगड़ी ने विश्वकर्मा जयंती के दिन राष्ट्रीय श्रम दिवस की प्रतिष्ठा कर राष्ट्रीय अस्मिता को स्थापित किया सत्र के अन्त में में संस्थान के सचिव दीपक शर्मा ने आभार व्यक्त किया।

3. विशेष सत्र - दो : 'भारतीय दर्शन की लोकाभिव्यक्ति'

वक्ता - श्री हृदय नारायण दीक्षित, अध्यक्ष विधान सभा (उ.प्र.)

श्री हृदय नारायण दीक्षित उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष और भारतीय दर्शन के प्रख्यात विद्वान ने कहा कि 'विश्व' में भारतीय दर्शन ही एकमात्र ऐसा दर्शन है, जिसमें पूर्ण विराम नहीं है। इसमें ज्ञान, अनुभव और अनुभूति की अनंत यात्रा है। इसमें विश्व के लोक मंगल के लिए सर्वस्व जीवन न्यौछावर कर दिया। वे वैदिक ऋषियों की तरह विश्व के कल्याण के लिए सोचते थे। उन्होंने कहा भारतीय दर्शन के लोक संबंध गहरे और वे अविभाज्य हैं। भारतीय दर्शन का संपूर्ण विकास लोक के भीतर ही हुआ है। यह भारतीय दर्शन ही है, जो कहता है कि कर्म का परिणाम व्यक्तित्व नहीं होता। भारत में एकेश्वरवाद का भाव अनूठा है। भारत के समस्त दर्शन जैसे न्याय, मीमांसा,

सांख्या सभी में लोक मंगल की कामना की गई है।

श्री दीक्षित जी ने कहा भारत दर्शन की उपस्थिति हर पल दिखाई देती है। हर व्यक्ति दार्शनिक अनुभव से प्रेरित है। भारतीय दर्शन अंग्रेजी के फिलासफी का अनुवाद अवश्य लगता है, लेकिन यह इससे अलग है। फिलासफी का अर्थ है 'ज्ञान से प्रेम' है लेकिन भारती दर्शन लोकजीवन से जुड़ा हुआ है। वह लोक जीवन में व्याप्त है। हमारी लोक संस्कृति भारतीय दर्शन से ही विकसित हुई है। विश्व में धर्म, पंथ, व्यक्तियों से उद्घोषित है, लेकिन भारतीय दर्शन भारतीय धर्म परंपराओं से हुआ उद्भूत है और इसने हमारे जीवन का मार्गदर्शन किया है। भारतीय दर्शन लोक को सींचता, खींचता और प्रतिष्ठित करता है। पाश्चात्य लोक भारतीय दर्शन के इस मर्म को नहीं समझते कि भारत की सभी दार्शनिक धाराओं में समभाव है।

4. समापन सत्र : 'लोक आख्यानों में जीवन-दृष्टि'

वक्ता – पद्मश्री मालिनी अवस्थी, प्रख्यात लोक गायिका, लखनऊ

हमारे देश की प्रख्यात लोक गायिका पद्मश्री मालिनी अवस्थी ने अपने वक्तव्य में कहा कि भारतीय संस्कृति में लोकगीत व लोक आख्यानों में लोक मंगल और सबके कल्याण की कामना की गई है। सामान्यजन के जीवन मूल्य और संस्कार देने के लिए ही हमारे आख्यान रचे गए हैं। आज आवश्यकता इस बात की कि हम लोक परंपरा, रीति, नीति और संस्कृति से बच्चों को परिचित कराते रहें। लोक परंपराओं में प्रचुर ज्ञान है और हर युग में यह सार्थक रहा है। आख्यान हमें संस्कारित करते हैं और जीवन दृष्टि देते रहते हैं। भारत में लोक गीतों की समृद्ध परंपरा रही है। भारत की स्त्रियों ने सैकड़ों वर्षों तक इन लोकगीतों को अपने कंठ में सुरक्षित रखा है। इनमें सबके मंगल की कामना प्रकृति, पूजा, समरसता, सामाजिक संदेश और जीवन मूल्य छुपे हुए हैं। आज हम कोरोना काल में तुलसी को दवाई के रूप में ग्रहण कर रहे हैं। हमारे यहां तो जल में तुलसी को मिलाकर उसे प्रसाद के रूप में ग्रहण किया जाता रहा है। उन्होंने कहा कि हमारे लोक आख्यान मात्र मनोरंजन के लिए नहीं है अपितु वे प्रामाणिक इतिहास है। इनकी दृष्टि समानता की दृष्टि है। लोकगीतों से संस्कृति को सुदृढ़ करने की कोशिश की गई है। यही कारण है कि इतने हजार वर्षों की गुलामी के बावजूद भी हमारे समाज ने उन मूल आदर्शों को बनाए रखा, जिन्हें वैदिक ऋषियों ने प्रतिष्ठित किया था। यहाँ लोक आख्यानों में ऐसे उद्धहरण भी मिलते हैं कि अपने मंगल के समय में भी किसी का अमंगल न हो, इसका भी ध्यान रखा जाए। लोक आख्यान हमेशा समाज का पथ प्रदर्शन करते रहे हैं। इनमें प्रश्न और उनके उत्तर भी मिलते हैं। देश में पराधीनता के बाद गुरूकुल नष्ट हो गए, लेकिन शास्त्रीय परंपराओं को लोगों ने लोक आख्यान और गीतों के माध्यम से सुरक्षित रखा। समापन अवसर पर संस्था अध्यक्ष अशोक पांडे ने कहा कि हमारे लोग आख्यानों में प्रकृति, समरसता, पारस्परिक संबंध भारतीय जीवन मूल्य से जुड़े श्रेष्ठ विचार हैं।

आज आवश्यकता है कि हम नई पीढ़ी से उन्हें परिचित कराएँ। आज इस परंपरा को प्राण रस मिलना बंद हो गया है। हमारी नई पीढ़ी स्वयं के लिए और सिर्फ शरीर के लिए जी रही है, लेकिन हमारे समाज का यह उद्देश्य नहीं था। प्रारंभ में संस्थान के निदेशक डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा जी ने विषय का परिचय दिया। उन्होंने कहा कि आख्यान हमारी परंपरा में शास्त्र और लोक दोनों रचे गये हैं जो वाचिक तथा लिखित रूपों में विद्यमान हैं। आख्यान हमारी विराट संस्कृति के स्त्रोत हैं। इस ऑनलाइन आयाजन में देश एवं प्रदेश के अनेक लोक संस्कृति के अध्येताओं ने सहभागिता की। अंत में संस्था के सचिव दीपक शर्मा ने आभार व्यक्त किया।

■

समवेत

वरिष्ठ साहित्यकार युगेश शर्मा के कोरोना कथा संग्रह 'जाग उठे मन के रिश्ते' का लोकार्पण

भोपाल। म.प्र. राष्ट्र भाषा प्रचार समिति हिंदी भवन द्वारा अपने महादेवी वर्मा कक्ष में वरिष्ठ साहित्यकार/पत्रकार श्री युगेश शर्मा की बारहवीं कृति नवीनतम कोरोना कथा संग्रह 'जाग उठे मन के रिश्ते' का लोकार्पण गरिमापूर्ण समारोह में सम्पन्न हुआ। मंच पर मुख्य अतिथि वरिष्ठ पत्रकार पद्मश्री विजयदत्त श्रीधर निदेशक माधव स्प्रे समाचार पत्र संग्रहालय तथा अध्यक्षता सुप्रसिद्ध साहित्यकार समीक्षक डॉ. गोपालकृष्ण मिश्र ने की तथा विशिष्ट अतिथि श्री रघुनंदन शर्मा। पूर्व राज्य सभा सदस्य पुस्तक पर समीक्षात्मक वक्तव्य डॉ. साधना बलबटे और श्री लक्ष्मीनारायण पयोधि ने दिये कार्यक्रम का संचालन श्री जवाहर कर्नावट निदेशक हिंदी भवन द्वारा किया गया। लेखक युगेश शर्मा ने कृति के बारे अपने विचार रखे वही राष्ट्र भाषा प्रचार समिति के अध्यक्ष, मंत्री, संचालक तथा 'अक्षरा' पत्रिका के प्रधान सम्पादक श्री कैलाशचन्द्र पंत ने स्वागत उद्बोधन में सभी का कोरोना काल में पहले आयोजन पर शुभकामना दी इस गरिमापूर्ण आयोजन में शहर के सभी विद्वान साहित्यकार उपस्थित थे। प्रमुख डॉ. राधावल्लभ आचार्य, पं. सुरेश तांतेड़, श्री अशोक निर्मल, श्री महेश सक्सेना, डॉ. मोहन तिवारी, श्री अशोक बुलानी, श्री महेन्द्र गगन, श्री विपिन बिहारी वाजपेयी, श्रीमती उषा जायसवाल, डॉ. गौरी शंकर शर्मा गौरीश, श्री गोकुल सोनी, श्रीमती कान्ता राय, भंवरलाल श्रीवास, घनश्याम मैथिल 'अमृत', श्रीमती सुमन ओबेराय, रेखा भटनागर, साहित्य के अनेक साहित्यकार उपस्थित थे। संस्था अध्यक्ष सुखदेव प्रसाद दुबे ने सभी का अभार व्यक्त किया।

■

आयोजन

संस्कृति के नए राग-रंग से रौशन होगा 'विश्वरंग - 2020'

कोविड के बाद की चुनौतियों पर संवाद, अंतर्राष्ट्रीय फिल्मोत्सव-नौनिहालों के लिए बाल महोत्सव साहित्य, कला और विज्ञान तथा टेक्नालॉजी पर केन्द्रित अनेक गतिविधियाँ महोत्सव में सम्पन्न होगी।

भोपाल साहित्य, संस्कृति और कलाओं का अंतर्राष्ट्रीय महोत्सव 'विश्वरंग-2020' अपनी बहुआयामी गतिविधियों के साथ दस्तक दे रहा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, भोपाल के संयोजन में यह विराट जलसा 20 से 29 नवंबर के दरमियान डिजिटल वर्चुअल प्लेटफार्म पर किया जाएगा। अनेक नवाचारों के साथ रचे गये इस समारोह में कोविड-19 के बाद उभरे परिदृश्य में शिक्षा, कला, संस्कृति, उद्यमिता, स्वास्थ्य, विज्ञान-टेक्नालॉजी, रंगमंच, चित्रकला, फिल्म और आत्मनिर्भरता पर प्रख्यात चिंतक-विचारक संवाद करेंगे। अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोह और नौनिहालों के लिए रंग-बिरंगा बाल महोत्सव इस बार विशेष आकर्षण का केन्द्र होंगे। साठ से भी अधिक सत्रों में विचार और मनोरंजन की दुनिया से वाबस्ता मशहूर हस्तियाँ शिरकत करेंगी। विश्वरंग-2020 भारत सहित विश्व के पन्द्रह देशों में आयोजित किया जा रहा है।

'विश्वरंग' के निदेशक तथा टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति संतोष चौबे ने बताया कि गत वर्ष इस महोत्सव की अप्रत्याशित सफलता और दुनिया भर से मिले प्रतिसाद के बाद दूसरी पादान भी सामूहिक उत्साह और उमंग के साथ तय करना सुनिश्चित हुआ है। 'कोविड-19 के चलते तयशुदा दायरों और निर्देशों का निर्वाह करते हुए 'विश्वरंग' के सभी कार्यक्रमों का आयोजन तथा लाइव प्रसारण डिजीटल माध्यम से विश्वभर में किया जाएगा। परिकल्पना और संयोजन में इस बार विस्तार हुआ है पन्द्रह से भी ज्यादा देश विश्वरंग के स्थानीय संयोजक बने हैं। लिहाज़ा दीगर मुल्कों में भी लेखक, कलाकार और विशेषज्ञ सांस्कृतिक आपसदारी के लिए इस महोत्सव का हिस्सा बन रहे हैं।

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, वनमाली सृजन पीठ, आईसेक्ट स्टुडियो, आईसेक्ट पब्लिकेशन तथा अन्य सांस्कृतिक, साहित्यिक संगठनों की संयुक्त सहभागिता में एक बार फिर अदब और तहज़ीब की रंगो-महक के बेमिसाल सिलसिलों का दिलचस्प मंज़र रौशन होगा।

टैगोर विश्वविद्यालय भारत का पहला शैक्षणिक संस्थान हैं जिसने 'विश्वरंग' जैसा अन्तर्राष्ट्रीय मंच स्थापित किया है। 20 से 29 नवंबर तक दस दिनों की बहुरंगी गतिविधियों में कला गुरू रवीन्द्रनाथ टैगोर और राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के विश्व मानवतावाद को रेखांकित करने के साथ ही हिन्दी सहित भारत और विश्व की अन्य भाषाओं में रचे गये साहित्य के सामाजिक सरोकारों पर चर्चा, लेखक, कलाकार और फिल्मकारों से मुलाकात, ध्रुपद, रवीन्द्र संगीत, रंग संगीत, लोक संगीत और विश्व प्रसिद्ध बैंड-आर्केस्ट्रा की प्रस्तुतियाँ, नाटक, नृत्य और अभिनय की दृश्य-श्रव्य प्रस्तुतियों का मंचन, मुशायरा, फिल्म प्रदर्शन और थर्ड जेंडर कवियों का रचना पाठ सहित कार्यक्रमों की विशाल श्रृंखला होगी। इन गतिविधियों का आनंद देश-विदेश के हज़ारों दर्शक-श्रोता लेंगे। विश्वरंग की वेबसाईट www.vishwarang.com पर रजिस्ट्रेशन का सिलसिला जारी है। विश्वरंग के कार्यक्रमों का प्रसारण विश्वरंग के यू ट्यूब चैनल पर निर्धारित तारीखों में शाम 5 बजे से रात्रि लगभग 11 बजे तक विभिन्न चरणों में होगा।

देश-दुनिया की सितारा शख्सियतें

विश्वरंग के सांस्कृतिक ताने-बाने में विभिन्न विधाओं की जो सितारा शख्सियतें शामिल हो रही हैं उनमें रस्किन बाँड, चित्रा-मुद्गल, नंदकिशोर आचार्य, रमेश चन्द्र शाह, रघुवीर चौधरी, सुधीर चन्द्रा, ममता कालिया, ज्ञान चतुर्वेदी, मनोज श्रीवास्तव, अशोक भौमिक, पंकज राग, लीलाधर मंडलोई, प्रभु जोशी, मालिनी अवस्थी, जयति चक्रवर्ती, आशुतोष राणा, रजत कपूर, रघुवीर यादव, तिग्मांशु धूलिया, आबिद सुरती, राजेन्द्र जांगले, जयंत देशमुख, शुजात खान, सुधा मेनन, जेसिंता केरकेट्टा सहित सौ से भी ज़्यादा नाम हैं। विदेशी लेखकों में लेबो माशिले, तेनजिंग, नजीब बरवर, लानोट, वेद आकाश, खुजेस्ता इक्लाम, कोकोथेट द गोर शिड, निकोला माज़दिरोव हॉली विलेरियो मागरेलि शिरकत करेंगे।

दस्तावेज़ी पुस्तकों का लोकार्पण होगा

'विश्वरंग 2020' के अवसर पर साहित्य, संस्कृति, कला और विज्ञान पर केन्द्रित महत्वपूर्ण ग्रंथों तथा दस्तावेज़ी विशेषांकों का प्रकाशन किया जा रहा है। इस श्रृंखला में विश्वरंग की स्मृतियों पर केन्द्रित कॉफी टेबल बुक, सांस्कृतिक पत्रिका 'रंग संवाद' का विशेषांक, गांधी विशेषांक, फिल्मोत्सव पर केन्द्रित पुस्तिका, विज्ञान कथा कोश तथा मूर्धन्य मनीषियों के साक्षात्कारों पर केन्द्रित पुस्तक 'आवाज़ों के आसपास' का लोकार्पण किया जाएगा।

नुक्कड़ नाटक और रंग संगीत

विश्वरंग 2020 के अंतर्गत पूर्वरंग की गतिविधियाँ आयोजित की जा

रही हैं। इस तारतम्य में 4, 5 तथा 6 नवंबर को टैगोर विश्वविद्यालय में नुक्कड़ नाटक समारोह होगा। टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र, आईसेक्ट स्टुडियो तथा इफ्तेगार क्रिकेट अकादमी के संयोजन में आयोजित इस तीन दिनी रंगोत्सव का शुभारंभ नाट्य संस्था त्रिकर्षि के कलाकारों द्वारा के.जी. त्रिवेदी के निर्देशन में 'आओ खेलें खेल' प्रस्तुति के मंचन से होगा। दूसरे दिन म.प्र. राज्य नाट्य विद्यालय की प्रस्तुति होगी 'कल का रंगमंच' । निर्देशक होंगे आलोक चटर्जी। तीसरा और समापन नुक्कड़ नाटक होगा- 'अभ्यास'। इसे द राईजिंग सोसाईटी के कलाकार तानाजी के निर्देशन में मंचित करेंगे। तीनों दिन रंग संगीत भी होगा, जिसे रंगकर्मी मनोज नायर, मो. साजिद और सुरेन्द्र वानखेड़े अपने समूह के साथ प्रस्तुत करेंगे।

कथादेश पर केन्द्रित 'कथायात्रा'

विश्वरंग की पूर्वरंग गतिविधियों के अंतर्गत 'कथादेश' के 18 खंडों पर केन्द्रित 'कथायात्रा' का आयोजन 2 अक्टूबर से 8 नवम्बर तक किया गया। वचुर्बल प्लेटफार्म पर प्रसारित इस कथायात्रा में प्रेमचन्द्र, वनमाली, यशपाल, रेणु, मोहन राजेश, ज्ञान रंजन, रवीन्द्र कालिया, ओम प्रकाश वाल्मीकि, नवीन सागर, ज्ञान चतुर्वेदी, धूव शुक्ल, मुकेश वर्मा, रमेश चन्द्र शाह, संतोष चौबे, स्वयं प्रकाश, आशुतोष, चन्दन पाण्डेय, राकेश मिश्र, श्रद्धा थवाईत की कहानियों के पाठ के साथ-साथ कथादेश के खंड एवं उस काल खंड की रचना प्रक्रिया व कथा प्रवृत्तियों पर रचनात्मक विमर्श किया गया।

उल्लेखनीय है कि कथा यात्रा का शुभारंभ वरिष्ठ कवि-कथाकार विश्वरंग के निदेशक संतोष चौबे द्वारा किया गया। कथा यात्रा की परिकल्पना वरिष्ठ कथाकार एवं वनमाली सृजन पीठ, भोपाल के अध्यक्ष मुकेश वर्मा द्वारा की गई है। शुभारंभ कड़ी का संचालन टैगोर कला केन्द्र के निदेशक विनय उपाध्याय ने किया। कथा यात्रा में संतोष चौबे, शम्पा शाह, रमाकांत श्रीवास्तव, बलराम गुमास्ता, नवल शुक्ल, रेखा कस्तवार, सुधीर रंजन सिंह, ज्ञान चतुर्वेदी, मुकेश वर्मा, ध्रुव शुक्ल, आनंद कुमारी सिंह, विनय उपाध्याय, आशुतोष, अजित हर्षे, गीत चतुर्वेदी, अरूणेश शुक्ल, कुणाल सिंह का सानिध्य प्राप्त हुआ है।

युवा रचनाकारों बद्र वास्ती, प्रशांत सोनी, संतोष कौशिक ने कहानियों का पाठ किया। इस अनूठी श्रृंखला का समन्वय युवा कथाकार कुणाल सिंह, संजय सिंह राठौर एवं तकनीकी संयोजन वैंकट रमन अय्यर, संजीव शर्मा, देवन देवनानी, सौरभ अग्रवाल, रोहित श्रीवास्तव, उपेन्द्र पटने एवं आशीष पोद्दार ने किया है।

उल्लेखनीय है कि हिन्दी साहित्य की 200 वर्षों की हिन्दी कथा परंपरा को कथादेश के 18 खंडों में आईसेक्ट पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित किया गया है इसमें 650 से अधिक कहानियों को धरोहर, प्रेमचन्दोत्तरी, नई कहानी, समकालीन, युवा कहानी के स्वरूप में समाहित किया गया है। प्रत्येक कहानी पर वरिष्ठ एवं युवा आलोचक की टिप्पणियाँ एवं कथा साहित्य पर केन्द्रित महत्वपूर्ण आलेख भी शामिल किए गए हैं।

- रवीन्द्रनाथ टैगोर विवि द्वारा जारी

पत्रिका ही नहीं, एक रचनात्मक अनुष्ठान

पत्रिका मुफ्त मांग कर, कृपया हमारे अनुष्ठान को आघात न पहुँचाएं

'कला समय' के सदस्य बनें- ❍ पत्रिका की वार्षिक/द्वैवार्षिक /आजीवन सदस्यता ग्रहण करें। सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, ड्राफ्ट, ऑनलाइन अथवा व्यक्तिगत रूप से भुगतान किया जा सकता है।

'कला समय' की एजेंसी के नियम- ❍ आपके गांव, कस्बे, शहर में सांस्कृतिक पत्रिका 'कला समय' की एजेन्सी के लिए सम्पर्क करें। ❍ कम से कम दस प्रतियों से एजेन्सी शुरू की जायेगी। ❍ पत्रिका कुरियर अथवा रजिस्टर्ड बुक पोस्ट से भेजी जायेगी। डाक खर्च एजेन्सी को वहन करना होगा। ❍ कमीशन, प्रतियों की संख्या के आधार पर।

स्थायी तथा सम्पादकीय पता और दूरभाष क्रमांक के साथ सम्पर्क करें- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 Email : bhanwarlalshrivas@gmail.com मो. 9425678058, 0755-2562294

लेखकों/कलाकारों से ❍ कला, संस्कृति और विचार के अछूते पहलुओं पर सृजनात्मक, शोधात्मक और सूचनात्मक आलेख, टिप्पणियां, रिपोर्ताज, साक्षात्कार, ललित निबंध, कविताएँ, छायाचित्र, रेखांकन तथा शोध आमंत्रित हैं। ❍ रचनाएँ कागज के एक ओर टाइप की हुई तथा मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो। कृपया रचना के साथ पर्याप्त डाक टिकिट लगा लिफाफा भी संलग्न करें। रचनाएँ और चित्र ई-मेल से भी भेजे जा सकते है।

प्राथमिकता के साथ : Chanakya फोंट / वर्ड फाइल / PDF फॉर्मेट में ही भेजें।

अनुरोध : वे सदस्य जिनका वार्षिक / द्विवार्षिक सदस्यता शुल्क समाप्त हो रहा है, कृपया अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करायें। सदस्यों को पत्रिका साधारण डाक से भेजी जाती है। नहीं मिलने की स्थिति में सदस्यता शुल्क के साथ ` 120/- का प्रतिवर्षानुसार रजिस्टर्ड डाक शुल्क अतिरिक्त भेजा जाना होगा।

-संपादक

'भवभूति' अलंकरण 2020 श्री दुर्गाप्रसाद झाला (हमारे समूह के सम्मानित सदस्य) तथा श्री ओम भारती को ....

म.प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रतिष्ठित भवभूति अलंकरण वरिष्ठ कवि द्वय श्री दुर्गाप्रसाद झाला तथा श्री ओम भारती को प्रदान किये जाने का निर्णय हुआ है। भवभूति अलंकरण 2020 के निर्णायक मण्डल में सर्वश्री राधावल्लभ त्रिपाठी, राजेश जोशी और रमाकांत श्रीवास्तव शामिल थे। भवभूति अलंकरण से सम्मानित होने वाले दोनों रचनाकारों को SRIJAN समूह की ओर से बधाई। वर्ष 1985 में स्थापित 'भवभूति' अलंकरण से अब तक श्री मुकुटधर पाण्डेय, श्री हरिशंकर परसाई, श्री वियोगी हरि, डॉ. रामकुमार वर्मा, श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', श्री शिव मंगल सिंह सुमन, श्री गिरिजा कुमार माथुर, प्रो. प्रमोद वर्मा, श्री नरेश मेहता, श्री हरिनारायण व्यास, श्री रामनारायण उपाध्याय, श्री राममूर्ति त्रिपाठी, श्री मुकुट बिहारी 'सरोज', श्री श्रीकांत जोशी, श्रीमती मालती जोशी, डॉ. धनंजय वर्मा, श्री हबीब तनवीर, श्री मलय, प्रो. नईम, श्री भगवत रावत, श्री चंद्रकांत देवताले, श्रीमती मन्नू भण्डारी, श्री पुन्नी सिंह, श्री सुदीप बनर्जी, श्री विष्णु खरे, श्री आग्नेय, श्री स्वयं प्रकाश, प्रो. कांति कुमार जैन, डॉ. प्रभात कुमार भट्टाचार्य, प्रेमशंकर रघुवंशी, डॉ. विजय बहादुर सिंह, श्री सुबोध कुमार श्रीवास्तव, डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव, डॉ. ओम प्रभाकर और नरेश सक्सेना को विभूषित किया जा चुका है।

डॉ. मुक्ति पराशर को द रियल सुपर वुमन अवार्ड

महिलाएं सदियों से कई लोगों के लिए एक प्रेरणा रही हैं। उन्हें सुंदरता, शक्ति के प्रतीक के रूप में माना जाता है। लेकिन अब समय बदल गया है महिलाएं अब कुछ भी करने की शक्ति रखती हैं। समाज ने पाया है कि महिलाएं निर्धारित सीमाओं और धारणाओं के बिना सफल होने में सक्षम हैं। इसलिए एफएसआईए, ने फोरेवर स्टार इण्डिया समूह द्वारा कोटा की डॉ. मुक्ति पाराशर को रियल सुपर महिला अवार्ड 2020 प्रदान किया

है। डॉ. पाराशर को यह पुरस्कार कलाकारों को प्रोत्साहित एवं उन्हें विपरीत समय में एक साथ संजोना और सामाजिक कार्यों के लिए दिया गया है। एफएसआईए समूह भारत का पहला व बड़ा प्लेटफार्म है जहाँ सभी अवाडी की कम्युनिस्टी लाइव है। कोरोना के चलते आनलाइन आयोजन किया गया। 50 श्रेणियों से नामांकित करने के लिए है। जिसमें दुनिया भर से महिलाएं भाग लेती हैं। जो महिलाओं का मनोबल को बढ़ाने में मदद करेगा।

चावल के दानों से महात्मा गांधी जी को याद किया : नीरू छावड़ा कलाकार, जयपुर

जयपुर। चावल एक ऐसा दाना है, जिसका भारतीय संस्कृति में विशेष महत्व है। यह अक्षत है। पवित्र है। माथे पर तिलक के समय रोली के साथ चावल ही काम आते हैं। जब यह कलाकार नीरू छावड़ा के हाथ में आ जाता है तो कैनवास बन जाता है।

चावल पर सूक्ष्म लेखन के लिए अनेक पुरस्कारों से सम्मानित जयपुर की कलाकार नीरू छावड़ा ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 151 वीं जयंती के अवसर पर गांधी के कहे वचनों को चावलों पर लिखकर 6 कलाकृतियां तैयार की हैं। इनमें अहिंसा, सत्याग्रह, सर्वोत्तम शिक्षा, 1869 से 1900 तक की महत्वपूर्ण घटनाएं मुख्य हैं। छह कलाकृतियों में लगभग साढ़े पांच सौ चावलों पर लेखन किया है। मुख्यमंत्री अशोक गहलोत ने नीरू छाबड़ा की इस अनूठी कला को देखा और सराहना की। उल्लेखनीय है कि नीरू छाबड़ा देश की अकेली महिला कलाकार हैं, जिन्होंने एक चावल पर अंग्रेजी के 108 अक्षर लिखे हैं। इसके अलावा प्राकृत भाषा में णमोकार मंत्र, संस्कृत में गायत्री मंत्र एवं हिंदी में संविधान को परिभाषा भी चावल पर लिख चुकी हैं। अनेकता मे एकता मेरा भारत महान नामक कृति में भारत को समस्त भाषाओं को उनकी लिपियों में लिखा है। नीरू छाबड़ा अब तक करीब 75 हजार से अधिक चावलों पर अपनी सृजनात्मकता का प्रदर्शन कर चुकी हैं।

देश के तत्कालीन राष्ट्रपति आर. वेंकटरमन और तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से लेकर अब तक के सभी राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री नीरू छाबड़ा की कला को देख चुके हैं। अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति बिल क्लिंटन उनकी कला को देख इतने अभिभूत हुए कि व्हाइट हाउस जाकर प्रशंसा पत्र लिखा।

छायाकार–जगदीश कौशल

समय की धरोहर

पंडित रविशंकर (भारत रत्न)

जन्म : 7 अप्रैल, 1920 **निधन : 11 दिसम्बर, 2012**

विश्व विख्यात सितार वादक पंडित रविंशकर को 14 डाक्ट्रेट और डिसीकोट्टम सहित दुनिया भर से कई पुरस्कार और सम्मान प्राप्त हुए हैं देश का सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' के अलावा आपको मैग्सेसे पुरस्कार दो ग्रैमी पुरस्कार, जापान का ग्रांड फुकुओ का पुरूस्कार और 'ग्लोबल एंबेसडर' के शीर्षक के साथ दावोस से क्रिस्टल पुरुस्कार से भी सम्मानित किया गया है। भारत के संगीत के ये राजदूत संयुक्त राष्ट्र अकादमी ऑफ आर्ट्स एण्ड लैर्टस के सम्मानित सदस्य भी थे। आपने संगीत की शिक्षा विश्वविख्यात सदोदवादक पद्म भूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ से मध्यप्रदेश में स्थित मैहर नगर में रहकर प्राप्त की थी।

जगदीश कौशल ने वर्ष 1962 में उस्ताद अलाउद्दीन खाँ जिन्हें आम लोग बाबा के नाम से जानते हैं के 100 वें जन्मदिवस पर अयोजित शताब्दी समारोह में पंडित रविशंकर जी द्वारा प्रस्तुत सितार वादन के अवसर पर यह फोटो क्लिक किया था।

संस्मरण

जब पंडित रविशंकर जी ने मुझे गले लगाकर आशीर्वाद दिया

-जगदीश कौशल

मेरे लिये यह आत्मीय आनंद और गर्व की बात है कि मुझे पंडित रविशंकर जैसे विश्व विख्यात सितार वादक का सानिध्य, स्नेह और आशीर्वाद मिला। उनके अनेक कलात्मक फोटो क्लिक करने और आटोग्राफ लेने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

किस्सा वर्ष 1962 का है। पद्मभूषण उस्ताद अलाउद्दीन खाँ के जीवन के 100 वर्ष पूरे होने के शुभ अवसर पर उन्हें सम्मानित करने के लिए मैहर में उनके घर 'मदीना निवास' पर एक भव्य समारोह आयोजित किया गया था। इस समारोह की रूपरेखा उनके परमप्रिय शिष्य पंडित रविशंकर जी ने ही बनाई थी। सारे कार्यक्रम उन्हीं के मार्गदर्शन में सम्पन्न हो रहे थे। बाबा से पूर्व परिचित होने के कारण मैं इसका फोटो कवरेज करने रीवा से मैहर गया था।

उनके सम्मान में हो रहे इतने भव्य समारोह में भी उस्ताद अलाउद्दीन खाँ 'बाबा' अत्यन्त सादगीपूर्ण ढंग से हमेशा की तरह अपनी लुंगी और कुर्ता पहने सिर पर सफेद टोपी लगाए हुए मजे से बीड़ी पीते हुए एक तख्त पर बैठे थे। सुप्रसिद्ध ठुमरी और भजन गायिका सुश्री लक्ष्मी शंकर बाबा के बगल में बैठी थीं। मैंने जाकर बाबा के चरण छुए और उनका आशीर्वाद लिया। मैं कुछ कहता इसके पहले ही बाबा ने पंडित रविशंकर जी से मेरा परिचय कराते हुए कहा कि यह लड़का वर्ष 1958 में मेरा इंटरव्यू किया था। कई अखबारों और पत्रिकाओं में छपवाया था। बहुत होनहार फोटोग्राफर भी है। इसने मेरे बहुत सारे फोटो भी लिए हैं। मैंने तपाक से पंडित रविशंकर जी के चरणों का स्पर्श किया। उन्होंने मुझे अपने गले से लगा लिया और आशीर्वाद देते हुए बोले तुम्हें तो मेरे गुरूजी का आशीर्वाद मिला हुआ है इसके बाद अब तुम्हें किसी और के आशीर्वाद की जरूरत ही नहीं है। मुझे देखो मैं आज इन्हीं के आशीर्वाद से कहाँ से कहाँ पहुंच गया हूँ। तुम्हारा भविष्य भी तुम उज्जवल ही मानकर आगे बड़ो। फिर भी मैं तुम्हें हृदय से शुभाशीष देता हूँ। मैंने अपनी आटोग्राफ बुक उनके आगे बड़ा दी। उन्होंने बहुत ही खूबसूरत बड़े-बड़े अक्षरों में रविशंकर लिखकर मुझे लौटा दिया।

आज भी मैं उनका आटोग्राफ अपने नाती-पोतों तथा परिजनों को दिखाकर पुरानी यादों को ताजा करता रहता हूँ।

- ई-3/320, अरेरा कालोनी, भोपाल, मो.: 09425393429

समवेत

मानस भवन परिसर में बनेगा श्रीराम सांस्कृतिक और पुरातात्विक संग्रहालय

माननीय मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान तुलसी मानस प्रतिष्ठान की प्रबंध कारिणी की बैठक में शामिल हुए। मुख्यमंत्री श्री चौहान ने कहा कि प्रतिष्ठान की गतिविधियों के लिए राज्य शासन की ओर से पूर्ण सहयोग दिया जाएगा। मुख्यमंत्री श्री चौहान ने कहा कि तुलसी मानस प्रतिष्ठान द्वारा मानस भवन परिसर में एक ऐसे केन्द्र का विकास सराहनीय है जो राजधानी में एक विशिष्ट दर्शनीय श्रीराम सांस्कृतिक और पुरातात्विक संग्रहालय के साथ ही धर्म और आध्यात्म में रूचि रखने वालों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनेगा। युवा पीढ़ी को भी इससे दिशा मिलेगी मुख्यमंत्री श्री चौहान ने प्रतिष्ठान की पत्रिका 'तुलसी मानस भारती' के दीपावली अंक का विमोचन भी किया प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित अन्य साहित्य भी भेंट किया प्रतिष्ठान की बैठक में कार्याध्यक्ष रघुनंदन शर्मा से गतिविधियों की जानकारी भी प्राप्त की। इस अवसर पर संयोजक राजेन्द्र शर्मा, समिति के सचिव कैलाश जोशी, सदस्यगण प्रभुदयाल मिश्रा, रमेश शर्मा, विजयदत्त श्रीधर, महेश सक्सेना आदि उपस्थित थे।

जब हम अच्छा खाने, अच्छा पहनने और अच्छा दिखने में खर्च करते हैं
तो अच्छा पढ़ने-लिखने और सोचने-समझने की खुराक में खर्च क्यों न करें !

कलासमय

प्रबंध संपादक

सम्पर्क- जे-191, मंगल भवन, महावीर नगर, ई-6, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058

ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com / bhanwarlalshrivas@gmail.com

कला समय

आगामी अंक
दिसम्बर 2020-जनवरी 2021
विश्व रंग पर केन्द्रित विशेषांक

विश्व के 15 देशों में विश्व रंग उत्सव सहित कथा देश के 18 खंडों पर केंद्रित कथायात्रा और चर्चाएं, युवा कलाकारों की राष्ट्रीय चित्रकला प्रदर्शनी, लघु फिल्म प्रतियोगिता, नुक्कड़ नाट्य समारोह, विश्वविद्यालयों छात्रों के लिए प्रतियोगिता पर विस्तृत जानकारी सहित बहुत कुछ.....

श्रद्धांजलि

डॉ. कपिला वात्स्यायन (पद्म विभूषण)
कलाविद्, मूर्धन्य साहित्यकार
जन्म : 25 दिसम्बर 1928 निधन : 16 सितम्बर 2020

●●●

शोभा नायडू (पद्मश्री)
सुविख्यात कुचिपुडी नृत्यांगना
जन्म : 1956 निधन : 14 अक्टूबर 2020

●●●

विष्णु चंद्र शर्मा
वरिष्ठ साहित्यकार, कवि, संपादक
जन्म : 01 अप्रैल 1933 निधन : 02 नवम्बर 2020

'कला समय' परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि...

कला समय

कला, संस्कृति और विचार की द्वैमासिक पत्रिका

के सदस्य बने

मैं ..... कला समय पत्रिका का ..... एक वर्ष : 150/- रूपये, दो वर्ष : 300/- रूपये, चार वर्ष : 500/- रूपये, आजीवन : 5000/- रूपये का सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। पत्रिका का शुल्क रूपये .....
ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम : .....

पता : .....

.....

पिन : ..... मो. : .....

हस्ताक्षर

सदस्यता सहयोग राशि:

वार्षिक	: 150 /-	**(व्यक्तिगत)**
	: 175 /-	**(संस्थागत)**
द्वैवार्षिक	: 300 /-	**(व्यक्तिगत)**
	: 350 /-	**(संस्थागत)**
चार वर्ष	: 500 /-	**(व्यक्तिगत)**
	: 600 /-	**(संस्थागत)**
आजीवन	: 5,000/-	**(व्यक्तिगत)**
(केवल 15 वर्षों के लिए)	: 6,000/-	**(संस्थागत)**

(कृपया सदस्यता शुल्क- ऑनलाइन/ड्राफ्ट/मनीआर्डर द्वारा कला समय के नाम से उक्त पते पर भेजें)

कार्यालय सम्पर्क :
संपादकीय एवं सदस्यता सहयोग
जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर,
अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)- 462016
फोन : 0755-2562294, मो.-94256 78058
ई-मेल : kalasamaymagazine@gmail.com
वेबसाइट : **www.kalasamaymagazine.com**

ऑनलाइन सदस्यता सहयोग सुविधा :
'कला समय' का बैंक खाता विवरण
ओरियण्टल बैंक ऑफ कॉमर्स की शाखा **(IFSC : ORBC0100932)** में **KALA SAMAY** के नाम देय, खाता संख्या **A/No. 09321011000775** में ऑनलाइन राशि जमा कराने के बाद रसीद की फोटोकॉपी अपने पूर्ण पते के साथ हमें भेज दें।

- कृपया सदस्यता शुल्क 'कला समय' के नाम भेजें।
- सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद अगले अंक से पत्रिका भेजना प्रारम्भ की जावेगी।
- सदस्यता शुल्क निम्न पते पर भेजे:- जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कालोनी, भोपाल (म.प्र.) 462016

-प्रबंध संपादक

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ

जी.एस. दाल मिल

पुल बोगदा, भोपाल (म.प्र.)

कला समय

के महत्वपूर्ण विशेषांक...

सांस्कृतिक धड़कनों का जीवंत दस्तावेज

सांस्कृतिक यात्रा के 23 वर्ष...

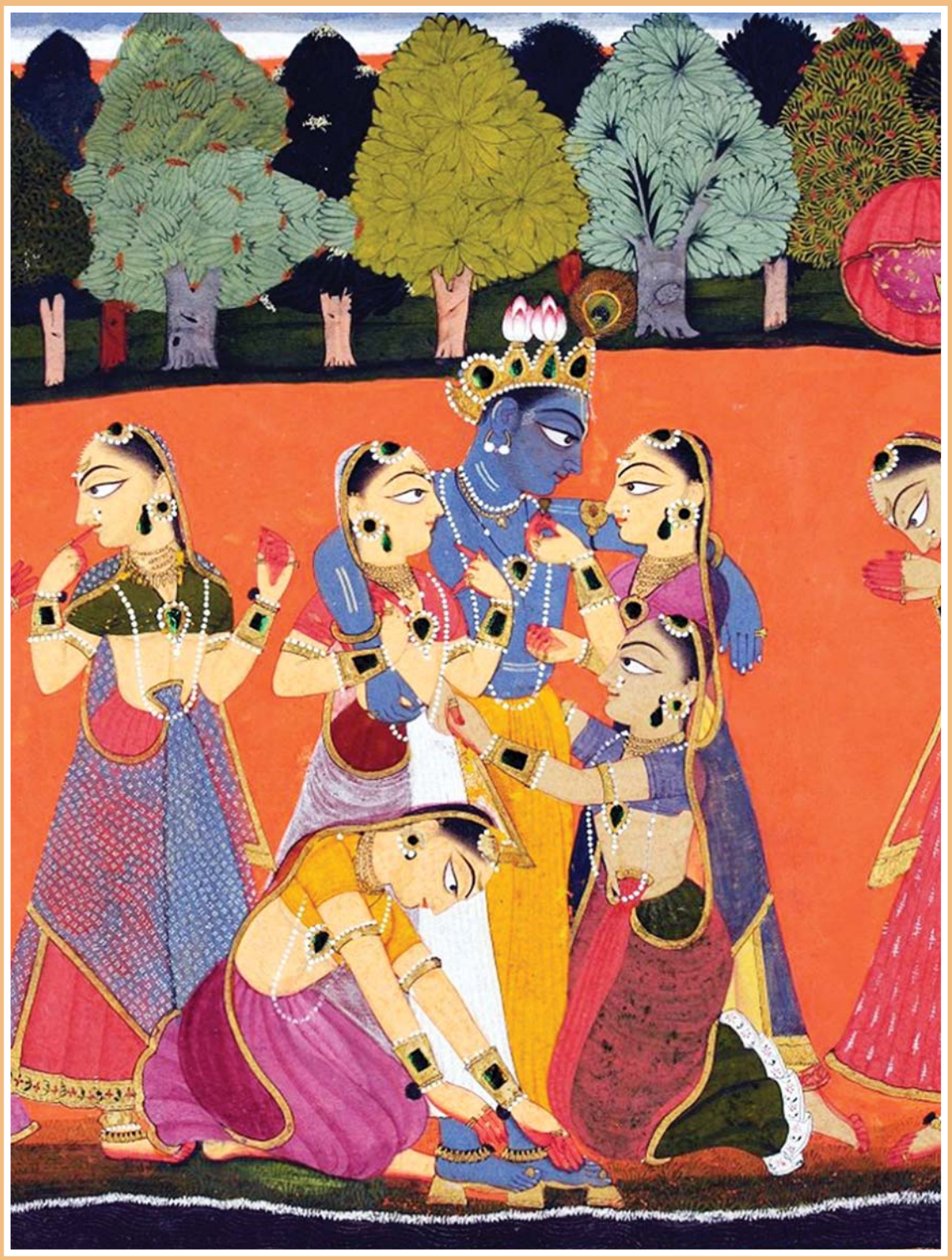

बसोहली शैली का 18वीं सदी में निर्मित गीत गोविन्द के प्रसंग पर आधारित लघुचित्र जो पहाड़ी शैली का भी एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी भँवरलाल श्रीवास द्वारा दृष्टि ऑफसेट, 36-37, प्रेस कॉम्पलेक्स, जोन नं-1, एम.पी. नगर, भोपाल से मुद्रित एवं जे-191, मंगल भवन, ई-6, महावीर नगर, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016 से प्रकाशित। संपादक-भँवरलाल श्रीवास